श्रीमन्नित्यनिकुञ्जविहारिणे नमः।
श्रीस्वामी हरिदासो विजयतेतराम्।।

सरस-चमन

सरस मंजावली तथा गुलजार-चमन ,श्रीबिहारी जू कौ नखशिख ध्यान एवं वचनिका-सिद्धान्त की वचनावली टीका सहित

श्रीललित प्रकाशन, वृन्दावन

श्रीमन्नित्यनिकुञ्जविहारिणे नमः।
श्रीस्वामी हरिदासो विजयतेतराम्।।

सरस-चमन

सरस मंजावली, गुलजार-चमन, श्रीबिहारी जू कौ
नखशिख ध्यान एवं वचनिका-सिद्धान्त की
वचनावली टीका सहित

सम्पादक –
अलबेलीशरण
गोविन्द शर्मा

श्रीललित प्रकाशन, वृन्दावन

प्रकाशक –
श्रीललित प्रकाशन
श्रीललित-निकुंज,
ठाकुर श्री गोरेलाल जी की कुंज,
प्रेम गली, वृन्दावन, पिन–२८११२१
फोन – (०५६५) – ४४६१५३

संस्करण – २५० प्रतियाँ

प्रकाशन तिथि –
बिहार पंचमी, संवत् २०५६ वि॰
सोमवार, १३ दिसम्बर, १९९९ ई॰

प्राप्ति स्थान –
सर्वेश्वरी इंजीनियर्स
३५५, दीपाली प्रीतमपुरा दिल्ली – ११००३४
फोन – (०११) ७०२३७५०, ७०२१४९९

मुद्रक –
राधा प्रेस,
२४६५, गांधी नगर, दिल्ली – ११००३१
दूरभाष – (०११) २२१३१०७

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तिका में उन्नीसवीं शती के दो सन्तों की सुप्रसिद्ध और लोकप्रिय काव्यकृतियों का संयुक्त संग्रह है, जिनमें दो हैं – स्वामी सहचरीशरणदेव कृत "सरस मंजावली" तथा श्रीशीतलदास जी रचित "गुलजार-चमन"। इसके नामकरण पर विचार किया गया तो यही उचित प्रतीत हुआ कि "सरस मंजावली" का प्रथम और "गुलजार चमन" का अन्तिम शब्द मिलाकर "सरस चमन" नाम रख दिया जाय। यह नाम श्रीवृन्दावन का वाचक भी है।

सरस मंजावली के लेखक स्वामी सहचरिशरणदेव जी टटिया स्थान के महन्त थे। वे इस स्थान के संस्थापक स्वामी ललितकिशोरीदेव जी के प्रशिष्य महन्त श्रीराधाशरणदेव जी के शिष्य थे। स्वामी ललितमोहिनी-देव जी के तीन शिष्य क्रमशः टटिया-स्थान की गद्दी पर महन्त के रूप में विराजमान हुए, जिनके नाम सर्वश्री स्वामी चतुरदास जी, स्वामी ठाकुरदास जी और स्वामी राधाशरणदेव जी थे। महन्त स्वामी ठाकुरदास जी के नित्यनिकुंज प्रवेश के पश्चात् स्वामी राधाशरणदेव जी सम्वत् १८६८ से १८७८ विक्रमी तक टटिया-स्थान की गद्दी को समलंकृत करते रहे।

स्वामी राधाशरणदेव जी के प्रधान शिष्य श्रीसहचरिशरण का जन्म विक्रम सम्वत् १८३० के आसपास काश्मीर के एक भट्ट परिवार में हुआ था। आपका यह नाम सम्भवतः गुरु दीक्षा के पश्चात् का ही प्रतीत होता है। सं० १८४१ में आपने विरक्त दीक्षा ग्रहण की और अपने गुरु स्वामी राधाशरण देव जी के साथ बहुधा बुन्देलखण्ड में भ्रमण करते रहते थे। गुरुदेव ने आपको पनिहारगढ़ में निवास करके भजन साधन करने का आदेश दिया और स्वयं वृन्दावन चले आये। दम्पतिशरण, सम्पतिशरण नामक दो शिष्य उनके साथ थे।

अपने नित्यलीला प्रवेश से पूर्व स्वामी राधाशरणदेव जी आज्ञा दे गये थे कि श्रीसहचरिशरणजी को टटिया-स्थान की महन्त गद्दी पर विराजमान

किया जाय। दम्पतिशरण, सम्पतिशरण ने पत्र भेजकर श्रीसहचरिशरण जी से वृन्दावन आने की प्रार्थना की। गुरुविरह में व्याकुल होकर आप तुरन्त वृन्दावन आ गये और दालान बाग में उनकी समाधि बनवाकर विह्वल भाव से सेवा एवं भजन करने लगे। वृन्दावन के सन्त-महन्तों ने इन्हें सुयोग्य उत्तराधिकारी समझ कर चैत्र शुक्ला अष्टमी, सम्वत् १८७८ को टटिया-स्थान के महन्त पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

स्वामी सहचरिशरणदेव जी सोलह वर्षों तक टटिया-स्थान के महन्त पद को गौरवान्वित करके सम्बत् १८६४ में नित्यनिकुंज महल में पधारे।आपने अपनी रहनी रीति और अद्‌भुत काव्यप्रतिभा से संस्थान की समुन्नति एवं कीर्ति को उच्च शिखर पर पहुँचा दिया। सुप्रसिद्ध कवि एवं साहित्यकार श्री वियोगीहरि ने आपकी प्रशंसा में छप्पय लिखा है –

कुंज केलि माधुर्य सिन्धु पूरन अबगाह्यौ।
गादी कौ अधिकार सन्त व्रत अगम निबाह्यौ।।
मंजावलि रचि सरस रहसि पद्धति विस्तारी।
भई न है नहिं ह्वै है रचना अस रसवारी।।
जन रसिक मंडली आभरन सेये श्रीश्यामाशरण।
पट्‌ट शिष्य राधाशरण के प्रेमपुंज सहचरिशरण।।

स्वामी सहचरिशरणदेव जी ने छोटी बड़ी छह काव्यरचनाएँ कीं, जिनके नाम हैं–१. ललित प्रकाश २. गुरु प्रणालिका ३. आचार्योत्सव सूचनिका ४ श्रीबिहारी जी कौ नख शिख ध्यान ५. वचनिका सिद्धान्त की टीका–वचनावली तथा ६. सरस मंजावली। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

१. ललित प्रकाश – दो उल्लासों में विभक्त यह काव्यकृति चरित्र प्रधान है। प्रथम उल्लास में रसिक अनन्य नृपति स्वामी श्रीहरिदासजी का चरित और द्वितीय उल्लास में अष्टाचार्यों एवं उनके प्रमुख शिष्यों के संक्षिप्त चरित्र हैं। यह श्रीहरिदासी परम्परा का काव्यात्मक इतिहास है,

जिसके पूर्वार्द्ध में ५२० तथा उत्तरार्द्ध में ५१५ छन्द हैं। दोहा, चौपाई, छप्पय, सवैया, दण्डक आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। टटिया-स्थान से इसका प्रकाशन सं० १९८७ विक्रमी में हो चुका है।

२. **गुरुप्रणालिका** – इस रचना में हंस भगवान से लेकर स्वामी पीताम्बर- देव जी तक गुरुओं के नाम और कतिपय जीवन तथ्य ४७ रोला छन्दों में निबद्ध हैं।

३. **अष्टाचार्योत्सव सूचनिका** – श्रीस्वामी हरिदास जी से स्वामी ललितकिशोरीदेव जी पर्यन्त समस्त आचार्यों के प्राकट्य, दीक्षा एवं देहावसान की तिथियों तथा सम्वतों की सूचना १६ छन्दों की इस लघु कृति में दी गई है।

४. **श्रीबिहारी जी कौ नख-शिख ध्यान** – इसका विषय नाम से ही स्पष्ट है।

५. **वचनिका-सिद्धान्त की टीका 'वचनावली'** – श्रीस्वामी ललितकिशोरीदेव जी के उपदेशों का यह छन्दोमय रूपान्तर है। स्वामी ललितमोहिनीदेव जी के शिष्य श्री राधाकृष्णदास के आग्रह पर इसकी रचना की गई जैसा कि "ललितप्रकाश" से स्पष्ट है –

राधाकृष्ण व सोय, तिन अनुसासन मो दई।
छंद चौपाई होय, यों रच्यौ बचनावली।।

राधाकृष्ण दास ससि राका। गुरु पद पंकज बिच व्रत जाका।।
भली भाँति वानी जिन जानी। महाअनन्य रसिक रसखानी।।
उत्कट जासु विराग बिलोका। विषय विकारनि तें मन रोका।।

६. **सरस मंजावली** –श्रीस्वामी सहचरिशरण द्वारा १५० छन्दों में निबद्ध यह सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसमें १४१ माँझ, ६ अरिल्ल, १ दोहा, १ सोरठा और १ कवित्त है। अपने नाम के अनुरूप यह एक अत्यन्त सरस काव्यकृति है, जिसमें श्रीश्यामाश्याम के सौन्दर्य, माधुर्य तथा रसिक भक्त के मनोभावों की मार्मिक अभिव्यंजना तात्कालिक लोक प्रचलित शैली में की

गई है। उन्नीसवीं शताब्दी में वृन्दावन के भक्त रसिकों में माँझ नामक एक काव्यरूप अत्यन्त प्रिय तथा प्रचलित था। अठारहवीं शती के श्रीवल्लभ रसिक की माँझ सुप्रसिद्ध थीं। उनके समकालिक स्वामी पीताम्बरदेव जी की वाणी में माँझ का प्रयोग है। स्वामी भगवत रसिक जी की वाणी में एक स्थान पर माँझ और दूसरे पर मंज का उल्लेख है। सम्भवतः यह मंज पंजाबी शब्द हो, जो व्रजभाषा में माँझ हो गया हो। इसका नाम मंज या माँझ क्यों पड़ा, यह शोध का विषय है। माँझ में अधिकतर २८ मात्रा के सार छन्द का प्रयोग किया गया है और पंजाबी शब्दों ही नहीं, पूरे-पूरे वाक्यों को गूँथा गया है। स्वामी पीताम्बरदेव जी की एक माँझ है –

खसम हमारा नंगे सिरदे हौं नंगे दी रंडी।
मस्तक तिलक गले विच कंठी तन गूदर कर हंडी।।
कटि कोपीन अंगोछा इकरस ग्रीषम बरसा ठंडी।
पीताम्बर वन देखि रसिक संग छाँड़ि जगत सब भंडी।।

अट्ठाईस के साथ बत्तीस मात्राओं का प्रयोग भी प्राप्त है –

सखी समागम जुग जिय आनत बानत बाँम श्याम की सैना।
साँवल अंग गौर तन जोवन अतिरस श्रवत कहत बनै ना।।

श्रीभगवतरसिकदेव जी के शिष्य श्रीबिहारीवल्लभ जी ने भी माँझ लिखी हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के वृन्दावनवासी रसिकों में माँझ लेखन एवं गायन की प्रियता प्रचुर परिमाण में थी। सेवाकुंज गली में स्थित 'रसभारती संस्थान' के निदेशक डॉ॰ जयेश खण्डेलवाल ने बताया कि चाचा श्रीहित वृन्दावनदास जी की रचना 'जुगल सनेह पत्रिका' पूरी १५६ माँझों में है। इसमें शुद्ध व्रजभाषा में सिद्धान्त प्रतिपादन है। एक उदाहरण देखिए –

देखा देखी रसिक न होई, रसिक मार्ग अति बंका।
कहा सिंह की सरवरि करिहै, गीदड़ फिरै निसंका।।

महली की गति महली जानें, लखै न बाहरवारौ।
नृप की रहन सहन का समझै, भेड़ चरावनहारौ।।

श्रीहित वृन्दावनदास (द्वितीय) ने ७१ छन्दों की ''माँझावली'' में 'श्रीहित जन्म की बधाई' और कतिपय रसिकों का सुयश लिखा है। शुद्ध व्रजभाषा की इस रचना में एक दो छन्द पंजाबी भाषा के भी हैं –

खुसी दिलों दा चोर व्यास दे घर सानू लखि पाया।
श्रीहरिवंश नाम दे वाले तैंड़ा मुख दिखलाया।।
खूब हैं खुश खुश्तर दिमाग जाहर जहान जस छाया।
वृन्दावन हित राधावल्लभ लाल जु तैं प्रगटाया।।

इसीकाल में श्री व्रजजीवनदास ने प्रियादास की भक्तमाल टीका की टीका ''माँझ भक्तमाल'' लिखी। शाह ललितकिशोरी की यह माँझ तो अत्यन्त लोकप्रिय होगई –

देखो री ये नन्द का लाला बरछी मारे जाता है।
ललितकिशोरी जख्म जिगर पर नोंनपुरी बुरकाता है ।।

कवि गोपालराय ने ''वृन्दावन धामानुरागावली'' में 'मंजावली' का नाम ''आशिक कंठ मणिमाल'' बताया है। यह जानकारी भी डॉ॰ जयेश ने दी। इससे स्पष्ट है कि रसिक प्रेमी जनों में यह छन्द अत्यन्त प्रिय था और इसमें अधिकतर प्रेमासक्ति, रूप-सौन्दर्य, प्रीति की आतुरता आदि का वर्णन होता था।

'सार' छन्द का प्रयोग पूर्ववर्ती वाणी साहित्य में भी प्रचुरता से हुआ है, किन्तु वहाँ उसे पद रूप में प्रयुक्त किया गया है। श्रीहित हरिवंश महाप्रभु की 'चतुरासी' के पद सार छन्द में हैं –

पीतांबर तन धातु विचित्रित कल किंकिनि कटि चंगी।
नखमनि तरनि चरन सरसीरुह मोहन मदन त्रिभंगी।।

आजु सम्हारति नांहिन गोरी।
फूली फिरति मत्त करिनी ज्यों सुरत समुद्र झकोरी।
आलस बलित अरुन धूसर मसि प्रगट करत दृग चोरी।।

अनन्य मुकुटमणि स्वामी बिहारिनदासजी का एक पद द्रष्टव्य है –

होरी रस रंगारी। खेलत स्याम प्रिया गौरारी।।
प्रेम सहित सखि श्रीवृन्दावन खेलत जल जमुना री।
ढिंग ढिंग कुंजनि कुंजनि कूलनि फूल रही फुलवारी।।

उनके द्वारा रचित "सुहेलरा" तो समाज गायकों को अत्यन्त प्रिय है–

कुसुमित कुंज गुंज अलिमाला चंदन चरची गलियाँ।
सुखद समीर बहत सौरभ जल कमल विराजत थलियाँ।।

स्वामी सहचरिशरणदेव जी की 'सरस मंजावली' अपनी शैली की उत्कृष्ट रचना है। श्री 'वियोगीहरि' द्वारा उनकी प्रशंसा में लिखे छप्पय में इसका संकेत हुआ है। उन्होंने इसकी विशेषताओं का उल्लेख करते हुए बताया है – "इनकी रचना बड़ी उच्च कोटि की है। काव्य चमत्कार के साथ-साथ इसमें प्रेम माधुरी और रसिक–वारुणी की एक निराली छटा और मादकता है। इसकी भाषा भी अनूठे ढंग की है। ब्रजभाषा, खड़ीबोली, पंजाबी और फारसी का इसमें बड़ा ही मधुर मिश्रण हुआ है। कोई-कोई छन्द तो तीर, तलवार और तमंचा का काम करता है। हमारी राय में तो सहृदय जन 'सरस मंजावली' को न केवल कंठाभरण या हृदयाभरण ही बनावें, वरन् उसे रसिक समाज की गीता मान कर उसका नित्य पारायण करें।"

सरस मंजावली की टीका (तिलक)

सरस मंजावली में संस्कृत, व्रजभाषा के साथ अरबी, फारसी शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से किया गया है, जिससे उसकी सरल बोधगम्यता बाधित हो गई है। इन शब्दों के ज्ञान बिना उसके रस-माधुर्य का पूरा आनन्द प्राप्त नहीं किया जा सकता। बहुत दिनों से सुनने में आ रहा था कि टटिया-स्थान में इसकी एक टीका सुरक्षित है। आदरणीय बाबा

अलबेलीशरणजी के प्रयत्न एवं परिश्रम से वह प्राप्त हो गई और इसके साथ प्रकाशित की जा रही है। सभी भक्त रसिकों तथा साहित्य-प्रेमियों के लिए यह अत्यन्त उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण है। इसमें न तो टीका के किसी नाम का और न लेखक के नाम का उल्लेख है। सहचरिशरण देव जी के पश्चात् उनके शिष्य स्वामी राधाप्रसाददेव जी ने टटिया-स्थान की महंत गद्दी को सुशोभित किया था। वे अरबी-फारसी के अच्छे ज्ञाता, बहुश्रुत एवं बहुज्ञ थे। उन्होंने रसिक अनन्य मुकुटमणि गुरुदेव स्वामी बिहारिनदास जी की साखियों की टीका लिखी थी, जो फारसी लिपि में थी। "रसोपासना तिलक" नाम से इसका प्रकाशन नागरी लिपि में ललित प्रकाशन, वृन्दावन द्वारा कई वर्ष पूर्व कराया जा चुका है। विश्वास है कि यह टीका भी स्वामी राधाप्रसाददेव जी की कृति है।

उपर्युक्त टीका में विषम पदों के अर्थ तो स्पष्ट किये ही गये हैं, भावार्थों को भी बड़ी सूक्ष्मता एवं सहृदयता से खोला गया है। ये सभी अर्थ श्रीस्वामी हरिदासजी की विशुद्ध नित्यविहारोपासना की सुसंगति में हैं। उदाहरणार्थ मंज संख्या १४४ का युगलविहार परक अर्थ। अनेक मंजों का अर्थ सरल अथवा अतिशय गोप्य विहारपरक होने के कारण छोड़ दिया गया है। १४५ वीं मंज के लिए लिखा है – "सुरति संग्राम की' मंज है तातैं तिलक नाहीं कियौ।" १४६ वीं के लिए लिखा है – "या मंज कौ अर्थ प्रगट ही है।" तीसरी मंज में "हरफन्दे" का अर्थ प्रत्येक संकट भी किया जा सकता है, जिसे "संकट हरण करो' न कहकर भक्त की सात अभिलाषाओं में एक बताया गया है। इसी प्रकार ग्यारहवीं मंज के "रूपसुधासुख सीमैं" में सीम शब्द का फारसी अर्थ धन-दौलत, चाँदी, सोना किया गया है। मूल के विषम पदों की ही नहीं, सरल और दुरूह समस्त पदों की व्याख्या के कारण यह टीका की कसौटी—"सुगमानां विषमाणां च निरन्तर व्याख्या" पर खरी उतरती है।

प्राचीन वाणियों के मूल पाठ निर्धारण में टीकाओं की अतीव उपयोगिता है, विशेषकर समसामयिक अथवा निकटकालिक टीकाओं की।

वाणियों के लेखक एवं प्रतिलिपिकार प्रायः शब्दों को अलग-अलग न लिखकर एक शिरोरेखा में बाँध देते थे, जिससे शुद्ध पाठ या अभीष्ट अर्थ में अन्तर पड़ जाता है। सरस मंजावली के साथ भी यही समस्या थी, जो इस तिलक की प्राप्ति के पश्चात् दूर हो गई। मंजावली के पूर्व प्रकाशन बहुत अशुद्ध थे। एक शीर्ष रेखा के कारण अक्षरों के आगे-पीछे मिल जाने से और अरबी, फारसी, पंजाबी भाषाओं का समुचित ज्ञान न होने से मूल पाठ गड़बड़ा गया। इस तिलक की उपलब्धि के पूर्व पाद-टिप्पणियों में कठिन शब्दों के अर्थ देते समय कभी-कभी बड़ी कठिनाई आई। बहुत माथापच्ची करने और शब्दकोशों को उलटने-पलटने के बाद भी अनेक शब्दों के अर्थ समझ से परे ही रहे। अतः उन्हें छोड़ना पड़ा या अनुमान से लिखना पड़ा। अब शुद्ध पाठ निर्धारण से वे सरलता पूर्वक बोधगम्य हो गये हैं। उदाहरण के लिए बीसवीं मंज के एक चरण का पाठ था—**शोक रहित माशूक साहिबाँ अनखदार चव दाखैं।** इसमें चव शब्द का अर्थ समझ में नहीं आया तो 'च्यवित अंगूर रस' अनुमानित किया गया। टीका से ज्ञात हुआ कि शुद्ध पाठ —**''वच दाखैं''** है जिसका सीधा सादा अर्थ द्राक्षा जैसे मधुर वचन हैं।इसी भाँति अठ्ठाईसवें छन्द में —

छबि स्यामा खरसान अजूबा खरकर दाखर जच्चे।
पंचबान देवान जिते जिन सुभट जीभ जस नच्चे।।

''खरकर दाखर'' का अर्थ लग नहीं पा रहा था। दाखर को 'दाख' समझ कर रेफ का योग बुद्धि से परे था। पंचबान देवान में कामदेव अर्थ तो समझ में आ रहा था, किन्तु देव के स्थान पर देवान का प्रयोग क्यों? क्या यह देव शब्द का बहुवचन में प्रयोग था, जो अशुद्ध प्रतीत हो रहा था। तिलक देखने पर जान पड़ा कि शुद्ध पाठ है 'खकरदाँ खर' और 'पंचबान दे बान।' यहाँ पंजाबी प्रत्ययों का प्रयोग है। अर्थ है तीक्ष्ण किये हुए और पंचबाण (कामदेव) के। इसी प्रकार ''सरस कलाम न मानैं'' का सरस कला मन मानैं (७०); अदा मजा दी जोऊ का अदाम जादी दोऊ (७३); लताफत का लताफल (७८); बेतबीव का बेतवीत (८६); मुदमर्दां का

मुदमुर्दा (९५) पाठ बनाकर अर्थ का अनर्थ कर दिया गया। आधिव्याधि अपराधनि हनिए अरि अरितानि अरे हैं। (१२६) का सीधा अर्थ है कि शत्रुगण शत्रुता पर अड़े हुए हैं। जब इसका पाठ हो गया–"हरि अरिता नियरे हैं," तो अर्थ समझा गया हरि' की शत्रुता निकट है। मैन सैन कौतूहल कौ तिल सुरति समर रंग रेलै, में तिल का अर्थ मुख का सुन्दर तिल समझ में आ रहा था और अर्थ की सुसंगति बैठ नहीं पा रही थी। जब टीका देखी गई तो ज्ञात हुआ कि शुद्ध पाठ "मैंन सैंन कौतूहल कोतिल" है अर्थात् कामदेव की सेना से भिड़ने वाले कोतल (तुर्की शब्द) घोड़े। अब उक्त तिलक के आधार पर ये सभी पाठ संशोधित और शुद्ध कर दिये गये हैं।

श्री राधाप्रसाददेव जी ने अपने गुरुदेव के हार्द को भलीभाँति हृदयंगम किया है, जो मंजावली की टीका से पूर्णतः अभिव्यंजित होता है। उनके एक दो रेखता भी इसमें उपलब्ध हुए हैं।वे व्रजभाषा के सुकवि थे। उनके द्वारा विरचित छब्बीस सुन्दर पद और दस बधाइयाँ "रसिक अनन्य साहित्य सौरभ" में संगृहीत हैं। 'रसोपासना तिलक' की भाँति इस मंजावली-तिलक में भी उन्होंने पूर्व पक्ष एवं उत्तर पक्ष की कल्पना करके प्रश्नोत्तर प्रणाली से अर्थ सुस्पष्ट कर दिये हैं। व्रजभाषा गद्य एवं टीका–साहित्य को यह उनकी मूल्यवती देन है, जो व्रजभाषा गद्य-साहित्य के अनुसन्धायकों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

श्री शीतलदास जी और गुलजार-चमन

उन्नीसवीं शताब्दी की एक महत्त्वपूर्ण काव्यकृति गुलजार-चमन के रचयिता श्री शीतलदास का कुछ विशेष परिचय अज्ञात है। विरक्त सन्तों की परिपाटी का परिपालन करके उन्होंने अपना कहीं कोई परिचय नहीं दिया। बाह्यसाक्ष्यों से भी कुछ पता नहीं चलता। बस, इतना ज्ञात है कि शीतलदास जी का जन्म किसी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। कब और कहाँ, कुछ मालूम नहीं। वे टटिया-स्थान की महन्त-परम्परा में स्वामी ललितमोहिनीदेव जी के द्वितीय शिष्य एवं परम्परा के चौथे महन्त श्री स्वामी ठाकुरदासजी, जो सम्वत् १८५६ से १८६८ विक्रमी तक गद्दी को सुशोभित करते रहे, के शिष्य थे।

सम्भवतः बाल्यकाल में ही श्री शीतलदासजी घर छोड़कर वृन्दावन आ गये और विरक्त वैष्णवी दीक्षा ग्रहण कर ली। इसी से पहले के सारे सम्बन्ध समाप्त तथा विस्मृत हो गये। वे स्वामी सहचरिशरणदेव जी के समसामयिक थे और टटिया-स्थान में निवास करके भजन साधना करते थे।

महात्मा शीतलदास जी ने चरखारी राज्य में कुछ दिन निवास किया था। उनसे प्रभावित होकर चरखारी के तात्कालिक नरेश ने उनकी शिष्यता ग्रहण कर ली और अपने किले में इनके निवास हेतु श्री बिहारी जी का एक मन्दिर बनवा दिया। उसने वृन्दावन में भी टटिया-स्थान तथा दालान बाग के निकट एक सुन्दर मन्दिर बनवाकर गुरुदेव श्री शीतलदास जी को समर्पित कर दिया। दोनों देवालय आपके संरक्षण में आ गये। वृन्दावन के सन्तों ने इनकी रहनी-रीति तथा अनन्य निष्ठा से प्रभावित होकर महन्त पदवी से विभूषित कर दिया। इनके और भी अनेक शिष्य हुए होंगे, जिनमें एक महात्मा धीरमदास जी का नाम सर्वविदित है।

महन्त शीतलदास जी की तीन काव्य रचनाएँ प्राप्त हैं—गुलजार-चमन, आनन्द-चमन और विहार-चमन। इनमें क्रमशः १२१, ११२ और २४ कुल २५७ छन्द हैं। इन तीनों का प्रकाशन "गुलजार-चमन" नाम के अन्तर्गत अनेक बार हो चुका है। काव्यप्रेमियों विशेषकर ख्याल गायकों में इनकी कविता अत्यन्त लोकप्रिय है। ख्यालबाज बहुधा इनके छन्दों को चंग पर गाते रहते हैं और ख्यालों के शौकीन उनका आनन्द लेते हैं। इनकी रचना का मुख्य विषय है—'श्री विहारी लाल का रूप सौन्दर्य।' उनकी नखशिख सुन्दरता के एक से बढ़कर एक छवि-चित्र 'गुलजार-चमन' में दृष्टिगोचर होते हैं। रूप-सौन्दर्य के साथ वस्त्राभूषण, हावभाव, प्रियतम की चित्ताकर्षिणी अदाओं का भी बड़ा मधुर और मनोहारी अंकन उक्त तीनों रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है। प्रेमी के हृदय पर सरस रूप माधुरी और शोख अदाओं का कैसा मर्मबेधी प्रभाव पड़ता है, वह कितना व्याकुल और विवश होता है, इन सब की अभिव्यंजना शीतलदास जी के काव्य में बड़ी कुशलता से की गई है। फारसी शैली के एकांगी प्रेम का चित्रण इन तीनों

में प्राप्त है, जो इश्क मजाजी से इश्क हकीकी की ओर उन्मुख है। उर्दू शब्दों के प्रचुर प्रयोग के साथ उर्दू शेरो शायरी की भावयोजना और बिम्बों को प्रधानता प्रदान की गई है।

पिछली पीढ़ी के वरिष्ठ साहित्य–समीक्षक मिश्र बन्धुओं ने अपने 'मिश्रबन्धु विनोद' ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में श्री शीतलदास के चमनों की समीक्षा करते हुए लिखा है–"शीतल के चमन वास्तव में भाषा–साहित्योद्यान के अलंकार हैं। इनके सब छन्द प्रेम से परिपूर्ण हैं। इसमें मुख्यतया नख-शिख कहा गया है और पोशाकों एवं पगड़ियों का विस्तारपूर्वक वर्णन है। इनकी पूरी रचना में एक छन्द भी शिथिल या नीरस नहीं है और वह बड़ी ही जोरदार एवं चित्ताकर्षिणी है। इनके समस्त सब छन्द खड़ी बोली में हैं। खड़ी बोली के व्यक्तियों में श्री शीतलदास जी नम्बर प्रथम जान पड़ते हैं, क्योंकि इनके पहले का कोई खड़ी बोली का पद्य ग्रन्थ अब तक दृष्टिगोचर नहीं हुआ, केवल किसी-किसी कवि के दो-एक छन्द ऐसे मिलते हैं। खड़ी बोली में अद्यावधि जितने कवियों ने रचनायें की हैं, वे इनकी रचना के सामने आदरणीय नहीं है। जो लोग खड़ी बोली पर दोष आरोपित करते हैं कि इसमें उत्तम कविता नहीं हो सकती, उनको शीतलदास जी की रचना देखकर अपना दुराग्रह अवश्यमेव छोड़ देना चाहिए। बात यह है कि उत्तम कवि किसी भी भाषा में मनमोहिनी कविता कर सकता है, उसके वास्ते किसी भी भाषा एवं किसी विषय का अवलम्बन नहीं।

श्री शीतलदास जी की कविता में शब्द वैचित्र्य का भी बल है। इन महाशय की रचना देखने से जान पड़ता है कि यह भाषा के विद्वान् होने के अतिरिक्त फारसी तथा संस्कृत के भी ज्ञाता थे और ज्योतिष का भी अभ्यास रखते थे। इन्होंने बड़ी ही उमड़ती हुई भाषा में रचना की है और उर्दू के कवियों की भाँति तलाजिमे बाँधे हैं।..........इनकी गणना हम पद्माकर की श्रेणी में करते हैं।"

हमारा अनुमान है कि श्री शीतलदास जी ने केवल दो ही चमन लिखे हैं–गुलजार चमन और आनन्द चमन। विहार चमन नाम की कोई

रचना अलग नहीं है। विहार-चमन, आनन्द-चमन का ही एक अंश है। इस अनुमान का कारण यह है कि गुलजार-चमन के आरम्भ में उन्होंने इसे हुस्न बगीचे का वूटा बताया है–"इस हुस्न बगीचे का बूटा है शीतल का गुलजार-चमन"। हमें तो 'गुलजार-चमन' नाम पर भी सन्देह है, क्योंकि इसके ११६वें छन्द में उन्होंने 'शृंगार चमन' नाम का प्रयोग किया है–"बिन लाल बिहारी कौन लखै यह शीतल का शृंगार चमन।" फारसी में 'गुलजार' वाटिका या उद्यान को तथा चहल-पहल भरे रौनकदार स्थान को कहते है। चमन का भी अर्थ फारसी में बाग, वाटिका है। इससे प्रतीत होता है कि 'गुलजार' शब्द का प्रयोग शीतलदास जी ने विशेषण के रूप में किया है, न कि बाग के पर्याय रूप में। गुलजार चमन का अर्थ है रौनकदार भरा–पूरा उद्यान। यह उद्यान कौन सा है ? तो इसका नाम है–शृंगार चमन, जो पूरी तरह गुलजार और हुस्न बगीचे का बूटा है। वे चाहते तो यहाँ भी शृंगार के स्थान पर 'गुलजार' लिख सकते थे। 'आनन्द चमन' के तीसरे छन्द में श्री शीतलदास जी ने इसे अपनी दूसरी रचना बताते हुए नामोल्लेख किया है–

सुन लाल बिहारी ललित ललन यह है दूजा आनन्द चमन।

आनन्द चमन के अन्तिम छन्द में कुल छन्दों की संख्या बताई गई है एक सौ छत्तीस–"रस गुण शशि छन्द बनाय रचा यह प्यारे का आनंद-चमन", जबकि छन्दों की कुल संख्या एक सौ बारह मात्र है। 'विहार चमन' में कुल चौबीस छन्द हैं, जिन्हें आनन्द-चमन में जोड़ने से संख्या एक सौ छत्तीस हो जाती है। विहार चमन में कहीं भी इसका नामोल्लेख नहीं है और न 'विहार' शब्द का प्रयोग या विहार का वर्णन ही। केवल 'विहारी' के सौन्दर्य का चित्रण है, कृति संख्या या छन्द संख्या की चर्चा भी नहीं। प्रतीत होता है किसी ने इन चौबीस छन्दों को अलग करके 'बिहारी' के नाम पर 'बिहार चमन' शीर्षक दे दिया है, आनन्द चमन के अन्तिम छन्द की संख्या पर घ्यान नही दिया या "रस गुणशशि" का अर्थ नहीं समझा। श्री शीतलदास जी ने केवल दो ही चमन रचे हैं–गुलजार-चमन

(या श्रृंगार चमन) और दूजा आनन्द-चमन। तीजा बिहार-चमन नहीं।

साहित्य की दृष्टि से "सरस चमन" में प्रकाशित तीनों काव्य कृतियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। 'सरस मंजावली' तथा 'गुलजार चमन' मध्यकाल के साहित्य में विकसित 'रेखता' काव्य शैली की उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। सन्त कबीरदास से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक रेखता रचनाएँ खूब लिखी गईं। रेखता में हिन्दी के साथ अरबी, फारसी, उर्दू आदि भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया जाता था। बाद में कई भाषाओं के शब्दों के मिश्रण से बनी शैली रेखता कही जाने लगी।

प्रायः पद्य की टीकाएँ गद्य में लिखी जाती हैं। वचनावली टीका गद्य रचना की पद्यबद्ध टीका है। यह इसकी विशेषता है।

सुनने में आता था कि टटिया-स्थान में सरस मंजावली और गुलजार चमन की टीकाएँ मौजूद हैं, जो अब तक अप्रकाशित हैं। आदरणीय बाबा अलबेलीशरणजी से इन्हें उपलब्ध कराने हेतु आग्रह किया गया। उन्होंने मोहनी बिहारीजी के पुजारी बाबा राधाबिहारीजी से निवेदन किया। स्थान के महन्त स्वामी नवलदासजी महाराज से आज्ञा लेकर पाण्डुलिपियों के बस्ते खोजे गये, जो सामान से भरे भण्डार में नीचे दबे हुए थे। काफी प्रयास के बाद सरस मंजावली की टीका तो मिल गई; गुलजार-चमन की टीका अभी कहीं दबी पड़ी है। विलम्ब के भय से उसका अन्वेषण एवं प्रकाशन भविष्य के लिए छोड़ना पड़ा। मूल सरस मंजावली के छन्दों के नीचे पाद-टिप्पणियों में कठिन शब्दों के अर्थ कम्पोज हो चुके थे, टीका के साथ पुनः कम्पोज कराने से पृष्ठ और टिप्पणियों की संख्या में अन्तर आ गया। टीका में दिये गये पाठ से मिलान करने पर पाठान्तर एवं अर्थान्तर भी हो गया, जिसे फिर से बदल कर कम्पोज करना पड़ा।

टटिया-स्थान के संस्थापक स्वामी ललितकिशोरीदेव जी के 'अत्यन्त उपयोगी उपदेशों का संग्रह 'वचनिका-सिद्धान्त' के नाम से है। जनप्रिय इस कृति का प्रकाशन कई बार हो चुका है। स्वामी सहचरिशरणदेव जी ने इन उपदेशों को पद्य में रूपान्तरित किया है, जिसे 'वचनावली-टीका'

नाम दिया है। यह टीका पहले कभी मुद्रित नहीं हुई; अब तक अप्राप्त थी। इसे भी मूल वचनिका के साथ इस संग्रह में प्रकाशित किया जा रहा है। ३५५, दीपाली (प्रीतमपुरा) दिल्ली निवासी भक्तवर श्री महेन्द्रनाथ गोयल द्वारा श्रीललित प्रकाशन, वृन्दावन के माध्यम से प्रकाशित यह ग्रन्थ– "सरस-चमन" भक्ति-भक्त जगत् की एक सराहनीय सारवती सेवा है। इसके लिए वे सभी के साधुवाद, धन्यवाद के पात्र हैं। श्री स्वामी जी–बिहारीजी महाराज की पूर्ण कृपा उन्हें प्राप्त है, जिसके बल से वे अन्य सेवाओं के साथ साहित्य-सेवा भी करते रहेंगे दीर्घकाल तक।

श्री हरिदासी वाणी-साहित्य के शोध एवं प्रकाशन में आदरणीय बाबा अलेबलीशरण की रुचि तथा उत्साह स्तुत्य हैं। इस संग्रह के लिए टीका की उपलब्धि कराने से लेकर टिप्पणी-लेखन, प्रूफ-वाचन, सैटिंग आदि में उन्होंने जो सहयोग, श्रम और सुझाव दिये, उनके लिए कृतज्ञता ज्ञापित करने को शब्द अर्थहीन हो जायेंगे।

बाबा केलिदास जी और बाबा राधाबिहारी जी ने सरस मंजावली की टीका प्राप्त कराने में अत्यन्त सहायता की। हम उनके कृतज्ञ हैं। ग्रन्थ के प्रकाशन में राधा प्रेस दिल्ली के स्वामी श्री व्यासनन्दनशरण तथा चि॰ वंशीवल्लभ शर्मा ने बड़े धैर्य और आत्मीयता से मुद्रण कार्य सम्पन्न कराया है। एतदर्थ उनको हार्दिक धन्यवाद।

भक्त-रसिकों को सौन्दर्य-माधुर्य में निमज्जित करने के लिए विहार पंचमी के दिन श्री बाँके बिहारी जी प्रकटे थे। उन्हीं के सौन्दर्य तथा प्रेममाधुर्य में सराबोर करने को यह ग्रन्थ भी विहार पंचमी को प्रकाशित हो रहा है। "तुम्हारी कृपा तैं सब होइ श्री बिहारी बिहारिन।"

— **गोविन्द शर्मा**

श्रीस्वामी हरिदासजीके आराध्य श्रीबाँकेबिहारीजी महाराज

श्रीमन्नित्यनिकुञ्जविहारिणे नमः।
श्रीस्वामी हरिदासो विजयतेतराम्।।

श्रीस्वामी सहचरिशरण जी की वाणी

अथ श्रीबिहारी जू प्रगट भये, ता समय कौ नख-शिख ध्यान

नमामि हे नमामि हे सुदूर दुर्लभं परं।
अपार सार सार हौ बिहार तत्त्व श्रीधरं[१]।।
त्रिलोक ओक[२] नाइके सनाइके सहाइके।
अनन्दकंद वन्दकं[३] सुछन्द नेति गाइके।।१।।

प्रियाहि कंठ भूषणं किशोर जोर जोवनं।
अखण्ड प्रेम नित्य हौ कृपाल भक्ति थोवनं[४]।।
यशाधिकं रसाधिकं गुणाधिकं प्रभोत्तवे[५]।
अनन्य लाल लाड़िले सहस्र जैति त्वं नवे[६]।।२।।

अनन्त सन्त प्राण हौ सुजान श्याम सुन्दरं।
सजीव मूरि मोहिनी मनोज मौज मन्दिरं।।
किशोर चोर* चन्द्रिकानु-चन्द्रिका प्रकाशिनी।
किधौं जु नील अद्रि[७] ते उदोत इन्दु राशिनी[८]।।३।।

फबी सु पाग शीस पै सुरंग रंग शोभहीं।
किधौं सुपेंच पेंच में रच्यौ सुलोक लोभहीं।।
सुदेश[९] केश हैं सुवेष मैन[१०] भूप चौंर से।
कदम्बिनी[११] कदम्ब[१२] कै निहार[१३] हार भौंर से।।४।।

---

१. श्रीराधाधर-पति २. घर, आश्रम, विलास ३. वन्दना करनेवाला ४. स्थापित, आरोपित करनेवाला ५. प्रभा से युक्त, प्रभुत्व ६. नमस्कार करता हूँ ७. पर्वत ८. चन्द्रों का समूहं अनेक चन्द्रमा ९. उपयुक्त स्थान, सुन्दर १०.मदन, काम ११.मेघमाला १२. समूह १३. कुहरा। *यहाँ 'चोर' के स्थान पर 'मोर' पाठ होने की सम्भावना भी है। इससे अर्थ सौन्दर्य में उत्कर्ष हो जायगा।

विशाल भाल पै रची सु बिन्दु खौरि[१] रावरे[२]*।
प्रकाश काशमीर[३] में बस्यौ कि भानु भावरे।।
श्रुति[४] सुसुक्ति[५] कुण्डलं सुगण्ड[६] मण्ड प्यारसी।
किधौं मयूर चित्रितं विचित्र बिम्ब आरसी[७]।।५।।

अरोख[८] शोख[⊛] बंक भ्रू कमान काम काम के।
कुधी[६] कुधर्म खण्डनी सुतेग[१०] धारि धाम[११] के।।
चकोर चारु चारुता सुखैन नैन खञ्जनं।
प्रभा विशाल ताल[१२] में रसाल मीन मञ्जनं[१३]।।६।।

सभीर[१४] कीर कम्पितं अधीर नासिका यहै।
सबै सुबास बासनी तिल प्रसून[१५] को कहै।।
बुलाक चन्द्र-पूत[१६] कै सुगन्ध फूल झूमहीं।
किधौं सरोज सेज में सु शुक्र आनि घूमहीं।।७।।

प्रवाल[१७] लाल लाल कै दुकूल-दन्त[१८] ज्यौं जपा[१६]।
किधौं जु प्रात पंकजे विकच्च हीन ज्यौं छपा[२०]।।
रहे सुकुन्द मन्द ह्वै अमन्द दन्त दामिनी।
कपोल गोल अद्भुतं कि छाप काम कामिनी।।८।।

प्रवीण जीह जोजने[२१] अनेक कोक आकरे[२२]।
अमोल बोल बोलहीं बिहार भार सौं भरे।।

---

१. चन्दन की आड़ी लकीर २. आपके ३. केसर ४. कान ५. सीप ६. कपोल, गाल ७ दर्पण, दर्पण जड़ी अँगूठी ८. रोष हीन ६. कुबुद्धि १०. तलवार ११. प्रभाव (प्रभा) युक्त तलवार की धार १२. सरोवर, तालाब १३. स्नान १४. समूह १५. फूल १६. बुध १७. मूँगा, लाल, नये पत्ते १८. ओठ १६. जवा कुसुम २०. रात २१. लगाने में, संयोजित करने में २२. खान।
⊛ फारसी के इस शब्द का अर्थ ढीठ, चंचल या नटखट है। *पाठान्तर—साँवरे ।

चिबुक कौ चखौंड[१] चाहि[⊛] चोरि चित्त लेत है।
सिंगार के सरोवरी पर्‍यौ कि भौंर हेत है।।६।।

अखण्ड तुण्ड[२] दीपितं श्रवै रसाधिकं सदं[३]।
तजे निमेष लोचनं विलोक्य हास्य ईषदं[४]।।
छुटी अलक कुञ्चितं[५] किधौं जंजीर पास है।
नवीन मीन बंशिका[६] प्रभा प्रकाश आस है।।१०।।

किधौं कपोत[७] कोकिला त्रिरेख शंख भामिनी।
किधौं सु केकि[८] कण्ठ तें उठें जु राग रागिनी।।
विभूषणं विभूषिते प्रभा समुद्र बेलसी[९]।
मृणाल[१०] बाल[११] कन्ध जानु[१२] बेलि खेल में लसी।।११।।

समूल मञ्जु से लसे मनोज राज क्षोभितं।
प्रलम्ब बाहु दण्ड दोइ अंगदादि[१३] शोभितं।।
प्रज्योति रत्न मण्डितं सचूड़[१४] कंकणं करे।
सुभद्र[१५] मुद्रिका लसै फणी[१६] मणी मनो धरे।।१२।।

नवीन कल्प बल्लिका सपत्र अंगुली समे।
लिखस्तनं कि लेखनी नखावली मनोरमे।।
हृदै विशाल माल है मलूक[१७] मल्लिका[१८] जुही।
मलिन्द[१९]पुञ्ज गुञ्जहीं कि दुञ्ज[२०]सुञ्ज[२१]गीतुही।१३।।

---

१. दिठौना २. मुख, मुख का अग्रभाग, थूथन ३. सद्य, ताजा ४. थोड़ा सा ५. घुँघराले ६. मछली पकड़ने का काँटा ७. कबूतर ८. मोर ६. तरंग, लहर के समान १०. कमल की नाल, डंठल ११. नवीन, कोमल १२. घुटना १३. बाजूबन्द आदि १४. चूड़ा सहित १५. सुन्दर १६. साँप १७. सुन्दर १८. बेले का फूल, चमेली १६. भौंरे २०. द्वन्द्व, दोनों २१. स्वंजन, आलिंगन। ⊛ पाठान्तर–चारु।

सु मुक्त दाम मित्रजाम[१] धार गंग कै धसी।
सिंगार में कि हास्य की प्रवेश रेख सी लसी।।
बसी निशंक अंक में मयंक[२] बक्र[३] राधिके।
लई सकेलि[४] केलि की प्रकाश रास साधिके।।१४।।

त्रियावली सुभोदरे किधौं त्रिवेणि शोभिनी।
मनो सुवृत्त[५] बाम की बिहंग[६] बैठिकें बनी।।
विराज रोम राजियै[७] कि यन्त्र मन्त्र मोहिनी।
अनूप रूप कूप कै गंभीर नाभि सोहिनी।।१५।।

अभाव ल्याइ और सौं प्रभाव पृष्ठ देखिये।
बचै कराल काल की कि चोट ओट लेखिये[८]।।
कटि प्रदेश वेष किंकिणी बनी घनी बजै।
बनी[९] तके मृगेश[१०] रंक शंक लंक[११] यौं लजै।।१६।।

सँभारि साँवरे[*] कियौ सु अंगराग अंग में।
किधौं सु प्रेम प्रीति अंकुरा अनंग रंग में।।
पवित्र पीत वास यौं निवास बिज्जुरी घनं।
त्रिभंग अंगसंगिनी प्रियानुराग रञ्जनं।।१७।।

बलिष्ट पुष्ट जंघ मार[१२] आसनं अरम्भ[१३] सौं।
मिलैं भुसुण्ड[१४] सुण्डिका[१५] कि कद्दलीन खम्भ सौं।।

---

१. सूर्य पुत्री, यमुना २. चन्द्रमा ३. वामा, टेढ़े स्वभाव वाली ४. समेटना ५. मंडलाकार ६. पक्षी, आकाशगामी ७. पंक्ति ८. समझिये ९. वन १०. सिंह ११. कटि, कमर १२. कामदेव १३. प्रारम्भ, (रम्भ-टेक, सहारा) १४. हाथी १५. सूँड़। * पाठान्तर–रावरे।

मृगानु जानु मोहनं प्रमान जानु जानिये।
छलंग चूक चौकरी चकृत्त[१] चित्त मानिये।।१८।।

सनिग्ध[२] पिण्डुरी परम प्रमोद मोद कारणं।
गुलफ्फ[३] गोल मञ्जुलं मनोज चोज[४] टारणं।।
कुसेस[५] अंघ्रि[६] नूपुरे मनो मराल[७] मण्डली।
मुनीन्द्र वृन्द वन्दितं मुहुर्मुहु[८] सुखस्थली।।१६।।

पदंगुलीनि आनहीं निदान[९] प्राणपोषनी।
सकाम काम क्रोध छै अशोक शोक सोषनी।।
तमिश्र[१०]-मोह-मर्दनी नख-द्युति प्रसीदये[११]।
नक्षत्र क्षत्रपतिहू नक्षत्र शूर सीदये[१२]।।२०।।

दोहा–
श्रीकुञ्जबिहारीलाल छबि, शिखनख नख-शिख देखि।
सखीशरण अपने कही, रसिकन रंग विशेखि।।

१. चकित २. चिकनी ३. टखना ४. चमत्कारपूर्ण उक्ति, व्यंगभरी हँसी की बात, विदग्धतापूर्ण विलास ५. कमल, कुईं ६. चरण ७. हंस ८. बार-बार ६. अन्त, निर्णीत रूप में १०. अंधकार ११. निर्मल, स्वच्छ, अनुग्रह करें १२. कष्ट पाते हैं, दुःखी होते हैं।

श्री रसिकराजेन्द्रो जयति

अथ सरसमंजावली लिख्यते

चरण-चन्द्र-नख-चारु हरैं तम[१] ताब[२] सिताब[३] नसाहैं।
राखे रहैं सहाय हमेसा रसराहैं[४] बरबाँहैं[५]।।
सहचरिसरन कृपाल देहु तुम तनु तमाल छबि छाहैं।
अतिसै अति अरजी[६] मरजी[७] करु नजर नेहदी[८] चाहैं।।१।।

स्यामसुंदर प्रति विनय—**चरण-चंद्र-नख इति**—चरन जे हैं, तिनके नख-चंद्र चारु-सुंदर, **हरैं तम**—अज्ञान रूपी तम-अँधेरौ, ताहि हरैं, दूरि करैं, अथवा तम—तमोगुण, ताहि दूरि करैं। कह्यौ है—**चरन नख चंद्रिका हरत तिमिरावली।** पुनः कैसे हैं नख-चंद्र ? **ताब सिताब नसाहैं**। ताब जे अन्य प्रकास, तिनकौं सिताब कहैं तें—शीघ्र ही दूर करत हैं। **राखे रहैं सहाय हमेशा** कहैं तें—सदैव काहे की सहाई ? **रस राहैं**—रस के जे मार्ग, तिनकी। रस कहा;—प्रीति, प्रेम, आनंद इत्यादि। **बरबाँहैं** जे हैं, ते। पुनः **सहचरिसरन** कहत हैं—**हे कृपाल ! देहु तुम तनु तमाल**—तमाल रूपी जो तन, ताकी जे **छबि छाहैं**—अंग-अंग की छबैं, तेई भई छाया, सो देहु, अर्थात हमारी त्रैतापनि कौं दूरि करौ। **अतिसै अति अरजी** यही है, ताहि सुनिकैं **मरजी करौ**; **नजर नेहदी चाहैं**—हमारे ऊपर नेह की चितवनि करौ, अर्थात हमारे औगुन देखिकैं कोप की चितवनि मति करौ।।१।।

जनु अनुराग बुलबुलैं लालन बाग बहार सराहैं।
सिखि[९] सिखिपिक्षमौलि[१०] मनरंजन यार मुदार[११] सिला हैं।।
आसिक रसिक स्यामघन चातक चारु करत चरचा हैं।
सहचरिसरन अचाहैं चाहैं नजर नेहदी चाहैं।।२।।

---

१. अन्धकार, अज्ञान २. ताप, बल, तीव्रता ३.शीघ्रता, चाँदनी ४. रस मार्ग ५. श्रेष्ठ भुजाएँ ६. प्रार्थना ७. रुचि, इच्छा ८. प्रेम की ९. मोर १०. मोर मुकुट ११. एक विशेष प्रकार की शिला जिसमें प्रत्येक वस्तु का प्रतिबिम्ब मोर के रूप में दीखता है।

जनु अनुराग बुलबुलैं इति—लालन बाग बहार सराहैं। जन जे हैं आसिक, तेई भए अनुरागमय बुलबुलैं-पक्षी, **लालन** यह संबोधन पद है। हे लालन! बाग तुमही भए, **बागबहार**—बसंत सोभामय **सराहैं**—अस्तुति करैं हैं। तथा और प्रकार कहैं हैं—अनुरागमई जन जे हैं; ते तौ लालन की अनुरागमई बुलबुलैं—पक्षी, जे हैं, ते बाग बहार की सराहैं कहियै—प्रसंसा करैं हैं। बुलबुलैं कहैं हैं—हे आसिकजन हौ! बाग बहार कौं तौ देखौ। कहा अद्‌भुत सुंदर है, कैसे अद्‌भुत सुंदर, सुमन प्रफुलित ह्वै रहे हैं। या प्रकार बुलबुलनि की वचनावली श्रवन करिकैं आसिक जन कहत भए—हे बुलबुलैं हौ! तुम पक्षी हौ। आसिकी नहीं करि जानत हौ। लालन पै आसिक होते, तौ हम जानते। तुम चतुरसिरोमनि हौ। कदाचित कहौ, हम तौ बाग बहार के आसिक हैं? तौ बाग रूप लालन ही हैं। कैसैं हैं बाग रूप; सो आगें कहैंगे। चमन चारु छबि; तिनही पै आसिक कौन न भए? लालन की रस भरी मनोहारी चाल है। रस भरी मनोहारी वचनावली है। रसभरी मनोहारी कटाक्षावली है। रसभरी मनोहारी मुसिक्यानि है। रसभरी मनोहर अंग-अंग की छबि है। परम सुंदर बसन-भूषन धारन करैं हैं। ऐसौ परम लाड़िलौ लालन महबूब है। ताके आगें अन्य सुख-सोभा तुच्छ हैं। या प्रकार सुनिकैं बुलबुलनि कौ मन संकोच कौं प्रापित भयौ। **सिखि सिखिपिक्षमौलि इति**। सिखि कहियै—मयूर, ताकौ जो पिक्ष, सो है मौलि—माथे पर मोरमुकुट कौं धारन करैं; ऐसे जो तुम, सोई भए सिखि—मयूर मनरंजनहार। **यार** जे आसिक, तेई भए **मुदार सिला**। मुदार सिला नाम करिकैं रक्त पाषान है, सो मयूर पै आसक्त है। कहिवे कौ तात्पर्य यह; अैसेही आसिक-रसिक, हे स्याम! आप पै आसक्त हैं।

दोहा—

जीव जुगल रस पान, बिनु मनहि न आनै और।
जैसैं सिला मुदार में, जो दीसै सो मोर।।

मुदहि आदि सिल हे सखी, अचिरज कहौं जु कास।
सब जग दरसै तास मैं, सज्जन मोर प्रकास।।

तथा सिखि जे मयूर हैं, तिनके अर्थ सिखिपिच्छमौलि मनरंजन जे हैं, तिनके अर्थ यार अरु मुदार सिला जे हैं, ते मिलिकैं परस्पर चरचा करैं हैं। मुदार सिला कहैं हैं—हे यार हौ ! हे आसिक-रसिक हौ। सिखि सुंदर है, चित्र-विचित्र तिनके अंगन की रचना है, तिनही तौ निहारौ। या प्रकार सुनिकैं आसिक-रसिक कहैं हैं—हे मुदार सिला हौ ! तुम पाषान हौ। तुमने आसिकी समझिकैं न कीनी। सिखिपच्छमौलि मनरंजन सर्वांग परम सुंदर हैं। अंग-अंगनि तें अमित, अनेक विधि कौं छिन-छिन प्रति छबि प्रगट होति रहति है; अैसौ जो हमारौ महबूब; तापै तुम आसिक होते, तौ हम जानते, तुम प्रवीन हौ। या प्रकार सुनिकैं मुदार सिला हू पुनः कहै है—हे आसिक-रसिक हौ ! अपने महबूब के नाम कौ अर्थ तौ विचारौ, कहा अर्थ है ? सिखि जो मयूर, ताकौ जो पिच्छ, सो है मौलि माथे पर विराजमान, यातें सिखिपिच्छमौलि नाम है। याही तें हमारे महबूब सर्वोपर हैं। या प्रकार सुनिकैं आसिक-रसिक हू पुनः कहैं हैं—हे मुदार सिला हौ ! हमारे महबूब ने मयूर के पिच्छ अपने सीस पर धारन करे हैं; याही तें मयूर, तिहारे महबूब होवे कौं समर्थ होत भये; और पक्षी क्यों न भए ? अथवा हमारे महबूब के नाम कौ अर्थ तुम ने नहीं जान्यौ। हम अर्थ करैं हैं, ताहि तुम श्रवन करौ। सिखिपिच्छमौलि जो कोऊ है, ताहू के मन कौ रंजन है; याही तें सिखिपिच्छमौलि मनरंजन नाम है। याही तें हमारौ महबूब सकल महबूबनि कौ मुकुटमनि है। या प्रकार श्रवन करिकैं मुदार सिला मूक होति भई। **हे स्याम !** तुम जो हौ, सोई भए **घन** कहिये—मेघ; ऐसे जो तुम, तिनके **आसिक-रसिक** तेई भए चातिक, ते **चारु चरचानि** कौं करैं हैं। चरचानि कौ तात्पर्य यह, परस्पर मिलिकैं स्यामघन के गुन गावत हैं। तथा आसिक-रसिक जे हैं, ते स्याम के अर्थ, चातिक जे हैं, ते घन के अर्थ परस्पर

मिलिकैं चरचानि कौं करैं हैं। चातिक कहैं हैं—हे आसिक-रसिक हौ ! घन कहियै—मेघ, ताकी महिमा तौ श्रवन करौ। सुंदर है; सुखदायक है; स्वाँति बूँदनि कौं बरसै है, तिनहिं पान करिकैं हम जीवैं हैं, या प्रकार चातिकन की बानी श्रवन करिकैं आसिक-रसिक कहैं हैं—तिहारौ कुल प्रसंसनीय है; परंतु तुमकौं आसिकी समझिकैं कियौ चाहियतु है। मेघ उपल बरसैं हैं; तिनहि करिकैं तुम्हारे पंख टूटि-टूटि परैं हैं। गाज हू गिरै है; ता करिकैं तुमकौं दुख हू होय है। सदा तुम प्यासे ही रहौ। मेघ स्वाँति बूँद कबहुँक बरसैं हैं। मेघ होंहिं अरु मिटि जाइ हैं। स्याम परम सुन्दर है। घन-वृंद, मदन-वृंद, नीलमनि-वृंद, तमाल-वृंद तापै वारियतु है। नवकिसोर है। प्रेम रस, आनंद रस, रूप रस कौं अहरनिस बरसै है। एक रस है। ऐसौ जो हमारौ प्यारौ, तापै तुम आसिक होते; तौ हम जानते, तुम प्रवीन हौ। या प्रकार सकल महबूबनि की तरह दरसायकैं सकल आसिकनि कौं विजय कियौ है। आसिक-रसिक स्यामसुंदर पै आसक्त भए हैं। सहचरिसरन कहत हैं—**अचाहैं चाहैं**—नाना भाँति की चाहैं कहियै—चाहना, तिनतें अचाहैं कहियै—अचाह है। चाह रहत है—**नजर नेह दी चाहैं**। परंतु हे स्याम ! ऐसे जो अचाही, तेऊ आपकी नेहमई नजरि जो चितवनि, ताहि चाहत हैं। काहे के अर्थ, सो कहैं हैं—हृदय सचिकन होय। याकौ और हू तात्पर्य यह है, जो नरपति, जाके ऊपर नेहमई चितवनि करैं हैं, ताकौं सकल सुख-संपति प्रापित होय है। ऐसैंही आपकी नेहमई चितवनि कौ प्रभाव वाहू तें अधिक है, ताकौं चाहैं हैं। ता करिकैं अखिल दुख दूर होंहिं; भजन, सुख-संपति सकल प्राप्त होंहिं। और हू जुक्ति सौं अर्थ हैं—**अचाहैं** कहियै—अचाही जे आसिक-रसिक **चाहैं** कहिये—तेऊ चाहत हैं **नजर नेहदी चाहैं**। आपकी जो नेहमई नजरि, सोई भई चाहैं कहिये—चाह। चाह नाम करिकैं एक औषधी है, ताकौं जो कोई पान करै है, ताकी निद्रा, आलस्य कौं हरै है। ताहू तें अधिक आपकी नेह

नजरि चाहैं हैं; सो हमरी निद्रा, आलसनि कौं हरैं। हे स्याम ! यह आपसौं प्रार्थना है। तथा सहचरिसरन कहैं हैं—हे स्याम! चाहैं कहिये—नाना भाँति की चाहना; अचाहैं कहिये—तिनतें अचाह है; ऐसैं जे आसिक-रसिक नजरि नेहदी—नेह की जो नजरि, चितवनि है, ताहि चाहैं कहिये—अवलोकिवौ करैं हैं। मेरीऊ यह प्रार्थना है—रसिक-आसिकन के अनुगामी है कैं अविलोकिवौ करौं इति।।२।।

दामन गहे रहैं जामे का इती अरज मुदकंदे[१]।
दरस दिया करि मिहर[२] किया करि मिहरवान हर फंदे[३]।।
छबि चिराग[४] रोसन[५] चित चहिए सहचरिसरन अमंदे।
अइ[®] गरीबपरवर[६] ! गरीब हम इन कदमों दे बंदे[७]।।३।।

दामन गहे रहैं इति—हे मुदकंदे !—हे आनंद के कंद ! इती **अरज** है। किती अरज है; आपकौ जो जामा है, ताकौ जो दामन है; ताहि गहे रहैं। कहिवे कौ प्रयोजन यह है कैं आपकी सेवा में बने रहैं; अथवा हेतु यह कैं समीप बने रहैं। **दरस दिया करि इति**—अपनौ दरस दियौ करौ। कदाचित आप कहौ कै जब तुम सेवा में रहौ अथवा समीप रहौ; तब दरसन कहा भिन्न रह्यौ ? सो सत्य; परंतु आप स्वतन्त्र हौ, परतंत्र नाहीं। कदाचित सेवा में न राखौ; तौ दरसन तौ दियौ करौ। कदाचित दरस हू न देहु; तौ **मिहर** जो कृपा, सो तौ कियौ करौ। आपु **मिहरमान** हौ; यातैं आप सौं कृपा जाचत हैं। कदाचित कृपा हू न करौ; तौ **हर फंदे**—हमारे फंद तौ दूरि करौ। कदाचित फंद हू न दूरि करौ; तौ छबि रूपी जो **चिराग**—दीपक, ताकौ **रोसन** जो प्रकास, **चित** चहिये—चित में चाहियतु है। तात्पर्य यह है कै उर में प्रकास करौ। अथवा चिराग-रोसन के सम है छबि जाकी,

---

१. आनन्दकन्द २. मेहर, कृपा ३. संकट ४. दीपक ५ प्रकाशित ६. दीनपालक ७. दास।
® पाठान्तर—ऐ।

ऐसी जो कही स्यामा; सो कहिये—दीपसिखा दी सी देह—लड़ैती जू हमारे उर में प्रकास करैं, सो आप करौ। सहचरिसरन कहैं हैं—कैसौ है प्रकास? **अमंदे**—कबहूँ मंद न होय। कदाचित प्रकास हू न करौ; **अय गरीब इति**—अय कहैं तें हे **गरीबपरवर**—गरीब जो दीन, ताके परवर-पालक, ऐसे जो आपु; गरीब कहिये—दीन; ऐसे जे हम, तिनकौ पालन करौ। **इन कदमों दे बंदे**—ए जे आपके **कदम** कहिये—चरन, तिनके हम सब **बंदे**—दास हैं। अथवा सकल हमारे जे अभिलाष, तिनकौं पूर्न करौ। कौन-कौन से अभिलाष, ते कहैं हैं—**दामन गहे रहैं जाने का** प्रथम; **दरस दिया करि** दुतिय; **मिहर किया करि** तृतीय, **हरफंदे** चतुर्थ; **छबि चिराग-रोसन** पंचम; **गरीब कौ पालक** षष्टम, **कदमों दे बंदे** सप्तम इत्यादि अभिलाष पूर्न कीजिये।।३।।

अरिल्ल –

कुंजबिहारीलाल मजेज[1] न कीजिए।
भव-भय-भंजन भीर सु दारू दीजिए।।
चरन कमल की सौंह और नहिं ठौर है।
सहचरिसरन गरीब करौ किन गौर[2] है।।४।।
स्याम कठोर न होहु हमारी बार कौं।
नेक दया उर ल्याय उदै करि प्यार कौं।।
सहचरिसरन अनाथ अकेलौ जानिकैं।
कियौ चहत खल ख्वार[3] बचावौ आनिकैं।।५।।

दारू नाम दवा कौ है। दवा कौन सी? दरसन अथवा कृपा। और सकल अर्थ प्रगट ही है।।४।। याकौ अर्थ प्रगट ही है।।५।।

१. गर्व, घमंड २. ध्यान, चिन्ता ३ तबाह, परेशान।

प्रनतपाल प्रन यहहि प्रनत कुऊ लगहि पगहि नहिं नक्खैं[१]।
साफ गुनाह माफ करि केते नजर महरदी रक्खैं।।
जद्दपि बेवकूफ जन तद्दपि सुखद अलेखन[२] लक्खैं।
सहचरिसरन दिलाबर[३] दिलबर[४] तिसकी छबि चख चक्खैं।।६।।

प्रनतपाल इति—प्रनतपाल—प्रनत जे दीन, तिनके पालक; ऐसे जे हरि, तिनने प्रन कियौ है। प्रणत **कुऊ**—कोऊ दीन कौ न होइ; नीच होय अथवा ऊँच होय; रंक होय अथवा राजा होइ **लगहि पगहि**—पग जे चरनारविंद, तिनसौं लगै कहिये—एकहू बार दंडवत करै; **नहिं नख्यैं;** ताकौ त्याग नहीं करैं हैं। अथवा लगै कहिये—भाव सौं लाग करैं हैं; पगहि कहिये—प्रेम सौं पगि जाय हैं; नहिं नख्यैं—प्रमान कौ नहीं नाखैं हैं। ऐसौ जो दीन हू क्यों न होइ, परंतु प्रनतपाल कृपा ही करैं हैं। **साफ गुनाह**—केवल अपराध ही हैं, जाके विषै गुन कौ लेसमात्र नाहीं, **माफ करि केते**—कितेहू जे ऐसे अपराधी हैं, तिनहूँ कौं छमा करैं हैं। **नजरि मिहर दी रक्खैं**—कृपा की चितवनि राखैं हैं। **जद्दपि बेवकूफ**—जदपि करतूत रहित है, **तद्दपि हु सुखद**—तदपि सुखनि कौ दाता हैं। **अलेखन** जे लेखे में ना आवैं, ऐसैं अनंगन सुख देइ हैं—लक्खैं। लावनि कौं सेस, सारदा कौं आदि दै कोऊ गनना करि सकै; सो काहू की सामर्थ नहीं। **सहचरिसरन** यह सम्बोधन है कै हे सहचरिसरन ! रसिक जन कहैं हैं—**दिलाबर**—दिलचालाक; ऐसो जो मनमोहन प्यारौ, अगनित सरस गुन-मंदिर सुंदर **दिलबर**—दिल कौं लेनवारौ; कहिवे कौ तात्पर्य यह, परम सुख भर्‍यौ चंचल है; **तिसकी छबि**—ताकी जो छबि है, ताहि **चख** जे नेत्र, तिनसौं **चक्खैं**—चाखत हैं। तात्पर्य यह अवलोकत रहैं हैं।।६।।

---

१. त्यागते, ठुकराते हैं २. अदृष्ट, अगोचर ३. साहसी, शूरवीर ४. प्रियतम, रसिक।

अरे कोऊ तौ कहौ स्याम सौं दरद हिकायत[१] मेरी।
आवै इधर उधर के टेरे दारू[२] देहिं सबेरी।।
तरफरात जल बिन मछरी जिमि[३] दुस्सह दसा घनेरी।
सहचरिसरन बचै सो कीजै मीच[४] नीच इत हेरी।।७।।

अरे कोऊ तौ कहौ स्याम सौं—यह अत्यंत व्याकुलता की कहनि है। **दरद** जो दुख ताकी **हिकाइत** जो कहानी, सो स्याम सौं कोऊ तौ कहौ। प्रस्न—कहानी में क्यौं कहैं, प्रगट वार्ता में करिकैं क्यौं न कहैं ? उत्तर—कहानी में कहिवे कौ तात्पर्य यह, मोकौं दुख तौ अत्यंत है; परंतु छख्य[५] है। प्रगट करिकैं कहौगे तौ सब कोऊ जानि लैहैं। जानि लैवे में मेरौ अजस होयगौ। तातें कहानी में कहिवौ योग्य है। स्यामसुंदर चतुरसिरोमनि हैं, सोई एक जानिहैं। दारू नाम दवा कौ है। दवा कौन; सो मधुर मृदु मंद मुसिक्यानि। **तरफरात जल बिनु मछरी जिमि दुःसह दसा घनेरी। सहचरिसरन बचै सो कीजै मीच नीच इत हेरी।। मीच** जो नीच, सो **इत** कहिये—मेरी ओर चितई है। सो कोऊ तौ स्याम सौं कहौ, हमारी रक्षा करैं। प्रस्न—मीच तें तौ साधु-महानुभाव भय नहीं मानैं हैं, तुम क्यौं संकित होत हौ ? उत्तर—मीच होय तौ होय; संकित यातें होत हौं; नीच मीच न होय। प्रस्न—नीच मीच कौंन कहावै ? उत्तर—जा करिकैं जुगलकिसोर कौ स्मरन भूलि जाय, सो नीच मीच। और अर्थ प्रगट ही है।।७।।

हरदम याद किया करि हरि कौं दरद निदान[६] हरैगा।
मेरा कहा न खाली ऐ दिल ! आनन्दकन्द ढरैगा।।
ऐसा नहीं जहाँ बिच कोई लंगर[७] लोग लरैगा।
सहचरिसरन सेर दा बच्चा क्या गजराज करैगा।।८।।

---

१. कथा, कहानी २. मदिरा, औषधि ३. ज्यौं, जैसे ४. मृत्यु ५. छक-लालसा, तृप्ति, नशा ६. निश्चय, अन्त में ७. ढीठ, दुष्ट।

दोहा–

कबीर साधौ सेती साधु हौ, रंका सेती रंक।
बंका सेती बंक हौ, तिरबंका चौबंक।।८।।

मीठा मंजु पिलाया प्याला ऐसा मुरसिद[1] मेरा।
रसिकराज दा मैं गुलाम जिमि कामी कामिनि चेरा।।
आसिकान दा संग रंग उर ब्रज वृन्दावन हेरा[2]।
सहचरिसरन मोहिनी मोहन दिया हिया बिच डेरा।।६।।

मुरसिद–गुरु सौं कहैं हैं। और अर्थ प्रगट ही है।।६।।

फक्कर की टक्कर अब सबसे हला-भला[3] न हमारी।
दफतर[4] फारि खुसामदहू का डारि दिया डर भारी।।
बेपरवाह भये दुनिया से महिर फकीराँ[5] धारी।
रसिक सहचरीसरन हमन से मनमोहन से यारी।।१०।।

फक्कर की टक्कर इति–रसिक उक्ति–फक्कर कहिये–त्यागी, ऐसे जे हैं हम; तिनकी टक्कर **अब सबसे**–अब सबही सौं टक्कर है। प्रस्न–अब कहिवे में यह समझी गई कैं प्रथन[6] होगी? उत्तर–सो सत्य; जब ताँई वैराग्य नहीं आवै है, तब ताँई याकौं सकल की भय रहै है। निर्भय भये तें यह सबकौं टक्कर दैनवारौ होइ है। प्रस्न–सब कौन से? उत्तर–काल-मायादिक जबरदिल हैं, ये सबकौं जीति लेहिं हैं, रसिकन कौं नहीं। **हला-भला न हमारी**–अन्तःकरन तें तौ बैर-भाव, ऊपर तें मनरंजन के हेत हला-भला, सो हमारें नहीं। **दफतर फारि खुसामदहू का**। उत्तर–खर्च, आमद, वसूल, बाकी जामैं लिखे जाइ हैं; सो दफतर कहावै है। खुसामद कौ दफतर कैसौ? उत्तर–फलाने की खुसामद करी है; फलाने की खुसामद करने है। फलाने की या

---

१. मार्गदर्शक, गुरु २. देखा, ३. हलचल, धूमधाम ४. पत्रावली, बही, कार्यालय ५. साधु, सन्त ६. फैलना, प्रसिद्ध होना।

प्रकार खुसामद करी है, फलाने की खुसामद या प्रकार करने है, यही दफतर है; सो फारि गेरौ है।

खुसामद बरामद[१] अजब मसबरा[२]।
चरंदम खुरंदम अजब दिलबरा।।
मूजी मुनासिब[३] बरतरफ[४]।
साहौं कि डेरे हर तरफ।।

डार दिया डर भारी—लोक-लाज कौ भारी डर है; सोऊ डारि दियौ है। **बेपरवाह भये दुनिया से महिर फकीराँ धारी। रसिक सहचरीसरन हमन से मनमोहन से यारी—बेपरवाह हम भए दुनिया से।।** यापै रेखता—

हमनू आसिक दिवाना हैं हमन को होशयारी क्या।
रहे आजाद हो जग से हमन दुनिया से यारी क्या।।
खलक सब नाम अपने कौं वजै[५] कौ सिर पटकता है।
हमन गुमनाम आलम हैं हमन कौ नामदारी क्या।।
जु बिछुरा है प्यारे से भटकता दरबदर फिरता।
हमारा यार है हम कनै[६] हमन कौ बेकरारी क्या।।
न मैं बिछुरौं पियारे से न बिछुरैं पिया हम से।
जहाँ यह नेह लागा है तहाँ फिर इंतजारी क्या।।
सुमीर आजिज हुवे फारक गरूरी डारि सब दिल से।
जु चलना राह नाजुक है हमन सिर बोझ भारी क्या।।

महिर फकीराँ धारी। प्रस्न—पूर्व जो वैराग्य दसा कही, सो तौ होवौ अति दुर्लभ है; कैसे भई ? उत्तर—फकीर जे वीतराग, तिनकी

---

१. प्राप्ति २. सलाह, मंत्रणा ३. उचित ४. पदच्युत, अलग किया हुआ ५. कारण ६. निकट, पास।

महिर जो कृपा, तातें वैराग्य दसा दुर्लभ भई। पुनः रसिक कहैं हैं– फकीर जे रसिक विरक्त सिरोमनि श्रीस्वामी हरिदास जू, तिनकी कृपा तें मनमोहन से यारी है। महतजनन की कृपा बिना वस्तु प्रापित नहीं होय है। भागवते–**विना महत् पादरजोभिषेकं। निष्किंचनानां न वृणीत यावन्** इत्यादि।।१०।।

बेचगून अरु बेनमून कोऊ पाय अफीमै झीमैं[1]।
सहचरिसरन खुसी किनि कोऊ गाया करौ रहीमैं[2]।।
स्यामल स्यामा मिला हमन कौं रूप-सुधा सुख-सीमैं[3]।
वर सरबत मिश्री दा प्याला पिया पियैं क्या नीमैं।।११।।

बेचगून इति–बेचगून कहिये–अमाइक, बेनमून कहिये–स्वरूप रहित; ऐसौ जो ब्रह्मानंद कुँऊ पाय **अफीमै झीमैं–कोऊ**–जे वेदान्ती हैं, ता आनंद कौं पायकैं छके भये झूमैं हैं। कहिवे कौ तात्पर्य यह, ब्रह्मानंदमय ह्वै रहे हैं, अन्य दृष्टि जिनके नहीं। जैसैं अफीमी अफीम के अमल में छकौ रहै है। **सहचरिसरन खुसी इति**–रसिकजन कहैं हैं–कोउ राम कौं, कोउ रहीम कौं गायौ करौ। कहिवे कौ तात्पर्य यह, कोउ अगुन के सुख में, कोउ सगुन के सुख में छके रहौ। पुनः रसिकजन कहैं हैं--स्यामल-स्यामा हमकौं मिला है; रूप-सुधा सुख कौ सोना है। प्रस्न–स्यामल-स्यामा जे युगल, ते अगुन हैकैं सगुन हैं; कै अगुन-सगुन तें भिन्न हैं। उत्तर–अगुन-सगुन तें भिन्न हैं। प्रस्न– अगुन-सगुन तें भिन्नता कौ लक्षण कहा ? उत्तर–निर्गुन करि माया नहीं तामैं; सरगुन करि सब गुन हैं जामैं। **वर सरबत मिश्री दा प्याला;** सो वह रूप सुधा सुख मिश्री के सरबत सम है। ताकौ प्याला जो कोउ पीवै है; **पियैं क्या नीमैं**; ते वे नीम कौं नहीं पीवैं हैं। **जीभ निबौरी क्यौं लगै बौरी चाखि अंगूर।** प्रस्न–बिंब कहा ? उत्तर–बिंब नास्तिक धर्मादिक; युगल रस रहित सकल बिंब के सम जानिऔ।।११।।

१. झूमते रहें २. कृपालु, प्रभु ३. चाँदी, धन, दौलत।

प्याइ प्याइ अब क्यौं न पिवावै छबि सराब नहिं थोरौ।
हा हहरात[1] चितै रुख[2] रूखौ हँसि हिय से हिय जोरौ।।
सहचरिसरन सनेही सोहन करि सनेह जिन तोरौ।
राखै तोहिं सलामत[3] स्यामा आसिकान रस बोरौ।।१२।।

प्याइ प्याइ इति—महबूब जो मनमोहन है, तानै आसिक-रसिक जन जे हैं; तिनके चित में अधिक प्रेम उत्पन्न करिवे के अर्थ—निरंतर तौ आसिकनि में अधिक प्रीति है, परंतु ऊपर तें रुखाई सी दरसाई है। ताकौं अविलोकि कैं आसिकनि की उक्ति है—**करि सनेह जिनि तोरौ।**

सवैया—

कित में ढरिगौ वह ढार अहो जिन आँखिन मो तन हेरत है।
सरसानि कहाँ वह बानि गई मुसिक्यानि सौं आनि निहोरत है।।
घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ तब तौ उन बातनि भोरत है।
मन माहिं जो तोरिवेई की हुती बिसबासी[4] सनेह सौं जोरत है।।

रसिक-आसिक आसीरवाद दैहिं हैं—**राखै तोहिं सलामत स्यामा**—स्यामा जो लड़ैती जी हैं, सो तुमकौं हे महबूब! सलामत कहैं—तैं आनंद में राखै। और अर्थ सकल प्रगट ही है।।१२।।

ऐसौ करौ न सुरझै कबहूँ रूप-जाल उरझेरौ।
दोजख[5] इरम[6] उरे[7] दोउ तजिकैं बसै इस्क[8] मन मेरौ।।
मनमोहनी अदा[9] से मोहन दस्त[10] सीस पर फेरौ।
रसिक सहचरीसरन तुम्हारा नेह नैन भरि हेरौ।।१३।।

ऐसौ करौ इति—रसमय विनय—हे मनमोहन महबूब! अब तौ ऐसी करौ, तुम्हारे रूप-जाल में मेरे दृग परिकें कबहूँ न सुरझैं; यह

---

१. डरना, व्याकुल होना, चकित होना २. मुख, आकृति, भाव ३. सुरक्षित, सकुशल, चिरंजीव, आनंद ४. विश्वासी, अविश्वसनीय ५. नरक ६. स्वर्ग ७. इधर, इस ओर, इस पार ८. प्रेम, अनुराग, आसक्ति ९. हाव भाव, मनमोहक अंगचेष्टा १०. हाथ।

हमारौ अभिलाष है। **दोजख**—नरक, **इरम**—वैकुण्ठ—ए दोऊ हैं, तिनहिं तजिकैं मेरौ जो मन है, सो इस्क में बसौ, ऐसौ करौ।

दोजख इरम उरे हैं परें बाट और है।
हप्ताद[१] दो मिलत से परें बाट और है।।
सौदा जहाँ हमारा वह हाट और है।
मस्तौंक[२] गुसल[३] हौंना वह घाट और है।।

और सकल अर्थ प्रगट ही है।

तन घन सरस उसीर[४] अतप्पर[५] छबि-छप्परहि छवा दे।
मधुर मुहब्बत[६] वर सरसी[७] तट सुखमय हवा दवा दे।।
मंद हँसनि अरविन्द बदन की मृदु गुलकन्द खवा दे।
सहचरिसरन सिताब ताब दलि अब जिनि करहि अवादे।।१४।।

तनघनसरस इति—यह संबोधन है। हे तनघनसरस! तन जो है वपु, सो है घन—मेघवत; जाकौ सरस रस जो है आनंद; ता करिकैं युक्त, ऐसैं जे हौ तुम। तात्पर्य यह, जैसैं मेघ जल की वरषा करिकैं ग्रीषम की ताप कौं हरै है; तैसैं ही तुम रस बरसिकैं विरह-संताप कौं हरौ। पुनः विरह-संताप हरिवे कौ यत्न—**उसीर अतप्पर छबि**—उसीर जो खस तातैं अतप्पर—अत्यंत विशेष; ऐसी जो छबि, ताकौ **छप्पर हि छवा दे**—खसखानौ बनवाय दे। यहाँ खस की सीतलता लई है; वर्न नाहीं लियौ। जैसैं खस सीतल है, तातैं अधिक छबि शीतल है। **मधुर इति**—मधुर कहियै—मिष्ट **मुहब्बत** कहियै—प्रीति, सोई भई **वर** कहैं तैं—श्रेष्ठ **सरसी**—सरोवरी; ताके **तट**—समीप छबि-खसखानौ बनवाइ दे। प्रश्न—प्रीति सरोवरी के तट छबि-खसखानें की अभिलाष क्यौं करी? उत्तर—जलासय के समीप खसखानौं अति सीतलता करै है; तहाँ

---

१. हफद—सहायकजन, मित्र २. मस्तों का, मदोन्मत्तों का ३. गुस्ल—सारे शरीर को धोना, स्नान। ४. खस ५. अत्यन्त विशेष ६. स्नेह, मिलाप ७. सरोवर, तालाब।

सुखमय हवा है—सीतल मंद सुगंध पवन कौ परसै है। ए तौ प्रगट कें सीतोपचार कहे; पायवे कौं **दवा दे।** प्रश्न—दवा कहा ? उत्तर—**मंद हँसन अरविंद बदन की** सोई भयौ **गुलकंद;** सो प्रगट निरंतर दृगनि के खाइवे कौं दे। सहचरिसरन रसिक-आसिक जन कहैं हैं—**सिताब** कहैं तैं—सीघ्र **ताब** कहैं तें—विरह-संताप, ताहि दलि कहैं तें—नास करौ। **अब जिनि करहि अवादे**—अवधि मति करै; यह विनय है।।१४।।

निरदय हृदय न होहु मनोहर सदय रहौ मन-भावन।
नवल मोहिलौ[1] मोहिं तजै जिनि तोहिं सौंह प्रिय पावन।।
रसिक सहचरीसरन स्याम-घन रस बरसावन सावन।
दरस देहु वर बदन-चन्द्रमा चख-चकोर विलसावन।।१५।।

नवल यह संबोधन है। **हे नवल ! मोहिलौ**—तू मोह कौ करन-वारौ है। तातैं हम हू सौं मोह कीजियै। अथवा हे नवल ! तू मोहिलौ है—मोहनवारौ है। तातैं मोहू कौं मोहि लै। **तोहिं सौंह प्रिय पावन**—पावन—पवित्र जे प्रिया जी; तिनकी तोकौं सौंह है। प्रश्न—प्यारे कौं सौंह क्यौं दिवाई ? उत्तर—प्यारौ हमसौं मोह करै अथवा हमकौं मोहि लेहि; सो इह जब हो सकै, तब प्यारौ प्रसन्न होय। सो प्रसन्न करिवे कौ उपाय मोसौं स्वप्न हू में नाहीं हो सकै है। तातें प्रिया जी की सौंह दिवाई है। प्रिया जी की सौंह सुनिकैं कृपा करैंईंगे; यह निश्चय है। और अर्थ प्रगट ही है।।१५।।

मेरा कहा मानि मनमोहन मिलन मजा किन चक्खौ ?
एता जुलम[2] न जालिम[3] अच्छा अनख[4] मैंड़ अब नक्खौ।।
सहचरिसरन अंक भरि-भरि तुम यार प्यार से लक्खौ।
खंजनाक्षी[5] खैर[6] करै वर आसिकान रस रक्खौ।।१६।।

---

१. मोहनेवाला २. अन्याय, अत्याचार ३. अन्यायी, अत्याचारी ४. खीझ, चिढ़ ५. खंजन जैसे चंचल नेत्रवाली ६. कुशल, भलाई।

मेरा कहा मानि इति—रसिक-आसिक उक्ति—हे मनमोहन! मेरौ कह्यौ मानि। **मिलन** कौ **मजा** जो स्वाद है, ताहि क्यौं नहीं चाखौ हौ ? तात्पर्य यह मिलौ क्यौं नहीं हौ ? कमल रवि के मिलाप कौ, चकोर चंद्र के मिलाप कौ, मीन जल के मिलाप कौ सुख लेइ है; तैसैं मिलिकैं सुख देहु। अथवा जैसैं दृगनि सौं मिलिकैं दृग परस्पर सुख लेहिं—देहिं हैं; तैसैं परस्पर मिलिकैं तुम आनंद क्यौं नहीं लेत-देत हौ ? हे जालिम! रसिक-आसिकनि सौं एतौ जुलम करिवौ तौ आछौ नहीं है। जामें आसिक-रसिक दुख पावैं, सो तौ तुमकौं करिवौ योग्य नहीं है। **अब अनख** की जो **मैंड** है, ताहि **नाखौ**। तात्पर्य यह कि अनख हमसौं छाँड़ौ। तुम प्यारे हौ; तुमकौं सनेह ही कियौ चाहियै। सहचरिसरन कहैं हैं—अंक में भरि-भरिकैं यार जे हैं, तिनकौं प्यार सौं लखौ। या भाँति जो तन-मन सुख देहुगे तौ रसिक-आसिकनि कौ सकल मनोरथ पूर्न होयगौ; आपकौं रीझि-रीझिकैं आसीर्वाद दैहिंगे। **खंजनाच्छी**— खंजन जे हैं; तिनसे हैं चंचल आछे नेत्र जाके, ऐसी जो श्रीप्रिया जी ते **खैर करैं**—कुसल करैं। **वर-आसिक**—रसिकजन जे हैं, तिनसौं **रस राखौ।** एकरस करिवे लायक नहीं है। अथवा रस जो आनंद, सो राखौ।।१६।।

हुकुम हुआ है आसिकान प्रति सुख देगा सुख सोहन।
निज मुख से तारीफ करी तब रसिक रिझोहन जोहन[1]।।
पहिरि मिहर मोहनी सिरोपा[2] मिहर किया करि मोहन।
सहचरिसरन साहिबी[3] तेरी सदा रहै गहि गोहन[4]।।१७।।

हुकुम हुवा है इति—एक समय सकल आसिक-रसिक जन मिलिकैं नवतरुनिनि के वृंद, तिनकी मुकुटमनि श्रीप्रिया जी, तिनसौं विनय कीनी; तब श्रीप्रिया जी कौ जो अनुसासन भयौ; सो लालन सौं आसिक-रसिक जन कहैं हैं—**हुकुम हुआ है आसिकान प्रति;** हे मोहन!

१. देखनेवाला २. सिर से पाँव तक का प्रसादी वस्त्र ३. प्रभुता ४. साथ, संग।

आसिक-रसिक जन जे हैं हम, तिनसौं यह श्रीप्रिया जी कौ हुकुम हुआ है; **सुख देगा सुख सोहन**—तुम आतुर मति होहु; तुमकौं—सबकौं लालन परम सुख देइगौ। कैसौ है लालन ? सुख करिकैं सोभायमान है। **आनंद विग्रह बड़ा तमासा।** श्रीप्रिया जी नें निज मुख सौं आपकी परम स्तुति करी है। यह कही है कै लालन **रसिक** है— रस कौ जाननवारौ है। तुम्हारौ जो प्रेम-रस; ताकौं जानैं है, **रिझोहन**-रीझनवारौ है; तुमसौं रीझौ है। जो **मोहन** देखिवे लायक है; ताहि तुम देखौ। ऐसैं अनेक भाँति आपकी प्रिया जी ने प्रसंसा करी हैं। **मोहिनी** जे श्रीप्रया जी हैं, तिनने तुमकौं मिहर—कृपामई सिरोपायौ दियौ है, सो तुमने पहिरौ है। अरु तुमसौं श्रीप्रिया जी ने यह कहि दई है—रसिक-आसिकनि कौं प्रसन्न राखौ। तातें हे मोहन ! मिहर जो कृपा, सो हमारे ऊपर कियौ करौ। हमारे आनंद दैवे के अर्थ तुमने कृपामई सिरोपा पहिरौ है। सहचरिसरन रसिक-आसिक जन कहैं हैं—साहिबी जो तेरी है, सो आपकौं **गोहन** कहैं तैं—संग गहिकैं रहै। तात्पर्य यह कै आपकी साहिबी आपकौं न छाँड़ै है। प्रश्न—साहिबी कहा ? उत्तर—परम साहिबी श्रीप्रिया जी हैं।।१७।।

उर अनुराग दोस्ताँ[१] गुलसन[२] चारु बहार चहा करि।
दिलाराम[३] दिलदार[४] प्यार करि सरस कलाम[५] कहा करि।।
सहचरिसरन दुआगो[६] आसिक आसिर्वाद लहा करि।
सुखद किसोरी गोरी कौ तू मरजीदार[७] रहा करि।।१८।।

उर अनुराग इति—उर के विषै है अनुराग जिनकैं, ऐसे जे **दोस्ताँ** कहियै—यार जेई भए **गुलसन**—बाग, तिनकी जो चारु बहार, ताहि चहा करि। प्रथम। **दिलाराम**—हे दिल के आराम ! **दिलदार**—हे दिल के राखनवारे ! हमसौं प्यार करिकैं **सरस**—रस भरे **कलाम** जे

१. मित्रता १. पुष्पवाटिका १. प्रेमपात्र, हृदय को शान्ति देनेवाला ४. प्रेमपात्र ५. वचन, उक्ति ६. आशीर्वाद देनेवाला, याचक ७. रुचि के अनुसार।

वचन, ते तुम कह्यौ करौ। बाग कौं जल सौं सींचियतु है, तब हरित-प्रफुलित बन्यौ रहै है; ऐसे ही हम जे हैं बाग रूप, तिनकौं अपने रस भरे वचननि सौं सींचौ करौ, तौ हम प्रसन्न रहैं। सहचरिसरन आसिक-रसिक जन कहैं हैं—हम जे हैं, ते **दुआगो**—दुआ के दैनवारे हैं; तिनतैं फल-प्रसून रूपी जे आसीरवाद हैं, ते लैवौ करौ। प्रश्न—आसीरवाद; कौन सौ ? उत्तर—सकल आसीरवादन कौ मुकुटमनि जो आसीरवाद ताहि कहैं हैं—**सुखद जो किसोरी गोरी,** ताकौ तू **मरजीदार** रहौ करि। तात्पर्य यह है, श्रीप्रिया जी के मरजीदार रहौगे, तौ आपकौं सकल सुख प्रापित होत रहैंगे।।१८।।

बेगुनाह बाँके करि नैना क्या मग यही दिखाया।
अपने कौं दीदार[1] न देना क्या अब सबक[2] लिखाया।।
वर गोरे मुख वाली ने क्या लेना जीव सिखाया।
सहचरिसरन कमलनैना क्या करना जुलम चिखाया।।१९।।

बेगुनाह इति—हे स्यामसुंदर ! बेगुनाह—बिनु अपराध तुमने हमारे ऊपर बाँके नैंन करे हैं; वर **गोरेमुखवाली** जो श्रीप्रिया जी हैं, तिनने तुमकौं **क्या यही मग**—मारग दरसायौ है ? कै कृपा हू कौ मारग दरसायौ है ? अपने जे कोऊ हैं, तिनकौं **दीदार** जो दरसन सो न दैवौ; वर गोरे मुखवाली सौं तुमने क्या अब इही **सबक** कहियै—पद लिखाइ लियौ है। तात्पर्य यह कै तुम ऐसौई पढ़े हौ। मंज—

जब तौ करि करि प्यार पियारे पह[3] इति इतबार[4] बढ़ाया।
हँसि हँसिकैं बसिकैं नैंनौं बिच नेही नाम कढ़ाया।।
अब क्या हुआ उसी मुख ऊपर रूखा रंग चढ़ाया।
रसनिधि बेदरदी का सबक मु[5] किसि आँखून[6] पढ़ाया।।

---

१. दर्शन २. पाठ, शिक्षा ३. पहँ-पास, से ४. एतबार—विश्वास, भरोसा, साख ५. मुँह ६. आखुन्द—शिक्षक।

वर गोरेमुखवाली ने क्या जीव ही लैनौं सिखायौ है; कै जीव दान हू सिखायौ है ? सहचरिसरन रसिक-आसिक जन कहैं हैं–हे कमलनैंन ! वर गोरेमुखवाली ने क्या जुलम ही करने कौ स्वाद चिखायौ है; कै पालन हू करने कौ तुमकौं स्वाद चिखायौ है ? बाँके नैंन करिवौ, दीदार न दैनौ, जीव कौ लैवौ, जुलम कौ करिवौ–इन बातन की आज्ञा श्रीप्रिया जी की तुमकौं नहीं है। सुख दैवे की आज्ञा है, सो सुख-दरस देते रहौ।।१६।।

रिस रस रंग उभय[1] मिलि झलकत मटकायल मुख आँखैं।
सोख[2] रहित मासूक[3] साहिबाँ अनखदार वच दाखैं[4]।।
इक सु अदा बिच अदा अनेकनि जनु पैवन्दी[5] साखैं।
सहचरिसरन तमासबीन[6] वर आसिक मृषा[7] न भाखैं।।२०।।

रिस रस रंग इति–रिस कौ रंग, रस कौ रंग **उभय**–जे ए दोऊ रंग हैं, ते मिलिकैं झलकत हैं **मटकायल मुख** करिकैं अरु **आँखिन** करिकैं। तात्पर्य यह बीच-बीच रस हू करैं हैं; मुख कौं, आँखिन कौं रूखी करि लेइँ हैं; बीच-बीच रस हू दरसावैं हैं; मुख, आँखिन कैं मुसिक्याइ हैं। **मासूक** जे महबूब; तिनहूँ कौ साहिब; **सोख** जो सोखी, ता करिकैं रहित हैं **वच**–वचन जाके; परंतु कैसे हैं वचन ? **अनखदार** हैं; अनख के राखनवारे हैं। हैं तौ अनखदार; परंतु जैसैं **दाखैं**–मेवा होय हैं, तैसैं हैं। पुनः कैसौ है मासूक साहिबाँ ? करै तौ एक अदा है; परंतु एक अदा में अनेकन अदा दरसावै है। **जनु** कहै तैं–मानौ **पैवंदी साख**–तरु है। देखिवे कौं **तौ पैवंदी** तरु एक ही है; परंतु अनेक फलनि की सोभा दरसै है। ऐसैही एक अदा में अनेकन अदानि की सोभा दरसै है। सहचरिसरन आसिक-रसिक जन जे हैं, तेई **तमासबीन** हैं; या तमासे के देखनवारे हैं। और कौं देखिवे कौ अधिकार नहीं; यह **मृषा** कहैं तैं–हम झूठ नहीं भाखैं है।।२०।।

---

१. दोनों २. चंचलता, ढीठता, नटखटता ३. सुन्दर, प्रेमपात्र ४. अंगूर ५. जुड़ी हुई ६. तमाशा, कौतुक देखने वाला ७. झूठ, मिथ्या।

जिन चस्मौं[1] से मिला मोहिं तू जवाँमर्द मन कायम[2]।
लाकलाम[3] त्यौंही सुमिला करि यहै तलब[4] दिल दायम[5]।।
सहचरिसरन मुहब्बत मोहन मंजुल मौज मुलायम।
दरद जुदाई दवा दिया करि इसी वास्ते आयम।।२१।।

जिन चस्मौं से इति—हे **जवाँमर्द**! हे **मनकायम**! **जिनि चस्मौं से**—जिन नेह भरी आँखिनि से तू मोकौं मिलौ है। **लाकलाम** कहियै—वचन की अवधि—तात्पर्य यह कौल करिकैं मिलौ है; सो जैसैं मिलौ है, तैसैं ही मिलौ करौ। आन भाँति मति होहु; **यहै तलब** कहियै—यही चाह है **दायम** कहियै—हमेसा। सहचरिसरन आसिक-रसिक जन कहैं हैं, हे **मोहन**! तेरी **मुहब्बत**—प्रीति है, ताकी जो **मौज**—लहरैं, ते **मंजुल** हैं, **मुलायम** हैं। मुलायम कहिवे कौ तात्पर्य यह, कठोरता करिकैं रहित हैं। **जुदाई** कहियै—तुम तें जुदौ हौं तौ, ताकौ जो दरद है, ताकौं वे प्रीति की लहरैं **दवा** कहियै—औषधी हैं; ताहि तुम दियौ करौ; **इसी वास्ते आयम**—तुम्हारे पास हम याही के लिये आये हैं।।२१।।

आँखैं सफल करी⊛ अभिलाखैं लाखैं रंग बसेरौ।
अलिगन उर विनोद उपजावत हास विलास उजेरौ।।
रसनिधि सोहन रसिक रिझोहन रूप अनूप घनेरौ।
सहचरिसरन माह[6] नक्सब कैं आहि निरखि मुख तेरौ।।२२।।

आँखैं सफल इति—सहचरिसरन आसिक-रसिक जन कहैं हैं—सोहन! **नक्सब कैं** नक्सब एक देस कौ नाम है, ताकौ **माह** कहियै—चंद्रमा; सो वह चंद्रमा निसि-दिवस बन्यौ रहै है। तेरौ मुखचंद्र निरखि कैं वह जो चंद्रमा है, सो आहि कहियै—कराहै है; दुख करिकैं युक्त है; यह कहैं हैं। जैसौ मुखचंद्र है, तैसौ मैं न भयौ; इह चतुर्थ चरन कौ अर्थ है। प्रथम के तीनौं चरन, तिनकौ अर्थ प्रगट ही है।

१. नेत्रों २. स्थिर ३. बिना कहे, निर्वचन ४. माँग, चाह ५. हमेशा, उम्रभर ६. चन्द्रमा।
⊛ पाठान्तर—करौ।

नासावर मुक्ता विसाल जनु जानि सुराही राखैं।
मुख छबि अधिक वारुनी भरि-भरि पल-प्याले बिच नाखैं।।
सहचरिसरन सुझूमत घूमत करत पान अभिलाखैं।
अइ[⊛] महबूबाँ स्याम सुखूबाँ[1] कृत मतवाली आँखैं।।२३।।

नासावर इति—हे स्यामसुंदर! आपकी जो नासा है, **वर** कहियै—श्रेष्ठ, ता नासिका की जो बेसरि है, ताकौ जो सुराईदार मुक्ता है, **विसाल** कहियै—बड़ौ सो **जनु** कहियै—मानौं, यह जानौं सुराही है; ताकौं राखै हैं। मुख की जो अधिक छबि है, सोई **वारुनी** कहियै—मदिरा मुक्ता रूपी जो सुराही, तामैं भरि-भरिकैं आसिक-रसिक जन जे हैं, तिनके जे पलक, तेई भये प्याले, तिनमें भरि-भरि देहु हौ। ता छबि-मद कौं पान करि-करिकैं सहचरिसरन आसिक-रसिक जन छके भये झूमत हैं अरु घूमत हैं। बारम्बार पान करैं हैं; परन्तु तृपित नहीं होत हैं। पान करिवे की बारम्बार अभिलाषा ही राखैं हैं। कोउ जे रसिक-राजेन्द्र हैं, सो या प्रकार कहैं हैं—**अइ महबूबाँ**! हे महबूब! हे स्यामसुन्दर महबूब! आसिक-रसिक जन जे हैं, तिनकी जे आँखैं है, ते तुमने मतवाली **कृत** कहैं तें—करी हैं।।२३।।

ताकी दसा महामतवाली रसिक-मंडली भावै।
माकन्दन[2] मकरन्दी[3]-अलि जित अमल अन्त नहिं आवै।।
सहचरिसरन चखन बिच लाली रूप रंग बरसावै।
सरस मसालेदार यार वर-छबि-सबजी[4] जिहिं प्यावै।।२४।।

ताकी दसा इति—स्यामसुंदर जो यार हैं; जा आसिक-रसिक कौं अपनी छबि रूपी सबजी प्यावैं हैं, ताकी दसा वरनन है। **माकंदन** जो अमृत है, ताकी **मकरंदी** जे मकरंद के लैनवारे **अलि** कहियै—भ्रमर **जित** कहियै—तानैं जीते हैं। तात्पर्य यह भ्रमरनि हू तें याकी छबि

---

१. सुन्दरी, प्रियतमा २. आम ३. पराग, बौर के किंजल्क को लेनेवाला ४. भाँग।
⊛ पाठान्तर—ऐ।

अधिक है। ताके अमल कौ अंत नहीं आवै है। यह दुतिय चरन कौ अर्थ है। और अर्थ प्रगट ही है।।२४।।

लग्यौ जिगर[१]मजबूत अजब यह गजब[२]चल्यौ किहुँ कर तें।
पल-पल पीर दिलौं बिच ज्यादै घाव नदारद नर तें।।
सखीयसरन कहैं कमादार[३] वह अवसि विलोकिय मर तें।
आसिक सकल सुमार[४] हो रहे इस्क सुरंगी सर तें।।२५।।

लग्यौ जिगर इति—इस्क सुरंगी जो सर है, सो लग्यौ है। जिगर कहियै—कलेजे में; सो कैसौ लग्यौ है, मजबूत होकैं; निकासे हू तें न निकसै। पुनः कैसौ है इस्क सुरंगी? **अजब** कहियै—अजूबाँ है। इस्क सुरंगी सर कहा है; कोई काहू के कर तें गजब ही चल्यौ है। पुनः कैसौ है इस्क सुरंगी सर; पल-पल में पीर करै है दिल के बीच में **ज्यादे** कहियै—अधिक-अधिक; ताकौ जो घाव है, सो **नदारद** कहियै—काहू नर तें नहीं है। तात्पर्य यह नर कौ चलायौ इस्क सुरंगी सर नहीं है। सखीयसरन आसिक-रसिक जन कहैं हैं—**कहैं कमादार वह,** प्रमोद रूपी- कमान कौ राखनवारौ कहा है; मरत तौ हम हैंई, परंतु वाहि हम अवस्य विलोकैं तौ सही, वह कैसौ है। या प्रकार आसिक-रसिक जन कहि-कहिकैं **सकल सुमार**—गनीति में हो रहे हैं। कहिवे कौ तात्पर्य यह है—साधु सभा में ए गिने जाय हैं। बेसुधि हो रहै हैं, इस्क सुरंगी सर के लगे तैं। आसिकन की यह दसा होय रही है।।२५।।

सर सुरंग वर खैंचि करेजे मारा कहु सतिया[५] है।
नटनागरदी जालिम जुलफैं[६] उर वर बाँधि लिया है।।
सहचरिसरन मधुर मुख बिहँसनि जादू डारि दिया है।
चस्म[७] स्याह[८] बीमार भरे-से मुहिं बीमार किया है।।२६।।

---

१. कलेजा, हृदय २. प्रकोप, जुल्म ३. धनुर्धारी ४. भयभीत, गिनती, शुमार, अच्छे घायल ५. क्या यही तुम्हारा दान है अथवा हमारा अन्त करने को मारा है? सति—अन्त, दान ६. लटकते केश ७. नेत्र ८. काले।

चस्म स्याह इति—चस्म कहियै—नेत्र, स्याह कहियै—स्याम, **बीमार** कहियै—रोग, तासौं भरे से हैं। तात्पर्य यह झुकौहैं, झपकौहैं। आसिक-रसिक जन कहैं—तिननैं मोकौं **बीमार** कहियै—रोगी सो कियौ है। तात्पर्य यह; सकल ओर तैं मोहिं सिथिल कियौ है। यह चतुर्थ चरन कौ अर्थ है; तीन चरन कौ अर्थ प्रगट ही है।।२६।।

तीरन्दाज अजब जालिम सर खर[1] कटाक्ष नहिं डग्गौ।
ग्रह जब्बर[2] जिमि लगै-लगै तिमि दरबर[3] दिल बिच खग्गौ।।
खाय खवाय खुराक मजा मुद मधुर मजाकन ठग्गौ।
सहचरिसरन रसिकवर वल्लभ रसमत्तन मन पग्गौ।।२७।।

तीरन्दाज अजब इति—स्यामसुन्दर जो महबूब है, सो कैसौ है; तीरंदाज है। ताकौ जो कटाक्ष रूपी सर जो बान है, सो अजब जालिम है। **खर** कहियै—तीक्षन है, **नहिं डगौ**—डगै नहीं है। जहाँ लगावै है, तहीं लगै है। पुनः कैसौ है कटाक्ष सर; जैंसै जबरग्रह लगै है, तैसैं ही लगै है। **दरबर** कहियै—सीघ्र ही दिल बिच लगै है, निकासे हू तें नहीं निकसै है। या भाँति कटाक्ष सर कौ घाव करिकैं प्यारौ जो महबूब है, **मुद** जो आनंद है, ताकौ जो मजा है, सोई भई मधुर खुराक, ताकौ आप हू खाइ है अरु आसिक-रसिक जे घायल हैं, तिनहूँ कूँ खवावै है। पुनः कैसौ है महबूब; नाना प्रकार की जो मजाक हैं; तिनकौं करि-करिकैं आसिक-रसिक जन जे हैं, तिनहि ठगै है।

ऐसा दिलबर बाँके साहिब मोसे कोटिक ठगौ।
कैसी बात बनी आदम[4] की अनहद मदन दगौ।।
तीर निगा अबरोइ कमाँ सौ मारत विलम न लगौ।
अजब गजब सौं काम परी है राधासरन कित भगौ।।

---

१. प्रखर, तेज २. बलवान ३. हड़बड़ी, उतावली ४. पूर्व पुरुष, पुराण पुरुष।

सहचरिसरन कहैं हैं—पुनः कैसौ है महबूब; आसिक-रसिकवर जे हैं, तिनकौ **वल्लभ,** प्यारौ है। रसमत्त जे हैं, तिनके जे मन हैं, तिनकौं रस करिकैं पागै है। यामें कटाक्ष सर अरु महबूब की; दोउन की स्तुति है।।२७।।

त्रिविध रंग रंगित अंग लालन चस्म सिलीमुख[1] सच्चे।
छबि स्यामा खरसान अजूबाँ खरकरदा खर[2] जच्चे।।
पंचबानदे बान जिते जिन सुभट जीभ जस नच्चे।
घालत[3] लगत इस्कदिल सालत[4] सर घूमत रस रच्चे।।२८।।

त्रिविध रंग इति—लालन जे हैं, तिनके **चस्म** कहियै—नेत्र; तेई भए **सिलीमुख** कहियै—बान। कैसे हैं बान; साँचे हैं। पुनः कैसे बान हैं; **त्रिविध** जो रंग—अरुन स्वेत स्याम, तिन करिकैं तिनके अंग रंगित हैं। अथवा अरुन अनुराग कौ रंग, स्वेत आनंद कौ रंग; स्याम श्रृंगार रस कौ रंग; ए जे त्रिविध रंग हैं, तिन करिकैं रंगित हैं। स्यामा की जो छबि है, सोई भई खरसान अजूबाँ; लालन ने तापै धरिकैं **खरकरदा**—चस्म-सिलीमुख तीक्षन करै हैं। प्रस्न—प्रथम तीक्षन होहिंगे ? उत्तर—प्रथम हूँ **खर** कहियै—तीक्षन हे। प्रस्न—लालन ने जाने होहिंगे कै ए तीक्षन हैं, तातैं छबि खरसान पै धरे। उत्तर—**जच्चे** कहियै—जचे भए हैं, कै ए चस्म-सिलीमुख तीक्षन हैं, परंतु छबि खरसान पै धरिकैं अधिक पैने करे हैं। प्रस्न—चस्म-सिलीमुख अधिक तीक्षन क्यौं करे ? उत्तर—आसिक-रसिकन के हृदय बेधिवे के अर्थ अति तीक्षन करे हैं। पुनः कैसे हैं चस्म-सिलीमुख; पंचबान कहियै—काम, ताके जे बान हैं; **जित** कहियै—तेऊ जिननै जीते हैं। पुनः कैसे हैं चस्म-सिलीमुख; सुभट जे हैं, तिनकी जे जीभ हैं, तिनके ऊपर चस्म-सिलीमुखनि कौ जो जस है—सो **नच्चे** कहियै—नृत्य करै है। तात्पर्य यह सुभट तिनकौ जस गावैं हैं। यह कहैं हैं—ऐसे पैने हमारे बान नहीं हैं। मनमोहन जो

---

१. भौंरा, बाण २. तीक्ष्ण ३. डालते ही ४. घायल करते हैं।

धनुर्धर है, ताकी जो भौंहैं हैं, तेई भईं धनुष, तिन करिकैं जा समय ये चस्म-सिलीमुखनि कौं चलावैं हैं। इस्कदिलनि के हृदयनि में जायकैं लागत हैं। लगिकैं फेरि निकसैं नहीं हैं; हृदयनि में सालत रहत हैं। आसिक-रसिक जननि के ताही समै **सर** जे माथे हैं, ते घूमत रहत हैं। कैसे आसिक-रसिक; रस करिकैं रचे हैं।।२८।।

बाँकी पाग चन्द्रिका तापर तुर्रा रुरकि रहा है।
वर सिरपेच माल उर बाँकी पट की चटक अहा है।।
बाँके नैन मैन सर बाँके बैन विनोद महा है।
बाँके की बाँकी झाँकी करि बाकी रही कहा है ?।।२६।।

याकौ अर्थ प्रगट ही है।।२६।।

पट निसान[1] कटि छुद्र घंटिका नवल नौबतें बाजीं।
झलमलानि तन झिलम[2] टोप सिर मोरमुकुट छबि छाजीं।।
खोलि खजाना दिया मौज का फूलनि फौजें ताजीं।
सिलह[3] लिएँ मुद मंजु मजेजैं आजु कौन पै साजीं।।३०।।

पट निसान इति—हे मनमोहन महबूब सिरोमनि ! आपकौ जो **पट**—पीतांबर है, सोई तौ निसान है; ताके देखत ही आसिक-रसिकजननि कौ विजय होत है। कटि में जो छुद्र घंटिका हैं, सोई तौ नौबतें हैं, ते बाजी हैं। ताकौ जो सरस मधुर शब्दावली है, ताके श्रवन करत सेतैं आसिक-रसिकन कौ विजय होइ है। रूप की जो झलमलानि है, सोई तौ झिलमलानि आपनै तन में धारन कियौ है, ताकौं देखत सेतैं; सिर के ऊपर जो मयूर मुकुट है, सोई तौ टोप है; ताकी जो अमित छबि है, सो छाजी है, तिनके देखत सेतैं आसिक-रसिकनि कौ विजय भयौ है। इतनेऊ पै अंग-अंग की जो उत्साहमय फूलनि हैं, तेई आपकी अमनैंक फौज हैं। तिनकौ मौजमई धन कौ खजानौ खोलि दियौ है।

---

१. ध्वजा २. शिरस्त्राण ३. हथियार, अस्त्रशस्त्र।

ता धन कौं पायकैं आपुकी फौजैं ताजी हैं। **मुद** जो आनंद, ता मय जे **मंजु मजेजैं** हैं, तेई **सिलह** कहियै—नाना भाँतिन के अस्त्र-सस्त्र; तिनकौं लिये हैं। हे प्रानप्यारे! ऐसी जो फौजैं हैं; ते आपुनैं कौन पै साजी हैं? तात्पर्य कहिवे कौ यह है—आसिक- रसिकनि कौ तौ विजय आपनैं सहज ही में कियौ है; सो प्रथम के दोऊ चरन में कहि आये हैं। आसिक-रसिकनि तें ऐसौ सबल कौन है; ताके विजय के अर्थ सैंना साजी है, सो कहौ। या प्रकार कहिकैं आसिक-रसिक कहैं हैं—हे स्यामसुंदर! हमनैं, जा हमकौं तौ तुमनै जीत्यौ ही है; यह आपनैं सैंना जो सजी है, सो साभिमान जो महबूब हैं, तिनके विजय के अर्थ हैं। यह याकौ प्रयोजन है।।३०।।

मन्द हँसनि समसेर[१]-मार वर इस्क बलाय मरोरैं।
रसिक आसिकाँ दिल तमाम[२] गहि सबज[३] रंग बिच बोरैं।।
झमकि[४] सहचरीसरन बेदरदाँ जुलफ जाल झकझोरैं।
ब्रज वृन्दावन दे मतवाले प्रियमुख चन्द चकोरैं।।३१।।

याकौ अर्थ प्रगट ही है।।३१।।

तन मन प्रान जमा जेती वर करि नीलाम लिया है।
इस्का हौलदिली[५] दा अन्त न क्या पढ़ि मंत्र दिया है।।
जैसा हाल हुआ मजनूँदा तैसा किलकि किया है।
स्यामलाल तेरी बलाय[६] छबि धन मुस्ताक[७] जिया है।।३२।।

समझि लिया महबूब खूब तुम कहत बात इतराते।
ऐंडाइल[८] अलबेले अंगन वर गुमरख[९] हरषाते।।
रसिक सहचरीसरन स्याम रसबस जोवन उमदाते[१०]।
आसिकान की तरफ नजर करि नव दुलहिनि मदमाते।।३३।।

---

१. तलवार २. सम्पूर्ण, कुल ३. हरा, भाँग का नशा (सब्ज रंग) ४. सहसा ५. भय, दिल धड़कने का रोग ६. प्रभूत, अत्यधिक ७. प्रेमी, आकांक्षी ८. गर्व भरे, ऐंठ भरे, अंगड़ाई लेते ९. छिपाकर १०. उमँगते, उमड़ते।

गज मोतिन की मंजुल माला सीस जरकसी[1] चीरा।
चन्द्र चारु वारौं पुनि तापर कलित[2] कलंगी हीरा।।
नग वर जड़े कड़े कर सुन्दर खड़े फेंट पट पीरा।
सहचरिसरन लिया बिन मोलन मृदु बोलनि मुख बीरा।।३४।।

जरीदार पगरी उदार उर मुक्तमाल थहरति है।
जरद[3] लपेटा फेंटा कटि सौं गुरु गरबीली गति है।।
सहचरिसरन मयंक[4] बदन की मदनमोहनी अति है।
छबिसागर की छबि कौं वरनैं कवि की क्या कुदरति[5] है।।३५।।

चार्‍यौ मंजन कौ अर्थ प्रगट ही है।।३२।।३३।।३४।।३५।।

इन्द्रधनुष वनमाल पीतपट दमकि दामिनी भावै।
कोटि काम अभिराम[6] स्यामघन बंसी घोर सुनावै।।
सुखसागर सु अंगना तें[7] भरि अधिक रंग बरसावै।
रसिक सहचरीसरन सालिबन[8] आसिकान सरसावै।।३६।।

इंद्रधनुष इति—या मंज में स्यामसुंदर कौ घन करिकैं वरनन कियौ है। घन जो है, तामैं तौ इंद्रधनुष सोभा देइ है; स्याम-सुंदर के उर में वनमाला है, सो सोभायमान है। घन में दामिनी की दमक सोभा देइ है, स्यामसुंदर के पीतांबर सोभायमान है। घन जो है, सोउ स्याम है; तैसेई कोटि काम तें अभिराम स्यामसुंदर स्याम हैं। घन में गरजन की घोर सोभा देइ है; स्यामसुंदर वंसी कौं बजामैं हैं; ताकी घोर सोभायमान है। घन जो है, सो तौ समुद्र तैं जल भरिकैं बरसै है; सुख कौ सागर **अंगना** कहियै—श्रीप्रिया जी, तातैं सुख कौं भरिकैं स्यामसुंदर जू बरसावैं। प्रस्न—या कहिवे में यह समझिवे में आवै है, स्यामसुंदर में सुख नहीं है, श्रीप्रिया जी तैं सुख लेइ हैं, तब बरसैं हैं? उत्तर—

---

१. जड़ाऊ २. सुन्दर ३. पीला, केसरी ४. चन्द्रमा ५. क्षमता, प्रकृति ६. सुन्दर ७. सुन्दरी प्रिया, सुन्दर अंगों से ८. धान के खेत।

स्यामसुंदर तौ सुख की मूर्ति हैं। सो कह्यौई है—**आनंद विग्रह बड़ा तमासा**। प्रस्न—जो ऐसे ही स्यामसुंदर हैं तौ श्रीप्रिया जी तैं सुख भरिवे कौ प्रयोजन कहौ ? उत्तर—यामैं अधिकता कौ प्रयोजन है; श्रीप्रिया जी तैं सुख लैकैं अपने सुख में युक्त करिकैं अधिक रंग कौं बरसावैं हैं। तात्पर्य यह युगल रंग कौं बरसावैं हैं। सहचरिसरन कहैं हैं—घन जो है, सो तौ **सालि** जो है धान, ताकौ जो है वन, ताहि सरस करै है, अथवा धान और सकल वन दोउनि कौं सरस करै है; स्यामसुंदर जो हैं, सो आनंद रंग कौं बरसिकैं रसिक-आसिकनि कौं सरस करैं हैं।।३६।।

तकि उमदी[१] पोसाक अनोखी तोरि तिनूका नाखैं।
मोर मुकुट दी लटकन दी तट मटक चाल चित राखैं।।
सुन्दर वर मुखचन्द सरद की रूपमाधुरी चाखैं।
सहचरिसरन मस्त ह्वै लागीं इन आँखिन सौं आँखैं।।३७।।

कटि किंकिनि सिर मोर मुकुटवर उर वनमाल परी है।
करि मुसिक्यानि चकाचौंधी चित चितवनि रंग भरी है।।
सहचरिसरन सु विस्वविमोहनि मुरली अधर धरी है।
ललित त्रिभंगी सजल मेघ तन मूरति मंजु खरी[२] है।।३८।।

याहू कौ अर्थ प्रगट ही है।।३७।।३८।।

मुख मृदु मंजु महा खूबी यह गरब गुलाब हरौगे।
चस्म चारु नरगिस[३] अलिमस्ताँ[४] उर संकोच भरौगे।।
छल्लेदार जुगल जुलफैं छबि सुम्बुल[५] छैल छरौगे।
सहचरिसरन संग लै गुलसन सैर सिताब[६] करौगे।।३६।।

मुख मृदु मंजु इति—आसिक-रसिक जो है, जानैं बाग की जो सोभा है, सो देखी है। ता बाग में प्रसून साभिमान हैं; सो अभिमान

---

१. श्रेष्ठ, उत्तम २. उत्तम, खड़ी, अत्यन्त ३. पुष्प विशेष, आँख का उपमान ४. मस्त भौंरे ५. बालों के उपमानवाली घास ६. चाँदनी, शीघ्र।

आसिक-रसिक न सहि सकैं। क्योंकि महबूब की सोभा कौं विलोकनहारौ है। अपने मन ही में विचारि करिकैं अपने मन ही सौं यह कहै है— इनके अभिमान कौं मैं दूरि करौंगो। या भाँति कहिकैं; फेरि आइकैं महबूब सौं कहै है—हे महबूब ! मैंने बाग में प्रसून साभिमान देखे हैं; सो अपुन चलिकैं उनके अभिमान कौं दूरि करौ। प्रस्न—महबूब ! मुसिक्याइकैं कहैं हैं—हे आसिक-रसिक प्रसूननि के अभिमान कौं मैं कौन भाँति दूरि करौं ? उत्तर—आसिक-रसिक कहै है—हे महबूब ! आप बाग में पधारियै। आपके बदन की सोभा जब देखेंगे; तब उनकौ अभिमान छिन में ही दूरि हो जायगौ। कैसौ है आपकौ बदन; सो मैं कहौं हौं; सो आप श्रवन कीजियै। पूर्व पीठिका इति। मंज कौ अर्थ—आपकौ जो मुख है; सो कैसौ है; **मृदु** कहियै—कोमल, **मंजु** कहियै—सुंदर है; ताकी महाखूबी है। ऐसौ जो आपकौ मुख है, ताहि दरसायकैं गुलाब कौ जो गरब है, ताहि हरौगे। आपके जे **चस्म** कहियै—नेत्र, **चारु** कहियै—सुंदर, तिनकौं दरसाइकैं नरगिस के जे फूल हैं, तिनके उर में **संकोच** कहियै—लाज भरौगे। अरु तिनके फूलनि के संगी महामस्त जे अलि, तिनकौं यह अभिमान है, हम नेत्रनि हूँ तें स्याम हैं अरु तिनकौं यह अभिमान है; पुष्प जे हमारे महबूब हैं, जे परम सुंदर हैं; जातैं नेत्रनि कौं दरसायकैं अलिन के उर में संकोच भरौगे। तात्पर्य यह आपके नेत्र परम सुंदर हैं; तिनके देखे तैं नरगिस के पुष्पनि कौ अरु भौंरानि कौ अभिमान दूरि हो जायगौ, हम प्रसन्न होहिंगे। **छल्लेदार** आपकी जुगल जुलफैं हैं, तिनकी जो छबि है, ता करिकैं सुंबुल के जे फल हैं। कैसे हैं फल; स्याम हैं, कोमल हैं, सचिक्कन हैं; सुगंधित हैं; अलिन की आकृति हैं; उनतैं आपकी अलकनि की सोभा अधिक है, कोमलता, सचिक्कनता, सुगंध अति विशेष है; सो ऐसी अलकनि कौं दरसायकैं सुंबुल की जो छैलाई है, ताकौं **छरौगे** कहियै—मर्दन करौगे। सहचरिसरन आसिक-रसिक जो कोऊ हैं, सो कहैं हैं—कै हे महबूब ! तुम अकेलेई मति चले जइयौं, हमकौं संग लेकैं **गुलसन** कहियै—बाग, ताकी जो सैर है, ताकौं

सिताब ही करौगे। आप जब बाग में सैर करौगे, तब पूर्व कहि आए जे फूल; तिनकी और अनेक जे बाग की सोभा है अरु अनेक फल हैं; तिनकी आपके अंगनि के देखे तैं सबकी गरूरी बिलाय जायगी। हम प्रसन्न होहिंगे। क्यौंकि हमारे जे तुम महबूब हौ, ते सकल गरूरदारनि कौं विजय करौगे; हमकौं अधिक आनंद होहिगौ।।३६।।

चमन[१] चारु छबि द्विज[२] अनेक जनु कटि किंकिनी धरौगे।
नैन कलीन विलोकनि बाँकी वचन प्रसून[३] झरौगे।।
फल हजार हा इन्तिजार[४] जहँ अति अनुराग ढरौगे।
सहचरिसरन संग लै गुलसन सैर सिताब करौगे।।४०।।

चमन चारु छबि इति—प्रानप्यारे महबूब कौं बाग करिकैं वरनन कियौ है। चारु जो अंग-अंगनि की छबि है, सोई भई **चमन** कहियै—क्यारी। क्यारीनि में बुलबुलैं आदि पक्षी सब्दाइमान हैं। इहाँ कटि विषै **किंकिनी** धारन करौगे, सोई **जनु** कहियै—मानौं **द्विज** कहियै—पक्षी अनेक भाँति कैं सब्दाइमान हैं। नैंन जे हैं, तेई भई कली। प्रस्न—नैंन जे हैं, तिनकौं प्रफुलित कमलनि के समान वरनन किए हैं; तुमनें कलीनि करिकै कैसे कहे ? उत्तर—कली नोकीली होहि हैं। ऐसेही नैंन नोकीले सोभायमान हैं। तातैं नैंन कली कहि वरनन कियौ है। कैसे हैं ए नैंन; तिनकी **विलोकनि बाँकी है**। यह गुन इनमें कलीनि हूँ तैं अधिक है। **वचन** जे हैं, तेई भए प्रसून, ते झरौगे। **फल हजार हा**—बाग रूप जे आपु हौ, तिन तुम में हजार फल हैं। दरस फल, परस फल, प्रेम फल, कृपा फल इत्यादि जे फल हैं, तिनकौं **इंतिजार** कहियै—जे आपुकी चाह के करनवारे; तिनपै अनुराग करिकै ढरौगे। तात्पर्य यह तिनकौं सकल देहुगे। सहचरिसरन आसिक-रसिक कहैं हैं—हमकौं संग लैकैं हे गुलसन ! हे बाग रूप ! सिताब ही सैर करौगे। प्रस्न—तुम कहौ हौ, हे बाग रूप महबूब ! सिताब सैर करौगे; सो बाग तौ चलै नहीं

१. बाग, बगीचा २. पक्षी ३. पुष्प, फूल ४. प्रतीक्षा, बाट जोहना।

हैं, स्थिर होहि है ? उत्तर—एकै बाग चलितेऊ होहिं हैं; सो चर-अचर के सिरोमनि आपु चलते बाग हौ। आसिकन के सुख दैवे कौं गमन करौ हौ। प्रस्न—हे आसिक-रसिक ! तू कहै है—हमकौं संग लैकैं सिताब ही सैर करौगे; सो तुम जो संग चलिवे की अभिलाषा करौ हौ, सो तुम संग काहे के अर्थ भयौ चाहत हौ; सो तौ कहौ ? उत्तर—आपु चलिकैं आसिक-रसिकनि पै परमानंद रस की बरसा करौगे, परम अमित फल देहुगे। आसिक-रसिक जन सुख पाय आपुकी परम स्तुति करैंगे। ताकौं देखि-सुनिकैं मोकौं अमित अपार अनंत आपुतैं-उनतैं अधिक सुख होहिगौ; यातैं संग चलिवे की अभिलाषा करौं हौं। स्यामसुंदर महबूब कौ वचन—हे आसिक ! तुम कहौ हौ; हमकौं संग लैकैं सिताब ही सैर करौगे; चलिकैं आसिक-रसिकनि कौं अमित फल-सुख देहुगे; सो हम गमन करिवे कौं परिश्रम काहे कौं करैं; अपने समीप ही बुलाइकैं सकल सुख-फल देहिंगे ? रसिक-आसिक कौ वचन—हे महबूब ! आपु कहौ हौ, सो सत्य; परंतु आप चलिकैं सकल सुख-फल आसिक-रसिकनि कौं देहुगे; तौ यामैं आपुकौ अधिक नेह अरु आपकी अधिक दयालता प्रकासित होहिगी; हमकौं यामैं परम आनंद होहिगौ।।४०।।

अलकावृत्त मखतूल[१] मूल छबि ते भुजमूलन[२] परसैं।
बाँकी भौंह विलोचन बाँके रूप रंग रस बरसैं।।
अधर बिंब बिंबित नक मोती नित-नौती[३] दुति दरसैं।
सहचरिसरन पियूष[४] भूख में मुख मयूष[५] सुख सरसैं।।४१।।

मलयज[६] तिलक ललाटपटल-पट अटल सनेह सटक[७] सौ।
मदन विजय जनु करत पुरटमय[८] कटि-किंकिनी कटक सौ।।
सहचरिसरन तरनि-तनया-तट नटवर मुकुट लटक सौ।
चित चुरली मुरली-धुनि गावत आवत चटक मटक सौ।।४२।।

---

१. मखमल २. कन्धे ३. नित्य, नवीन ४. अमृत, सुधा ५. किरण, रश्मि ६. मलयागिरि चंदन ७. लचीली छड़ी ८. सोने की।

इन दोऊ मंजनि कौ अर्थ प्रगट ही है।।४१।।४२।।

भृकुटि कृपान[१] काटि सब डारे जग दुजायगी[२] परदे।
किया हुस्न[३] चकचौंध बीच मन भूलि गये घर घरदे।।
दीन[४] कुफर[५] बदबोय[६] करम कुल इस्कदिलाँ डर दरदे[७]।
अइ[⊛] लालन बलिहार हार उर हार हार दे करदे।।४३।।

भृकुटी कृपान इति–हे महबूब! आपनें खूब काम कियौ। भृकुटिन कौं **कृपान** कहियै–तरवारि कौं बनाइकैं जगत जो संसार के **दुजायगी** के जे परदा हैं, तिनकौं काटि डारै हैं। **हुस्न** कहियै–रूप; ताकी जो चकचौंधी है, ताके बीच में हमारे सबके मन **किया** कहियै–डारि दिया; ताही के प्रभाव तैं भूलि गए घर। तात्पर्य यह, अपनैं-अपनैं घरनि की हमकौं सबकौं सुधि भूलि गई है, **घरदे** अरु अपनैं-अपनैं घर के जे हैं, तिनकी हमकौं-सबकौं सुधि भूलि गई है। **दीन** कहियै–मुसलमान, **कुफर** कहियै–हिन्दू। मुसलमान कहैं हैं–हम बड़े; हिन्दू कहैं हैं–हम बड़े; यह जो अभिमान है, ताकी जो **बदबोइ** कहियै–दुर्गन्ध; अरु **कर्म** जे हैं तिनके **कुल** कहियै–समूह; अरु **इस्कदिल** जे हैं, तिनके डर अरु तिनके दरद। आसिक-रसिक जन कहैं हैं–**अइ लालन!** हे लालन! आपके उर कौ जो हार है; तापै हम बलिहारी हैं। कैसौ है हार; तानैं तृतीय चरन में जे कहि आए, ते सकल हार-हार के करि दिए। तात्पर्य यह इस्क-दिलानि के सकल अंतराइ बखेर दिए।।४३।।

नहिं उतरैगौ मैर उतारैं नितप्रति अधिक भरैंगी।
लहरियात अति बाँकी एतौ मन्त्रादिकन चरैंगी।।
निरखत कहा तोहिं डसिहैं जब सुधि बुधि सकल हरैंगी।
रसिक सहचरीसरन नागिनैं जुलफैं जुलम करैंगी।।४४।।

---

१. तलवार, कटारी २. अँधेरी रात, लोकपरलोक (आनुमानिक अर्थ) ३. सौन्दर्य ४. मत, मजहब ५. विरोध, कृतघ्नता ६. बुरा बीज, पापकर्म, ७. डर गये। ⊛ पाठान्तर–ऐ।

याकौ अर्थ प्रगट ही है।।४४।।

नृत्य करत मन हरत अमित गति हरषत हार हिया करि।
जनु अनंग अंगज पिय लोचन रंगरलीन किया करि।।
सहचरिसरन उदार-सिरोमनि सुख स्याबास दिया करि।
तरुनि तिलक तालीम[1] दई तैं हँसि तसलीम[2] लिया करि।।४५।।

नृत्य करति इति—श्रीप्रिया जी के रूप में लाल के लोचन चंचल है रहे हैं; सो सहचरिसरन कहैं हैं—हे श्रीप्रिये! देखौ तौ पिय के लोचन नृत्य करैं हैं; मन कौं हरैं हैं। तिनके नृत्य की अमित गति है। पुनः कैसे हैं ? हरषत हैं; ए जे नृत्य करी है; तिनकौ तुम अपने हिये कौ हार करौ। तात्पर्य यह इनके गुननिमाल ह्रदय में धारन करिवे कौं योज्ञ हैं। पुनः कैसे हैं पिय लोचन ? **जनु** कहियै—मानौ **अनंग** जो काम है; सो द्विधा सअंग भयौ है। ऐसे जो लोचन हैं, तिनसौं तुम रंग की जो **रली** कहियै—ररी, सौ कियौ करौ; तुमकौं अधिक आनंद होयगौ। हे श्रीप्रिया जी! तुम कैसी हौ; उदार जे कोऊ हैं, तिनकी सिरोमनि हौ। पिय के जे लोचन—गुनीजन हैं, तिनकौं रीझिकैं सुख अरु स्याबास दियौ करौ। हे तरुनीनि की तिलक! तैंही ने पिय के लोचननि कौं नृत्य करिवे की तालीम दई है। तात्पर्य यह, तुमही ने इनकौं सकल गुन सम्पन्न किये हैं। आपकी प्रसन्नता पाय-पायकैं आपकौं तसलीम करैं हैं, ताकौं आप हँसि-हँसिकैं लियौ करौ; बारंबार इनकौं रूप छबि-सुख दियौ करौ। ज्यौं-ज्यौं आपु इनपै रीझिहौ; त्यौं-त्यौं ए प्रसन्न ह्वै-ह्वैकैं अधिक-अधिक नृत्य करहिंगे; आपकौं प्रसन्न राखैंगे।।४५।।

नटवर वेष वधूवर कीन्हौं चन्दन-खौर सम्हारी।
सहचरिसरन कलानिधि गबरू[3] क्या सेली[4] मतवारी।।
छबि कर छरी लिये फूलौंदी दिये ताज जरतारी।
लटकत चलत मदन मद मटकत निरखि लाल बलिहारी।।४६।।

१. शिक्षा २. अंगीकार, अभिवादन ३. नौजवान, उन्नत, किशोर ४. सिर का फेंटा, शैली, ढंग।

धरि गजगाह[१] सडाके[२] मस्ती जीन[३] जेब[४] जु सजाये।
गुन अनुराग छबीली गल बिच कल हमेल पहिराये।।
सहचरिसरन बाम दृग बाजी[५] लगन लगाम लगाये।
पिय हिय हरन मार चढ़ि आया खुरी[६] कटाक्ष कराये।।४७।।

नटवर वेष इति—श्रीप्रिया जी ने नटवर कौ स्वरूप धारन कियौ है।।४६।। और अर्थ प्रगट ही है।।४७।।

दृग जलजात[७]रसीले हँसि-हँसि ललचत नहिं मन काके।
उर चटपटी लगावत छिन-छिन बैन मैनमय[८] ताके।।
बरबस प्रान हरत निरखौरी मुख विलास मधु छाके।
सहचरिसरन दौरि कोउ रोकौ डारत फन्द प्रभा के।।४८।।

अधिक सलोना टोना करिकैं बेनु बजाय गयौ री।
हुतौ कौन कौ कौन कहै किन कैसें गाय गयौ री।।
सहचरिसरन रंग भरी अँखियाँ चायन[९] चाय गयौ री।
मदनमई मैं भई विलोकत मुख मटकाय गयौ री।।४९।।

दोऊ मंजन कौ अर्थ प्रगट ही है।।४८।।४९।।

गुलरुख[१०]सरस रहम करि हम तन वचन दुरुस्त[११]कहैगा।
छकि छकाय सुख छबि सराब गुन गाहक बाँह गहैगा।।
सहचरिसरन रसिक आसिक इक सादर ताहि चहैगा।
जिनि अकुलाय बिहारी बिन मन आकर पास रहैगा।।५०।।

गुलरुख इति—आसिक-रसिक आपनैं मन कौं बोध करैं हैं—हे मन! **गुल** जो है; सुमन। सुमन कौंन सौ; कमल कौ; ताकौ सौ है **रुख** कहियै—मुख जिनकौ, अैसौ जो प्यारौ है सरस, सो **रहम** कहियै—

---

१. हाथी की झूल, पाखर २. फुरती, शीघ्रता ३. घोड़े की काठी का बिछौना ४. शोभा, सुन्दरता ५. घोड़ा ६. टाप का चिह्न ७. कमल ८. मदनमय, कामयुक्त ९. चाहना के साथ १०. प्रफुल्ल मुख, प्रसन्न ११. सही।

दया, सो **हम तन**—हमारी ओर करैगौ अरु वचन जे हैं, तिनकौं रस भरे **दुरुस्त** कहैगौ। ऐसैं प्यारौ हमकौं अनेक विधि सुख देइगौ। प्रथम। तीन चरनन कौ अर्थ प्रगट ही है।।५०।।

नाभि भौंहरैं मनु बताइकैं टकटोवत न टरत है।
दाबैं कहा कोक[1] से कहिकैं कुच कंचुकी हरत है।।
मुकुर[2] हमारे इमि सुनाइ मुहिं सुकर कपोल धरत है।
सहचरिसरन छैल यह लंगर[3] ऐसे काम करत है।।५१।।

या मंज कौ अर्थ प्रगट ही है।।५१।।

गहैं पानि से पानि कौन विधि छिंगुरी[4] छोर न छ्यावै।
प्रिय छबि छका न चितवै कितहूँ नहिं खातिर[5] तर ल्यावै।।
सहचरिसरन आसिकाँ प्यासे मुख माधुरी न प्यावै।
ताहि न काहि कहैं घनस्यामल मोरसिखा[6] जिमि ज्यावै।।५२।।

गहैं पानि से पानि इति—मोरसिखा नाम करिकैं एक औषधी होइ है पाषान की संधनि में; सो वह ग्रीषम ऋतु में सूख जाय है, वरषा ऋतु में मेघन के भय तें वह फेरि हरित हो आवै है। हे श्रीप्रिया जी! ऐसैं ही **ताहि न काहि कहैं**—तातैं तुम क्यौं नहीं कहौ हौ, कै तुम घनस्यामल हौ। जो तुम या भाँति मनमोहन सौं कहौ, तौ हम जे आसिक-रसिक मोरसिखा के समान हैं, तिनकौं घनस्यामल जिवावै। चतुर्थ। प्रथम तीन चरन कौ अर्थ प्रगट ही है।।५२।।

बेदरदी[7] सुदफै करि याराँ हँसि दीदार दिया करि।
रस बरसाइ सदा इतराइल खुसदिल अदा[8] किया करि।।
सुदिन आज मासूकीदा तव तिसका मजा लिया करि।
सहचरिसरन रसिक आसिकदा जीव जिवाइ जिया करि।।५३।।

---

१. चकवा २. दर्पण ३. ढीठ, लम्पट ४. कनिष्ठ अंगुली ५. ध्यान नहीं देता ६. एक जड़ी जो मेघ से पुनर्जीवित हो जाती है ७. निर्दयता ८. पेश करना, चुकाना, हावभाव।

बेदरदी इति—हे यार ! बेदरदी जो है, ताहि एक दफै करि, दो दफै करि, चाहि हजार दफै करि; परंतु हँसि-हँसिकैं दीदार दियौ करौ। **हे इतरायल !** पुनः चितवनि रस, वचन रस इत्यादि रस, तिनकौं बरसायौ करौ। पुनः **खुशदिल** होयकैं अनेकन **अदा** कियौ करौ। **तव** कहियै—तुम्हारौ आज मासूकी कौ सुदिन है; ता मासूकी कौ मजा लियौ करौ। तात्पर्य यह, सुख दियौ करौ। सहचरिसरन रसिक-आसिक जो है, ताकौ जो जीव है, ताहि जिवाइकैं सदा तुम जियौ करौ।।५३।।

हारि हकीम लिया है रस्ता समझ बिना को बोलैं।
खान-पान दी जिकर कहा है आसिक आँखि न खोलैं।।
ताकी दवा एकही दारद[1] रूप अनूप कलोलैं।
सहचरिसरन मुये[2] कौं जैसे जीवन-मूल अमोलैं।।५४।।

हारि हकीम इति—रसिक-आसिक महबूब के विरह तें महा-व्याकुल है; ताकौं खान-पान कछु नाहिं सुहात है। ताकी दसा समझिकैं हकीम देखिकैं रस्ता गहि गयौ। और अर्थ प्रगट ही है।।५४।।

रवितनया तट वर-बंसीबट हँसि दीदार दिया था।
ऋजु[3]मुख मंजु वचन कहि सादर आसिक संग लिया था।।
कितहि रवाना हुवा वहै दिन छल दलि[4] दस्त छिया था।
यार ब यार मिलत नहिं काहे काहे कौल[5] किया था।।५५।।

या मंज कौ अर्थ प्रगट ही है।।५५।।

मुलाकात[6] कल विमल विलासिनि रिस आवेस मढ़ी सी।
स्यामैं करत सलामैं लेत न कलह सलाह रढ़ी सी[7]।।
सहचरिसरन रसिकवर पैनी कहर[8] कृपान कढ़ी सी।
उर अनुरागी आसिकान लखि मान-कमान चढ़ी सी।।५६।।

---

१. प्राप्त, मौजूद २. मृतक ३. सरल, सीधा ४. मलकर, मर्दन कर ५. वायदा, प्रण ६. मिलन, भेंट ७. रटी हुई ८. कोप, आपदा।

मुलाकात इति—आसिक आसिकनि प्रति कहैं हैं। महबूब की जो मुलाकात है सो **कल** कहियै—सुंदर है अरु **विमल** कहियै—उज्ज्वल है अरु **विलासिनि** कहियै—आसिकनि की समाज में महा-विलास के करनवारी है; परंतु सो जो मुलाकात है, सो रिस के आवेस सौं मढ़ी सी है। प्रस्न—रिस के दरसाइवे कौ प्रयोजन कहा? उत्तर—यह हू एक महबूब की अदा है; प्रगट में रिस कौ दरसावै है; निरंतर में मुलाकात बनी रहै। ज्यौं-ज्यौं महबूब रिस कौं दरसावै है, त्यौं-त्यौं आसिक की प्रीति अधिक होइ है। स्याम जे हैं, तिनकौं मैं **सलामैं** कहियै—दंडवत, सो अनेकनि करत है; परंतु निरपराध जो मैं, ताकी दंडवतैं लेत नहीं हैं। सो मैंने जानी कै कलह की सलाह सी रटी है। सहचरिसरन रसिक-आसिकवर जो कोऊ हैं, सो कहैं हैं—**कहर की कृपान** कहियै—तरवारि महापैनी कठोरता मियान तैं कढ़ी सी है। तात्पर्य यह, मोपै रुखाई करि रह्यौ है, सोई कहर सौ है। उर के विषय है अनुराग जिनकैं, ऐसे जे हैं आसिक, तिनकौं लखि—नाम देखिकैं महबूब की मानमई कमान चढ़ी सी है। ता कमान में अनखमई बान कौ अनुसंधान कियौ है। प्रस्न—अनुरागी आसिकानि कौं लखिकैं महबूब कौं रीझिकैं प्रसन्न भयौ चाहियतु हो, सो प्रसन्न तौ न भयौ, कोप दरसायौ; ताकौ तात्पर्य कहा। उत्तर —

दोहा— **छुटन न पैयतु नैकु बस, नेह नगर यह चाल।**
मार्‌यौ फिरि फिरि मारियत, खूनी फिरत खुसाल।।५६।।

रूप-सुधारस प्रमुद[१] प्यावदा[२] जिमि जलदा[३] झर भारे।
प्यासहि प्यास पुकारत आसिक सहचरिसरन कहा रे।।
जालिम इलम[४] किया कुछ कामिल[५] मोहन प्याऊ वारे।
हम तमाम गोरी से गुजरे तेरे गुन अनियारे[६]।।५७।।

१. आनन्दित २. पिलाते हैं ३. बादल ४. विद्या, ज्ञान, जादू ५. दक्ष, निपुण, पूर्णज्ञाता ६. पैने, बाँके।

एक समय सकल रसिक-आसिक मिलि श्रीप्रिया जी सौं विनय कीनी; कै हे श्रीप्रिया जी! मनमोहन जो महबूब हैं, सो हमकौं अपनौं जो रूप सुधा रस है, ताहि नाहीं पान करावैं हैं। आपकी ए आज्ञा में हैं। आप इनसौं आज्ञा कीजै। हम जे आसिक-रसिक चातिकवत त्रिषित हैं; जिनकौं तृपित करैं। तब श्रीप्रिया जी की आज्ञा भई कै हे आसिक-रसिक हौ! जैसें ग्रीषम रितु में सेठ, धनवान, राजा प्याऊ बैठारै हैं; तैंसैं ही मेरी ओर तैं मनमोहन तुमकौं रूप-सुधा-रस प्यावैंगे। तुम्हारी प्यास दूरि करैंगे। या भाँति रसिक-आसिकनि सौं कहिकैं श्रीप्रिया जी ने मनमोहन कौं आज्ञा दीनी कै हे मनमोहन! रसिक-आसिकन कौं अपनौं रूप-सुधारस पान देऊ। या भाँति श्रीप्रिया जी कौ अनुसासन मानिकैं रूप-सुधा-रस बरसिवे कौ प्रारंभ मनमोहन ने कियौ। पूर्व पीठिका इति। अर्थ—मंज-करता की उक्ति—**प्रमुद** कहियै—अति आनंद करिकैं युक्त **जिमि** कहियै—जैसैं **जलदा** कहियै—मेघ, तिनके महाभारे झर् लगै; तैसैं ही मनमोहन जो महबूब हैं, सो अपनौ जो रूप-सुधारस है, ताहि बरसिकैं रसिक-आसिकनि कौं प्यावैं हैं। **माधुरी धर वर व्योम। रस धार वरषत रोम।।** अमित तौ रूप-सुधा-रस की बरसा स्यामघन करत हैं; आसिक-रसिक पान करत हैं; परंतु तृपित नहीं होहिं हैं। ज्यौं-ज्यौं पान करत हैं, त्यौं-त्यौं प्यास अधिक-अधिक होत है। तब तौ आसिक-रसिक आश्चर्य कौं प्रापित होइकैं बोले—सहचरिसरन कहा रे! अरे महबूब! यह कहा? तुम तौ रूप-सुधा कौं बरसौ हौ; हम पान करत हैं; परंतु हमारी त्रिषा नहीं जाइ है; सो यह हमनें जानी, केवल आपकी चतुराई कौ कारन है; सो तृतीय चरन में कहैं हैं। सो मोहन प्याऊ वारे जालिम! आपु महाकामिल हौ। रूप-सुधा-रस बरसिवे के मिस आपनैं **महाइलम**—जादू कियौ है; ताही तैं हमारी प्यास नहीं जाइ है, अधिक-अधिक होत है। हे महबूब! श्रीप्रिया जी के कहिवे कौ यह—कै हम रूप सुधा रस अखंड धार बरसि कैं रसिक-आसिकनि कौं पिवावैं हैं। हमसौं निरंतर आपनै कहा

जानियै, कहा अनख मानी है; सो यह समझिवे में नहीं आवै है। तुम रूप-सुधा-रस में कहा मिलायकैं, कौन जुक्ति सौं बरसौ हौ; पान करिकैं हमकौं अधिक त्रिषा बढ़ति है। हे महबूब ! तेरे जे ए महा अनियरे **तमाम** कहियै—संपूर्न गुन, ते हम **गोरी जी**—श्रीप्रिया जी हैं तिनसौं गुजरैंगे; आछी भाँति जाहिर करैंगे। कहिवे में तौ यह कै उराहनौ देहिंगे, परंतु तात्पर्य याकौ यह है कि निरंतर रूप की प्रसंसा है। दुतीय तात्पर्य यह कै कर्षव[1] लइवौ है। तातैं रूप-सुधा-रस कौं अधिक-अधिक बरसैं हैं।।५७।।

यह निदान[2] जानत सुजान उर राधा रंग चैन का।
अधिक प्रकासित चिरागान[3] कल कानन कुंज ऐन[4] का।।
सहचरिसरन रसिक आसिक जन सुरमा सुखद नैन का।
रूप अनूप तामरस[5] मेचक[6] मारत मान मैन का।।५८।।

स्यामसुंदर के रूप कौ वरनन है। सुजान जे हैं, ते यह उर में जानत हैं; राधा जी कौ जो रंग-चैन है, ताकौ स्यामसुंदर कौ जो रूप है, सो **निदान** कहिऐ—कारन है। **कानन** कहिऐ—वन, ताकी जो कुंज तेई भए **ऐंन** कहिऐ—सुंदर, स्यामसुंदर कौ जो रूप, सोई भयौ, **चिरागान** कहिऐ—दीपन कौ समूह **कल** कहिऐ—सुंदरता करिकैं अधिक प्रकासित हैं। पुनः कैसौ है स्यामसुंदर कौ रूप ? सहचरिसरन कहैं हैं, रसिक-आसिकजन जे हैं, तिनके नेत्रनि कौं सुख कौ दैन वारौ सुरमा है। स्यामसुंदर कौ रूप जो है, सो अनूप है; **तामरस** कहिऐ—कमल, **मेचक** कहिऐ—स्याम, स्याम-कमलनि के मान कौं मारत है। मैन कहियै—काम, ताहू के मान कौं मारै है।।५८।।

परिमल[7] विमल महामतवाली इस्कामद जन मन में।
ग्रह दिमाग महबूब हो रहे आसिकदिलाँ चमन में।।

---

१. भूमि तैयार करना २. निश्चय, परिणाम ३. बहुत से दीपक ४. अयन, भवन, सुन्दर ५. स्वर्ण, कमल ६. काला, श्याम ७. पराग, सुगन्ध।

सहचरिसरन माहियाँ जल जिमि मृदु मकरंद लसन में।
छबि स्वामीहरिदास रसिक बिच जनु गुलाब गुलसन में।।५६।।

श्रीस्वामी हरिदास जी महाराज गुलाब कौ सुमन हैं मानौं, सो वर्नन करैं हैं। स्वामी जू के तन की जो स्वतह **परिमल** कहियै—सौगंध है; सो कैसी है विमल है; पुनः आप महामतवाली है; औरनि कौं महामतवारौ करै; तौ यामैं कहा आश्चर्य है? पुनः कैसी है परिमल; जन जे हैं, तिनके मन में **इस्क की आमद** करै है; इस्क कौं भरि देइ है। आनंदमई चमन के मध्य **दिमाग** कहियै—गरूरी रूप गुनादि, ताकौ **ग्रह** कहियै—मंदिर; अैसेऊ जे कोऊ महबूब। कैसे महबूब? **वारौं कोटि मदन मद रौंदा;** तेऊ सौगंध पाइकैं; श्रीस्वामी जी कौं निरखिकैं आसिक ह्वै रहे हैं। सहचरिसरन कहैं हैं—मृदु मकरंद की जो लसनि है, तामैं आसिक कैसे आसक्त हैं, जैसैं **माहियाँ** कहियै—मछरी, सो तिनकी जल में आसक्ति है। मछरी जल तैं न्यारी नहीं हो सकै है; आसिकदिल श्रीस्वामी जू के मृदु मकरंद तैं न्यारे नहीं हो सकैं हैं। रसिकजन जे हैं, तिनके बीच श्रीस्वामी जू महाराज छबि करिकैं सोभित हैं। कैसे? **जनु** कहियै—मानौ **गुलसन** कहियै—बाग, तामैं गुलाब जैसैं।।५६।।

रज्जु[1]-असक्ति इस्क दा मंदर कमठ[2] भाव दा होवै।
साबित[3] इस्कदिलौं से मिलिकैं रसनिधि रसिक बिलोवै।।
आबदार[4] अनमोले अच्छे रतनावलि जुग जोवै।
सहचरिसरन सुफैजबख्स[5] वह जाहिदाद[6] मद खोवै।।६०।।

समुद्र के मंथन कौं वासुकी नाग की रज्जु बनाई है; यहाँ रसनिधि के मंथन कौं आसक्ति की रज्जु बनावै। वह समुद्र मंदराचल

---

१. रस्सी २. कच्छप ३. सिद्ध, प्रामाणिक ४. पानीदार, आभायुक्त ५. उदार, दानदाता ६. संयमी, विरक्त, ज्ञानी, कर्मठ।

सौं मथ्यौ है; इहाँ रसनिधि के मंथन कौं इस्क कौं मंदराचल बनावै। वहाँ कमठ रूप धरिकैं भगवान नैं मंदराचल कौं पृष्ठ पै धारन कियौ है; इहाँ भाव रूपी कमठ प्रगट होय, तौ कार्य होय। वा समुद्र कौं तौ देव-दानव जे हैं, तिननैं मिलिकैं बिलोयौ है; इहाँ रसनिधि कौं आसिक-रसिक जन साबित इस्कदिलौं सैं मिलिकैं बिलोवै। या भाँति वा समुद्र कौ मंथन किए तैं रत्न प्रगट भए हे; यहाँ रसनिधि के मंथन किये **जुग** जे जुगलकिसोर हैं, तेई भए आबदार अनमोले अच्छे रत्ननि की अवली, सो प्रगट होहिं हैं। तिनकौं जो कोऊ जोवै है; सहचरिसरन कहैं हैं—ऐसौ जो रत्ननि कौ संग्रह करनवारौ जो महानुभाव, सो वह **फैजबक्स** है; **जाहिदाद** कहियै—ज्ञानी, करमठ तिनके मद कौं खोवै है। तात्पर्य यह, आसिक-रसिकनि नैं प्रिया-प्रीतम रूपी परम धरम धन पायौ है, तिनके समान ज्ञानी, करमठ नहीं हैं; तौ अधिक कैसैं होहिंगे ?।।६०।।

खाली है न खुसाली से मन उर अनुराग अली का।
विमल महल दा रंग लालची भावक भक्ति भली का।।
सहचरिसरन रसिक रस माता कुंजर[१] कुंजगली का।
आया नहीं न आवै छल बिच आसिक छैल छली का।।६१।।

हरदम कदम कलम ना महरम[२] मन अनुभवी अनंदा।
जिहिं अंगूरसुता सरमिंदी सुरख[३] सराब खुरंदा[४]।।
भाव-लहर दरियाव[५] दिलौं बिच ठयौ ठाँव मुख-चंदा।
सहचरिसरन उपासक आसिक आसिक रसिक चुनंदा[६]।।६२।।

हरदम इति—आसिक-रसिक जे हैं, तिनकौं परम अमायिक रसानंद है, ताकौ अनुभव है। कैसौ है रसानंद; तहाँ कोऊ पहुँच नहीं

१. हाथी २. भेदी, स्वादी, जिससे छिपाव न हो ३. लाल ४. खानेवाला (यहाँ पीनेवाला) ५. महानद, समुद्र ६. चुना हुआ।

सकै है। **हरदम**—हरेक की दम कहियै—स्वासा, सो **महरम** नहीं है। तात्पर्य यह, काहू की स्वासा हू वहाँ लौं नाहीं पहुँचै है। हरेक कौ **कदम** कहियै—पग महरम नहीं है। तात्पर्य यह, काहू कौ पग नाहीं पहुँचै। हरेक की कलम महरम नाहीं है। तांत्पर्य यह, काहू की कलम सौं वह आनंद लिखिवे में नाहीं आवै है। ऐसौ वह रसानंद दुर्लभ है; ताकौ अनुभव आसिक-रसिक चुनंदा कौं है। अनुभव कौ लच्छिन—

दोहा—

वस्तु विचारत ध्याव तैं, मन पावै विश्राम।
रसास्वाद सुख उपजै, अनुभव याकौ नाम।।प्रथम।

पुनः कैसे हैं आसिक-रसिक चुनंदा; **सुरख** कहियै—अरुन **सराब** कहियै—मदिरा; ताके **खुरंदा** कहियै—खानवारे हैं। कैसी है मदिरा; **जिहिं** कहियै—ताहि देखिकैं **अंगूरसुता**—अंगूर तैं उत्पन्न भई; ऐसी जो मदिरा; सो **सरमिंदी** कहियै—लज्जित भई है। क्यौंकि जो सुख, स्वाद, मादिकता अनुरागमई; सो मदिरा अंगूरसुता में नाहीं है। पुनः कैसे हैं आसिक-रसिक चुनंदा; भावमई हैं लहरि जामैं; ऐसौ जो है **दरिआउ** कहियै—रस कौ समुद्र, सो है तिनके **दिलौं बिच**—तिनही दिलौं बिच ठयौ है **ठाँव** कहियै—स्थान, **मुखचंदा**—चंद्रमावत हैं मुख जिनके; ऐसे जे प्रिया-प्रीतम, ते तामैं बसैं हैं। पुनः कैसे हैं आसिक-रसिक चुनंदा ? सहचरिसरन कहैं हैं—उपासिक-आसिक जे हैं अगनित; तिनमें बिरले कोऊ आसिक-रसिक चुनंदा हैं।।६२।।

इस्कदिलौं से निरविलीक[१] है लीक[२] निदान खचा ले।
सहचरिसरन सुजान सु ना जकि नाजुक[३] रंग रचा ले।।
हरविधि बन्यौ सरस वर बानिक आनंद आजु मचा ले।
चातिक चाहि सिखी[४] सम नैना छबि घनस्याम नचा ले।।६३।।

---

१. सच्चा, निष्कपट २. मर्यादा, रूढ़ि ३. सुकुमार, कोमल ४. मोर।

इस्कदिलौं से इति—मन सौं कहैं हैं अथवा जिग्यासु सौं कहैं हैं—इस्कदिल जे हैं, तिनसौं **निरविलीक** कहियै—निस्कपट ह्वै कैं **निदान** कहियै—कारन रूप जे वस्तु है, ताकी लीक खिंचवाइ लेहु। पुनः सहचरि-सरन कहैं हैं—हे सुजान! **ना जकि**—मति जक; हेतु यह, संका मति करै। **नाजुक** कहियै—सुकुँवार जो रंग है, सो रचवाइ लेहु। नाजुक रंग कौन सौ; सो कहैं—**मृदु रस रंग रंगीली नागरी रस रंगे हैं रसिक सुकुँवार** इत्यादि। **हरविधि** कहियै—हरेक भाँति सौं **सरस** कहियै—रस भर्‌यौ बानिक बन्यौ है। प्रस्न—बानिक कहा; उत्तर—तैसोई तौ परम कृपाल आसिक-रसिक; तैसौई तू भावक है; तातैं आनंद मचाइ लेहु। पुनः तेरी जो चाह, सोई भई चातिक; तेरे जे नैंन, तेई भए **सिखी** कहियै—मयूर; स्याम जे हैं, तेई भए **घन** कहियै—मेघ, तिनकी जो छबि है, तामैं चित की चाह अरु नैंन तिनकौं नचाइ लेहु।।६३।।

मनमोहन महबूबी खूबी मुलक[१] अमोलक ताकें।
बनी ठनी रस अनी[२] सनी सुख घनी मनोहरता कें।।
सहचरिसरन साहि जग जाहिर[३] इस्क जवाहर[४] जाकें।
बखत[५] बलंद[६] तखत पर बैठा नीति निसान बजा कें।।६४।।

मनमोहन इति—रसिक-आसिक जो है, सोई भयौ साहि; ताकी साहिबी कौ वर्णन करत हैं। मनमोहन की जे महबूबी है, **खूबी** कहियै—भलाई की करनवारी, तेई भई मुलक अमोलक। जैसैं पातसाहि कैं मुलकनि तैं अनेक आमद होहिं है; ऐसैं ही रसिक-आसिक पातसाहि कैं महबूबी मुलकनि तैं अनंत सुखनि की आमद होइ है। पुनः कैसौ रसिक-आसिक साहि; ताकी रस रूपा **अनी** कहियै—सैंना है, सो **बनी ठनी** है; रस के अनेक रंगनि करिकैं युक्त है। कुरस सकल जानैं जीते हैं। अरु सुखनि सौं सनी है; पुनः घनी मनोहरता करिकैं युक्त है। पुनः कैसौ है रसिक-आसिक साहि; सहचरिसरन कहैं हैं—इस्क

१. देश २. सेना ३. प्रकट, प्रसिद्ध ४. रत्न ५. भाग्य ६. ऊँचा, उन्नत।

रूपी जवाहिर कौ आदि दैकैं है खजानौ जाकैं। पुनः कैसौ है रसिक-आसिक साहि; बखत बलंदी जो है, सोई भयौ तखत, तापर विराजे है। तात्पर्य—गद्दी नसीन है। नीति रूपी निसान जानै बजायौ है।।६४।।

हासिल[१] होय रसायन रस की रहित अहित रस्तौं से।
मिलती रहै सदा खुसन्यामत[२] मिहरमई तस्तौं[३] से।।
सहचरिसरन सिताबी दोस्त दस्त लेहिं दस्तौं से।
छबि सराब से झिला[४] रहै यह मिला रहै मस्तौं से।।६५।।

हासिल इति—मस्त जे आसिक-रसिकजन; तिनसौं मिला रहै, तौ परम लाभ होइ। प्रस्न—कौन-कौन लाभ होइ ? उत्तर—रस की जो रसायन है, सो **हासिल** कहियै—प्रापित होयगी। पुनः **अहित** कहियै—हित करिकैं रहित जे रस्ता हैं, तिनतैं रहित होइ। तात्पर्य यह है कै सुपंथ में चलै। **खुस** कहियै—आनंद रूपी जो **न्यामतैं,** ते **सदा** कहियै—सदैव मिलती रहैं। प्रस्न—कहाँ तैं मिलती रहैं ? उत्तर—प्रानप्यारौ जो महबूब है, ताके **मिहर** कहियै—कृपामई थाल तैं मिलती रहैं। सहचरिसरन कहैं हैं—पुनः **दोस्त** कहियै—मित्र, प्यारौ **सिताबी** कहियै—सीघ्र दस्त लेहिं दस्तौं सौं। **दस्त** कहियै—हाथ, ताकौं अपने **दस्तौं** से कहियै—अपने हाथनि सौं लेहिं। पुनः छबि **सराब** कहियै—मदिरा तासौं झिला रहै; सो मस्त जे हैं आसिक-रसिक; तिनसौं मिलौ रहै।।६५।।

बेदरेग[५] बेपरद[६] गरद[७] बिनु मिलना मिहर-दिलौं से।
जुगलकिसोर जोम[८] जिनके जिय मोहबत मोम-दिलौं से।।
सहचरिसरन फराकत[९] रहना साकत संग-दिलौं से।
अइ[❀] दीदम[१०] जु सुनीदम[११] रच्चे सच्चे इस्क-दिलौं से।।६६।।

---

१. प्राप्त २. कृपा प्रसाद, पुरस्कार ३. थाल ४. मगन, तृप्त ५. खेद रहित, घृणा रहित ६. पर्दा रहित (बिना छिपाव के) ७. भटके बिना ८. गर्व, उत्साह, धारणा ९. अलग, दूर १०. द्रष्टा, आँखवाले ११. सोये जैसे, निद्रालु ❀ पाठान्तर—ऐ।

बेदरेग इति—बेदरेग कहियै—संका रहित; बेपरद कहियै—परदा रहित। तात्पर्य यह कै कपट रहितं। **गरद बिनु**-धूरि रहित। तात्पर्य यह कहिवे कौ—निर्मल; कल्मस रहित। पुनः कैसे हैं? **मिहर-दिल** कहियै—जिनके उर में कृपा है; ऐसे जे हैं, तिनसौं सदैव मिलत रहै। पुनः कैसे हैं; तिनसौं मिलनौं; जुगलकिसोर जे प्रिया-प्रीतम तिनही कौ है **जोम** जिनके जिय में। तात्पर्य कहिवे कौ यह, जुगलकिसोर के अभिमान सौं भरे हैं; परंतु **मोमदिल** जे कोऊ उपासिक हैं, तिनसौं तिनकी मुहबत है; ऐसे जे कोऊ हैं; तिनसौं तौ मिलाप राखै; सहचरिसरन कहैं हैं—साकत जे हैं; **संग-दिल** कहियै—पाषान-वत हैं उर जिनके; **फराकत** कहियै—तिनसौं सदैव न्यारौ रहै। **अइ** कहियै—हे सज्जन! **दीदम** कहियै—यह हमनै देखौ है; जु **सुनीदम** कहियै—यह हमनै सुनौ है। प्रस्न—कहा देखौ है; कहा सुनौ है? उत्तर—आसिक-रसिक जन, तिनकौ सतसंग करिवौ; साकत संगी-दिल जे हैं, तिनकौ संग त्याग करिवौ; याही तैं **सच्चे** जे इस्कदिल हैं, तिनसौं हम **रच्चे** कहियै—रचि रहे हैं।।६६।।

हो हुस्यार अब होसदार तू खल-मति ढोल[1] मढ़ाया।
चटकदार[2] छबिदार न छूटै ऐसा रंग चढ़ाया।।
सहचरिसरन रूप दी दौलत अति आनंद बढ़ाया।
इस्क-किताब सिताब यार मुहिं उर धरि प्यार पढ़ाया।।६७।।

हो हुस्यार इति—रसिक-आसिकजन जे है, तिनमें हैं भाव जाकौ; ऐसौ जो है परम भावक; बड़ौ है उत्कर्ष जाकौ; ताकौं **खलमति** जे हैं, दुष्टजन; ते देखिकैं भावक के उपहास करिवे कौ विचार कियौ कै याकौ ढोल दैकैं उपहास करैं। तिनके अविवेक कौं समझिकैं परम कृपाल जे आसिक-रसिकजन हैं, ते प्रथम चरन करिकैं भावक कौं सावधान करत हैं। या भाँति आसिक-रसिकजन जे हैं, तिनके कृपामय

१. हँसी, परिहास, दिल्लगी २. आभायुक्त, तेज, चमकीला।

वचननि कौं श्रवन करिकैं भावक भावमय तीन चरननि करिकैं उत्तर करत भयौ। और अर्थ प्रगट ही है।।६७।।

इस्की इस्क उपासक सच्चा युगल यार छबि छक्का।
ऐंड़दार दरगाही[1] बंदा[2] मस्त कबूतर लक्का[3]।।
निंदक से खुस हुआ दिलंदर[4] निंदा फिरि फिरि बक्का।
ज्यौं ससुरारि गारि जग प्यारी सखीसरन परिपक्का।।६८।।

याकौ अर्थ प्रगट ही है।।६८।।

जिय जहान[5] से तरक[6] जिनों का गरक[7] महान विचारा।
इस्केलम[8] सु कलन्दर[9] अन्दर है मुद-मन्दिर प्यारा।।
सीसमहल मालूम समा[10] जिमि ज्योति जेब जग सारा।
सहचरिसरन कदमबोसी[11] कुनु खुसदिल होइ तिहारा ।।६९।।

जिय जहान से इति—आसिक-रसिक जन जे कलंदर हैं; तिनकी स्तुति करत हैं। **जहान** कहियै—संसार, तातैं **तरक** कहियै—वैराग्य जिनकैं। प्रस्न—वैराग्य प्रगट है, कै अभ्यंतर है ? उत्तर—जीय तैं वैराग्य है और प्रगट हू में वैराग्य है। पुनः **महान** कहियै—बड़ौ है **विचार** कहियै—विवेक जिनकौ, तामैं **गरक** कहियै—निमग्न है चित जिनकौ। पुनः कैसे हैं कलंदर ? इस्क रूपी जो इलम, सो है अभ्यंतर जिनकैं। पुनः **मुद** कहियै—आनंद महा—प्यारौ; ताके मंदिर हैं। पुनः **जिमि** कहियै—जैसैं सीसमहल जो है, ताके विषैं **समा** कौ प्रकास चहूँ ओर तें झलकत है; सो सबनि कौं मालूम परै है; ऐसैंही तिनकी जो जोति है, ताकी जो **जेब** कहियै—सोभा; सो सकल संसार में प्रकासित होत है; ताकौं सकल महान जानि लेत हैं। सहचरिसरन कहैं हैं--तातें ऐसे जे रसिक-आसिकजन कलंदर हैं; **कदमबोसी कुनु**—तिनके चरनारविंद

---

१. समाधि स्थल २. सेवक ३. कलाबाज, चतुर ४. दिल के अन्दर, दिलदार (विशाल हृदयवाला) ५. संसार ६. त्याग (फारसी) तर्क, ऊहापोह (संबल) ७. डूबे, निमज्जित ८. प्रेम की ध्वजा उठानेवाला प्रेमी ६. उत्तम साधु १०. दीपक ११. चरण चूमनेवाला।

जे हैं, तिनकौं चुंबन करि। तात्पर्य उनके चरननि कौं अपने कर जो हैं; तिनसौं स्पर्स करिकैं फेरि अपने करनि कौं चुंबन करि; यह कदमबोसी कहावै है। प्रस्न—कदमबोसी कियें तें कहा होयगौ? उत्तर—हे भावक! तेरौ खुसदिल होयगौ।।६६।।

रूप न जानैं रसिक स्यामदा सरस कलाम न मानैं।
निरस कलाम[1] कृसानु[2] दाहकर ज्ञानी मन अभिमानैं।।
कर-कमलौं से परसि हमन कौं बरसि रंग उर आनैं।
सहचरिसरन सिताब दिखावौ बदन-चन्द सुखदानैं।।७०।।

रूप न जानैं इति—आसिक-रसिकजन जे हैं, तिनकौ सतसंगी कोऊ; आसिक जन जे हैं, तिनसौं कहत हैं—हे महाराज! हौं अभिमानी, जो सुस्क ज्ञानी है, सो कैसौ है; रसिक जन जे हैं, तिनके रूप कौं; स्यामसुंदर जो हैं, ताके रूप कौं नहीं जानै है। **सरस** कहियै—रस भर्‍यौ, जो **कलाम** कहियै—वचन; ताकौं नहीं मानै है। **निरस** कहियै—रस रहित, ऐसौ जो कलाम कहियै—वचन **कृसान** कहियै—अग्नि, ता वन दाह कौ करनवारौ, ताकौं कहै है। महाअभिमानी ज्ञानी कहिवेई मात्र है। दाह के नास करिवे कौ सो तौ उपचार चाहियै। तातैं हे आसिक-रसिक हौ! आपके जो कर, तेई भए कमल, तिन करिकैं हमकौं परसौ अरु **रंग** जो सीतल, ताहि बरसौं; ताकौं हम अपने उर में धारन करैं। सहचरिसरन कहैं हैं—महबूब कौ जो सुख कौ दैनवारौ बदनचंद है, ता सिताबहि दिखावौ; ता करिकैं दाह सांत होइ।।७०।।

अब तकरार[3] करौ मति यारौ लगी लगन चित चंगी[4]।
जीवन प्रान जुगल जोरी के जगत जाहिरा अंगी।।
मतलब नहीं फिरिस्तौं[5] से हम इस्कदिलौं दे संगी।
सहचरिसरन रसिकसुलताँवर[6] मिहरवान रस रंगी।।७१।।

---

१. उक्ति, वचन २. अग्नि ३. संघर्ष, झगड़ा ४. उत्तम, अच्छी ५. देवदूतों, देवों ६. सम्राट, बादशाह, श्रेष्ठ।

उर अनुराग रसिक आँखौं बिच वर गोरी छबि छाजै।
घनस्यामल मिलि अजब त्रिवेनी बेनी तिलक विराजै।।
गुप्त कुसल आसिकदा दम-दम[१] सहचरिसरन समाजै।
विमल विनोद विलोकि जिनौं कौं मुक्ति मौज मन लाजै।।७२।।

दौलतखाना रूपरंगदा अदामजादी[२] जोऊ।
परा सोर दरबार दोस्ताँ क्या गरूर करि कोऊ।।
सहचरिसरन अजबदी दारू स्यामल स्यामा सोऊ।
लगे हमन कौं अखिल अलोने निरखि सलोने दोऊ।।७३।।

इनकौ अर्थ प्रगट ही है।।७१।।७२।।७३।।

उस सूरतिदे तलबदार[३] हम कहि दे दगा सुना दे।
आहौ[⊛४] चस्म[५] अहो घनआनन्द टुक दीदार करा दे।।
मिलै हमन कौं यार सिहर[६] दे कारवान[७] जिनि लादे।
सहचरिसरन अमल-छबि लैना रसिकराय सहिजादे।।७४।।

उस सुरति दे इति—महबूब कौं सौदागर करिकैं वर्नन करत हैं। आसिक-रसिकजन जो है, तासौं कोऊ कहत है—हे आसिक-रसिक ! वह जो महबूब है, सो सौदागर है। उसकी जो सूरति है, ताके हम **तलबदार** कहियै—प्रयोजन के राखनवारे हैं, तातैं वासौं कहि दे, सूरति के दरसाइवे में दगा मति देउ। प्रस्न—कैसौ है सौदागिर ? उत्तर—**आहौ** कहियै—मृग, ता वत हैं **चस्म** कहियै—नेत्र जाके; पुनः आनंद के बरसिवे कौ घन है। बहुत नहीं; तौ वाकौ टुक-मात्र तौ दीदार कराइ दे। वह जो यार **कारवान** कहियै—सौदागिर है; तानैं **सिहर** कहियै—जादू, ताके टाँडे[८] लादै हैं; सो हमकौं मिलै, सो तुम करौ। प्रश्न—

१. साँस-साँस पर २. आनन्द के हावभाव ३. व्यसनी ४. हिरन ५. नेत्र ६. माया, इन्द्रजाल ७. व्यापारियों, यात्रियों का जत्था ८. लदकर जानेवाली वस्तु, माल; समूह ⊛ पाठा०—आहू।

वासौं मिलिकैं कहा करौगे ? उत्तर—सहचरिसरन कहैं हैं—वह सौदागिर है, वासौं छबि रूपी अमल लैनै हैं। प्रश्न—ऐसैं तुम कहौ, जो वासौं अमल लेहुगे ? उत्तर—रसिकराइ जे श्रीस्वामी हरिदास जी हैं, तिनके हम सहिजादे हैं।।७४।।

अटकि रह्यौ अटपटी पाग मन मुख सुषमा[1] सुखसागर।
विमल गंड[2] मंडल पर झलकत कुंडल अलक उजागर।।
बर गुंजरत मलिंद[3] माल उर नवकिसोर गुनआगर[4]।
मृदु मंजीर[5] झमाझम बाजत झमकि चलत नटनागर।।७५।।

याकौ अर्थ प्रगट ही है।।७५।।

मृदु-पद-पंकज गुलफ[6] अनूपम अलफ[7] लंक रसना की।
उर भुजदंड बसन भूषन तन चिबुक चमक चहुँघा की।।
भृकुटि कमा सुषमा सुमुखादिक दृग बादामनुमा[8] की।
दर दिवाल मुस्ताक[9] हुए सखि अय किसोर लखि झाँकी।।७६।।

मृदु पद इति—अंग वर्नन—**मृदु** कहियै—कोमल; ऐसे जे युगल पद-पंकज हैं, तिनकी झाँकी; युगल जे **गुलफैं** हैं, तिनकी झाँकी; **अलफ**-फारसी कौ प्रथम अक्षर सूधौ होइ है, ता वत है **लंक** कहियै—कटि जाकी, ताकी झाँकी; ता कटि के ऊपर **रसना** कहियै—किंकिनी, ताकी झाँकी। उर जो हैं; **भुजदंड** जे हैं, बसन-भूषन तन, यह सकल झाँकी। **चिबुक** कहियै—ठोड़ी, ताकी जो चमक चहुँघा, ताकी झाँकी; **भृकुटी** जे हैं **कमा** कहियै—कमानवत, तिनकी झाँकी। मुख कौं आदि दैकैं जो **सुषमा** कहियै—सोभा, ताकी झाँकी। **दृग बादाम**—हे बादाम हौ ! तुम हमारी सर कियौवे चाहत हौ; सो यह न बनैंगी। हमकौं-तुमकौं बड़ौ अंतर है; ऐसे जे दृग हैं; तिनकी झाँकी। **अइ** कहियै—हे **सखि** !

---

१. शोभा, सौन्दर्य २. कपोल, गाल ३. भौंरे ४. गुणों की खान ५. नूपुर, घुँघरू ६. टखना ७. लचीली, सूधी ८. बादाम की भाँति ६. उत्कण्ठित, अनुरागी, आशिक।

कहियै–मित्र, यह संबोधन है। हे मित्र! **किसोर** जो महबूब है, ताकी झाँकी लखिकैं **दर** कहियै–दरवाजे अरु दिवालैं; इनकौं आदि दै अचरजे हैं, तेऊ तापै **मुस्ताक** कहियै–आसिक भए हैं। कहिवे कौ तात्पर्य यह, चर आसिक होंहि तौ कहा आस्चर्य है।।७६।।

वेद किताब लोक दा रस्ता ऐसा कौन चलावै।
आसिकान मासूक माल मद बरबस लूट करावै।।
सहचरिसरन जबरदस्तौं से भागिनि कोऊ पावै।
वृन्दावन दा बासिंदा निजगुन दौरा दौरावै।।७७।।

वेद किताब इति–प्रश्न–वेद-किताब के रस्ता कौं जो न चलन देइ, सो महबूब कैसौ? उत्तर–कर्म-धर्ममय जे वेद, तिनके मार्गनि कौं नहीं चलन देइ है। रूप कहर दरिआउ आब; जिन नाव धर्म दी लरजै इत्यादि। और अर्थ प्रगट ही है।।७७।।

रूप सुहुस्न[१] रसिक अलमस्ती वर कुंजर करि हाँसी।
लखि आलान[२] जुगल जुलफैं जनु जित सु प्रचेता[३] पाँसी।।
सहचरिसरन स्याम गुलखन्दा[४] खम[५] अबरूय[६] कमाँ सी।
खूबी[७] खूब[८] लताफत लागत गजब निगाहैं गाँसी।।७८।।

रूप सुहुस्न इति–रूप कहियै–मुख, ताकौ **हुस्न** कहियै–रूप; सो जो रूप है, ताके आसिक-रसिकजन जे हैं, ते सदैव पान करत हैं; ताही तैं इनकौं अलमस्ती सदैव रहै है। प्रश्न–कैसी अलमस्ती है? उत्तर–वर कुंजर जे हैं, तिनकी जो अलमस्ती है; तिनकी हाँसी करनवारे हैं। जुगल जे जुलफैं है, तिनकौं **लखि** कहियै–देखौ। प्रश्न–कैसी हैं जुलफैं? उत्तर–**जनु** कहियै–मानौ **आलान** कहियै–गजबंधन हैं। तात्पर्य यह कहिवे कौ–गजराजवत जे आसिक-रसिकजन हैं;

१. विशेष सुन्दरता २. हाथी बाँधने की जंजीर ३. वरुण देवता ४. फूल जैसी हँसी वाला ५. टेढ़ी ६. भौंह ७. सुन्दर, उत्तम ८. गुण विशेषता।

तिनके बाँधिवे कौं जुलफैं बंधन हैं। पुनः कैसी हैं जुलफैं ? **प्रचेता** जो वरुन है; ताकी पाँसी हैं; ते तिननै **जित** कहियै—जीती हैं। सहचरिसरन कहैं हैं—पुनः कैसौ है स्यामसुंदर महबूब! गुलखंदा। **गुल** कहियै—प्रसून, **खंदा** कहियै—हँसनि; प्रसून कैसी विकसनिवत है हँसनि जाकी। पुनः कैसौ है महबूब! **खम** कहियै—बाँकी हैं **अबरोइ** कहियै—भौंहैं जाकी। कैसी बाँकी हैं ? **कमाँ** कहियै—कमान सी हैं। पुनः कैसौ है महबूब ? **खूबी** कहियै—भलाई, सो ताकी खूब है। **लताफत** कहियै—पाकियत; पाकियत कहियै—निर्मलता, सो ताकी खूब है। पुनः कैसौ है महबूब ? जाकी जे निगाहैं; तेई भईं गाँसी; ते रसिक-आसिकनि के दिल बिच लागत हैं।।७८।।

लटकारी लट कारी नाहक नागिन आन खगैगी[१]।
मनमोहन की दीठ मोहनी रसनिधि ठीक ठगैगी।।
सहचरिसरन सु क्यौं न कहा तुम उर विरहागि जगैगी।
अय मालूम न मोहिं परी तव इस्क बलाय लगैगी।।७९।।

अमल चढ़ी भृंकुटी वर फरकैं फरकैं दृग रतनारे।
मृदु मुसिक्यानि बँकीली बाँकी बैन विनोद सुधारे।।
मोरमुकुटदी लटक बंक छबि जुलफ-जाल अति कारे।
सहचरिसरन त्रिभंगी रंगी उर उरझे मतवारे।।८०।।

दो मंजन कौ अर्थ प्रगट ही है।।७९।।८०।।

उच्चे कुच्च लसैं बिच कंचुकि तापर अंचल फेरौ।
चाल मटक्केदार हरै मन बटुरारौ[२] मुख तेरौ।।
जुलफकरादी[३] जाली आली मृग मोहन उरझेरौ।
सहचरिसरन अदा दिखलावै लावै रंग अनेरौ[४]।।८१।।

याकौ अर्थ प्रगट ही है।।८१।।

---

१. उलझेगी, भिड़ेगी २. बटुआ की तरह गोल ३. लटकते बालों की ४. सबसे अलग, स्वच्छन्द।

किया प्रान कुरबान जानि जिय अति अनुराग बड़ा है।
अइ[⊛] दिलबर ! दिलबरी करौ चलि दिल दीदार गड़ा है।।
सहचरिसरन सदन दर कदका रसमस्तान अड़ा है।
तेरी कसम चस्म तेरे लखि तेरा जान खड़ा है।।८२।।

किया प्रान इति—कोऊ जो आसिक-रसिक है, सो महबूब के दरसन के अर्थ महबूब के द्वार पै स्थित है। ताकी तरफ तें और कोऊ आसिक-रसिक महबूब सौं कहत है—हे महबूब ! वह जो आसिक-रसिक है, तानैं जो अपनौ प्रान है, सो आपके ऊपर **कुरबान** कहियै—न्यौछावरि कियौ है। यह आप आपने जीय में जानौ। कैसौ है आसिक-रसिक; ताकैं आपके विषै बड़ौ अनुराग है। **अइ** कहियै—हे दिलबर ! चलिकैं वाकी **दिलबरी करौ**। तात्पर्य यह; चलिकैं दरसन देहु। कैसौ है वह रसिक-आसिक ? ताके दिल में आपकौ दीदार गड़ौ है। सहचरिसरन आसिक-रसिक जन कहैं हैं—हे महबूब ! आपकौ सदन, ताकौ **दर** कहियै—दरवाजौ, तहाँ **कदकौ** कहियै—कबकौ रसमस्तान अड़ौ है। यह मैं मिथ्या नाहीं कहौं हौं; मोकौं आपकी **कसम** कहियै—सौगंध है। तेरे जे **चस्म** कहियै—नेत्र; तिनकौं लखिकैं तेरौ वह जान है, सो खड़ौ है। वाके मनोरथ कौ पूरन करौ।।८२।।

ठनि बनि ठनगन[1] ठानत रसिया कधीं कधीं रसरासे।
कधीं कधीं रुख रूखा करि करि अधर दसन धरि त्रासे।।
कधीं कधीं कहि गल्ल[2] सहल्ला[3][⊛⊛] आसिक ! तुम खासे।
दिल मुस्ताक हुआ है ये रे ! तेरे देखि तमासे।।८३।।

अलमस्तौं दा कंठ बिभूषन दिनदानन्द महानैं।
जगमगात जुग जुगल जेब से रसिक-जौहरी जानैं।।

---

१. हठ, जिद २. बात ३. हल्ला मचाकर, जोर-जोर से ⊛ पाठा॰—ऐ। ⊛⊛ पाठा॰—ऐ।

सहचरिसरन हुआ जग जाहिर साइर[1] साह प्रमानैं।
ललित ललाम[2] कलाम हमारा ऐसा कौन बखानैं।।८४।।

मय[3] अमलादि पिया न पिया सुख प्रेम पियूष पिया रे!
नाम अनेक लिया न लिया रति स्यामा स्याम लिया रे।।
आन सुदान दिया न दिया वर आनन्द हुलसि दिया रे।
जग यज्ञादि किया न किया हिय पर उपकार किया रे।।८५।।

तीन मंजन कौ अर्थ प्रगट ही है।।८३।।८४।।८५।।

बद[4] बेदरदाँ[5] बेतबीब[6] से दिल दा दरद न कहना।
दुसह दवा से सुख सरोज कौं रुज हररोज बिसहना।।
बीछी के जो खार[7] से खारहि काढ़त बड़ा अलहना।
सहचरिसरन इलाज इलाही[8] रूप रंग में रहना।।८६।।

बद बेदरदाँ इति—बद जे हैं, तिनसौं; पुनः बेदरद जे हैं, तिनसौं हे प्रवीन जन हौ! इनसौं अपने दिल कौ दरद मति कहौ। प्रश्न—इनसौं दरद क्यौं न कहैं, कहे तैं कहा होहिगौ? उत्तर—इनसौं अपने दरद की दवा बूझौगे; तब वे दवा देहिंगे। उनकी दवा कहिवेई मात्र है। कैसी है दवा; **दुःसह** कहियै—दुःख करिकैं सहिवे कौं योग्य है। तात्पर्य यह दुख के दैनवारी है। दुख में दुख देहि, तौ आश्चर्य नाहीं है। वह दवा कैसी है; सुख रूपी जो **सरोज** कहियै—कमल; ताकौ **रुज** कहियै—रोग; सो **हररोज** कहियै—नित-नित बिसाहिवौ[9] है। तात्पर्य कहिवे कौ यह; आछे सुखी कौं दुखी करि देइ है; ऐसी उनकी दवा है। उनकी दवा से दुख दूरि कियौ चाहत है; सो न होहिगौ, कैसै न होहिगौ। तापैं दृष्टांत है—जैसै **बीछी कौ खार** कहियै—काँटौ, तासौं लग्यौ जो साधारन **खार** कहियै, काँटौ; ताहि काढ़ौगे तौ अति दुख होहिगौ; यह बड़ौ अलहनौ जानौ। सहचरिसरन आसिक-रसिक कहैं हैं—तातैं

१. कवि २. सुन्दर ३. मद, शराब ४. खराब ५. निष्ठुर ६. खराब चिकित्सक,चिकित्सक ७. डंक, काँटा, जलन ८. ईश्वरीय ९. खरीदना।

उनकी दवा न कियौ चाहियै। प्रश्न—दरदवारौ तौ दवा की तलीसी कियौई चाहैगौ। तुम कहौ हौ, दवा न कियौ चाहियै; दवा न करै तौ दरद कैसै जाइ; सो कहौ? उत्तर—बद न होय, बेदरद न होइ, बेतबीब न होय; सज्जन जो कोई है; ताकी सनाह[1] रूपी दुवा अरु दवा करिवौ योग्य ही है। पुनः ईलाही जो इलाज है; सोई इलाज साँचौ है। प्रश्न—इलाही इलाज कौन सौ? उत्तर—इलाज यह; रूप रंग जो है; तामैं रहनौ; यह इलाज सकल ब्याधिन कौं हरै है।।८६।।

जबलगि मुख भोजन है ताके तबलगि मधुर विसेखौ।
भोजन रहित होत वह तबही अधिक विरसता रेखौ[2]।।
मिथुन बदन अकुलीन कहत कवि ताड़नादि गुन लेखौ।
सहचरिसरन भूलि जिनि भूलौ खल मृदंग इव[3] देखौ।।८७।।

जबलगि इति—खल कौं मृदंग सम करिकैं वर्नन करत हैं। प्रश्न—मृदंग कैसौ है? उत्तर—जबलगि मृदंग के मुख में भैंन रूपी भोजन है; तबलगि मृदंग तैं मधुर सुर विसेष प्रगट होत हैं। प्रश्न—खल कैसौ है? उत्तर—जबलगि खल के मुख में सुंदर-सुंदर भोजन देत रहौ; भोजन कौं आदि दै और सकल सनमान करत रहौ; तबलगि ही मधुर-मधुर वचन कहत रहै; स्तुति करत है; अनुकूल बन्यौ रहै है। प्रश्न—पुनः कैसौ है मृदंग? उत्तर—भैंन जो है, सोई भयौ भोजन, सो ता करिकैं जबही रहित हो जाइ। तात्पर्य यह है, भैंन न लगै; तौ तब ही अधिक **विरसता** कहियै—मधुर स्वर करिकैं रहित हो जाइ। मृदंग यह न विचारै कै आज भैंन मैंने न पायौ तौ कहा चिंता है। सदा तौ भैंन जो भोजन है, सो मोकौं मिलत ही रहै है। एक छिन न मिलै तौ विरस हो जाइ है; यह मैं रेखा खैंचि करिकैं कहौं हौं। प्रश्न—पुनः खल कैसौ है? उत्तर—ऐसैंही खल कौं सदा भोजन-सनमान बरसनि तैं देत रहै अरु जो एकही दिवस खल कौं भोजन न देहु, सनमान

१. कवच २. जानो ३. जैसा।

धनादि करिकैं न करौ; तौ ताही छिन अधिक विरस हो जाइ—निंदा करन लागै; बैर करन लागै। भोजन, सनमान पावै; तौ ताही छिन स्तुति, सुश्रूषा करन लागै। यामैं संदेह नाहीं। यह मैं रेखा खैंचि करिकैं कहौं हौं। पुनः कैसौ है मृदंग ? **मिथुन बदन** कहियै—द्वै हैं मुख जाकें। प्रश्न—पुनः कैसौ है खल ? उत्तर—मिथुन बदन कहियै—द्वै हैं मुख जाकें। प्रश्न—मृदंग के तौ द्वै मुख हैं, यामैं संदेह नाहीं; खल के तौ एक ही मुख है, द्वै कहे; सो कैसैं ? उत्तर—खल के मुख एक ही है; परंतु वाही मुख करिकैं स्तुति करै, वाही मुख करिकैं निंदा करै; तातैं खल के द्वै मुख कहे। पुनः कैसौ है मृदंग ? उत्तर—अकुलीन है। **कु** कहियै—भूमि; ता करिकैं **अलीन** है। तात्पर्य यह भूमि करिकैं रहित है। रासादिक में मृदंगी मृदंग कौं कटि सौं बाँधि लेइ हैं। वा समय भूमि करिकैं रहित है; तातैं अकुलीन कह्यौ। प्रश्न—पुनः खल कैसौ है ? उत्तर—**अकुलीन** कहियै—कुलीन पात्र नाहीं है; यह कविजन कहत हैं। प्रश्न—पुनः कैसौ मृदंग; उत्तर—ताड़नादि गुन करिकैं युक्त है। मृदंग कौं ज्यौं-ज्यौं ताड़न कीजियै, त्यौं-त्यौं, ही सुंदर स्वर मृदंग तैं प्रगट होत हैं। अस **गुन** जो डोरी है, ता करिकैं युक्त है। प्रश्न—खल कैसौ है ? उत्तर—ताड़नादि जो है; सोई ताकौ गुन है। **ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।।** यह बात लिखिवे कौं योग्य है। सहचरिसरन कहत हैं—यह बात भूलि हू करिकैं मति भूलौ। खल जो है, ताकौं **मृदंग इव**—मृदंग की नाईं देखौ। तात्पर्य यह, जो गुन मृदंग में, सोई गुन खल में हैं।।८७।।

प्रफुलित अंग मिलावत चोंचन मृदु कूजनि जनु टोना।
ओघ[१] निकुंज घौंसुवन[®][२] सीखैं रसखिल[३] कोटि सलोना।।
स्याम बिहंग[४] बिहंगिनि गोरी जिमि उरझ्यौ गुन गौना।
सहचरिसरन अचागर[५] नागर वर खिलवार खिलौना।।८८।।

१. समूह २. घोंसला ३. रसमय मित्र ४. पक्षी ५. नटखट ® पाठान्तर—घैंसुवन।

जुमुनातट बंसीवट नटवर राधा रसिक रिझाँवदा।
बिबि मुख-चन्द-चकोर-चारु-चख जय जम[१] जीव जिवाँवदा।।
अंस अंस भुज मेलि जुगल छबि छकि छकि छाक छकाँवदा।
सहचरिसरन उपासक आसिक यही ख्याल मनभाँवदा।।८९।।

सुभग सौरभानन्द नासिका प्रभा-नीर-निधि बोरैं।
इस्क-महल मिहरावैंसी[२] वर भृकुटि भेद भरि भोरैं।।
मदन मदा उमदा[३] उर चन्दन बदन-चन्द चित चोरैं।
सहचरिसरन रसिकआसिक तन झुकि झपाक[४] दृग जोरैं।। ९०।।

लीला ललित विलोकनि तब की दृग ध्रुव धाम धसी है।
मृदु मधु मंजु वहै बोलनि श्रुति विमल विलास लसी है।।
आसिकान उर आनि अमानी[५] वह मुसिक्यानि बसी है।
जनु अरविन्द मध्य वर भ्राजत सुखमय सुभग ससी है।।९१।।

किस जालिम दा इल्म लिया यह छलिया छैल छलैगा।
विसद रंग वर पहलवान छबि मान मनोज मलैगा।।
इस्कदिलौं दी गोल[६] गुमानी विकट कटाक्ष घलैगा।
सहचरिसरन रसिक हँसि आगे चंचल चाल चलैगा।।९२।।

पाँच मंजन कौ अर्थ प्रगट ही है।।८८।।८९।।९०।।९१।।९२।।

भ्रमत भ्रमर[⊛] कल कमल भ्रमावत कर चूरा चमकावै।
वर दुलहे दा रूप झलाझल तनु दुकूल दमकावै।।
सहचरिसरन रसिक मुक्ताहल झुकि झूमक झमकावै।
इस्क तमासेदार कथा कहि दृगन रंग रमकावै।।९३।।

---

१. युगल, दो २. द्वार की गोलाई ३. उत्तम, श्रेष्ठ ४. तेजी से, फुर्ती से ५. अत्यधिक
६. समूह ⊛ पाठा॰—भँवर।

किया विभंजन[1] मद सारसगन लखि लखि लटक लला की।
गलित गरूरी कल अलकैं तकि छल्लेदार छला की।।
अगनित नटवर लेत बलैयाँ नागर नवल कला की।
वारिद[2] वृन्द न पावत समता अमिता[3] झलक झला की।।६४।।

दो मंजन कौ अर्थ प्रगट ही है।।६३।।६४।।

होना नहीं बिदरदाँ लाजिम[4] आसिक तरफ तिहारे।
इस्क कदरदाँ वर ईषद[5] हँसि नजर दुरुस्त[6] निहारें।।
सहचरिसरन रसिक मुद मरदाँ जस-खुसबोय बिहारें।
रसमस्ती करदाँ लखि तिनकी अलि अँग अंग चिहारें।।६५।।

होना नहीं इति—कोई आसिक-रसिक महबूब सौं कहत हैं—हे महबूब! रसिक-आसिकनि पै तुमकौं बेदरद होनौ लाजिम नहीं है। सकल आसिक-रसिक तौ आपुही की तरफ हैं। उनकौं और काहू सौं प्रयोजन है नहीं। आसिक-रसिक चतुरसिरोमनि हैं। इस्क की **कदर** कहियै—कीमत, ताकौं जानत हैं। तिनकौं वर **ईषद** कहियै—मंद मुसिक्यानि, ता करिकैं उनकौं लखौ। तात्पर्य कहिवे कौ यह; उनकौं आप प्रसन्न ह्वै कैं देखौ। आपकी और उनकी नजर दुरुस्त है। तात्पर्य यह, आपुकौं वे नेह भरी आँखिनि सौं निहारैं हैं। सहचरिसरन कहैं हैं—कैसे हैं वे आसिक-रसिक? **मुद** कहियै—आनंद; आनंदमय मरद हैं। आपकौ जस रूप जो खुसबोइ है, ताही के विसैं जिनकौ बिहार है। तात्पर्य यह; जस कौं गान करत रहत हैं; श्रवन करत रहत हैं। रसमस्ती जो है, सोई भई **करदाँ** कहियै—तलवार तिनकी; ताकौं लखिकैं **अलि** कहियै—मधुपराज, तिनके अंग-अंग **चिहारें** हैं। तात्पर्य यह आसिक-रसिकनि की रसमस्ती देखिकैं अलिन के अंग-अंगनि में दुख होत है। प्रश्न—दुख अलिन कौं क्यौं होत है? उत्तर—अलि लज्जित हैं। यह

१. नष्ट २. बादल ३. अत्यधिक ४. उचित ५. थोड़ी ६. ठीक।

विचारैं हैं; रसमस्ती तौ कवि-जन हमारी सराहत हैं; परंतु इनकी रसमस्ती हम हूँ तैं सरस है। जा रस कौं ए पान करत हैं, सो हमकौं प्रापित नाहीं है।।६५।।

बाग तड़ाग नगर नेहावलि डगर माँदगी[1] डूबी।
उर अनुरक्त* खजाना जाना मनमोहन महबूबी।।
दृग रतनालेदा गुन गल्लैं मोहबत नाल[2] अजूबी[3]।**
सहचरिसरन हरीफ[4] रसिकवर रसरस्ता बिच खूबी।।६६।।

बाग तड़ाग इंति—रस-रस्तागीर जे हैं; तिनकौ वर्नन करत हैं। रस-रस्ता के जे चलनवारे हैं; तिनके विश्राम के अर्थ नेह की **अवलि** कहियै—पंगति; सोई भई बाग, तड़ाग, नगर; तिन विश्राम के देखत संतैं सकल माँदगी डूबी, तात्पर्य यह; दूरि भई। पुनः कैसे हैं; रस-रस्तागीर ? उर **अनुरक्त** कहियै—अनुराग करिकैं हैं अनुरक्त उर जिनकौ। पुनः मनमोहन जो है, ताकी जो महबूबी है, सोई खजानौ, जानौ; ताकौं विलसिवे के अर्थ लिये हैं। दृग **रतनालेदा** कहियै—रतनारे हैं दृग जाके, ऐसौ जो बाँके वर महबूब हैं, ताके जे गुन हैं; तिनही की हैं **गल्लैं** कहियै—बातैं। तात्पर्य यह परस्पर रसभरे गुननि कौ कथन करत चले जात हैं। महानुभाव जे हैं, तिनकी जो मुहबत, ताके **नाल** कहियै—साथ में चले जात हैं। मुहबत परम अजूबा है। पुनः रस-रस्तागीर; सहचरिसरन कहैं हैं—**महाहरीफ** हैं—महारसिकवर हैं। तिनकौं रस-रस्ता में महाखूबी है।।६६।।

(अरिल्ल)

स्याम सुवेद वेद कौ सार है । आसिक तिलक इस्क करतार है।।
आनंदकन्द उदार तीन गुन तें परे। प्रीति प्रतीति रसिक तासौं करैं।।

---

१. रोग, थकावट २. साथ ३. अद्‌भुत ४. प्रतिद्वन्द्वी, समान प्रेमी *पाठा०—अनुराग **पाठा०—सुहबत।

स्याम सुवेद इति—स्यामसुंदर जो है; सोई भयौ वेद। कैसौ वेद ? सकल जे वेद-सास्त्र हैं, तिनकौ सार है। तात्पर्य यह; सकल इनही कौं गावत हैं। आसिक जन जे हैं, ते स्यामसुंदर जो वेद है, ताके ऊपर इस्कमय जो **तिलक** कहियै—टीका, ताके **करता** कहियै—करतार हैं। तात्पर्य यह; गूढ़ ग्रन्थ कौ अर्थ टीका सौं आछी भाँति समझिवे में आवत है। ऐसैंही जो स्यामसुंदर कौ जो गूढ़ सुख है, सो इस्क के कियैं तें समझिवे में आवत है। द्वै चरन कौ अर्थ प्रगट ही है।।९७।।

क्या लगते हौ दौरि-दौरि तुम मनमोहन के रूपै।
बिन देखे फिर कल न परैगी सुन्दर बदन अनूपै।।
सहचरिसरन रसिकआसिक दृग पगि जैहैं रस तूपै[१]।
वह बेदरद न दरद जानिहै सरदचन्द ब्रजभूपै।।९८।।

हुकुम हुआ है मोहन कौ यह बेसिर होय सु आवै।
सुंदर मति मैदान इस्क दा ढोल अमोल बजावै।।
सहचरिसरन रसिक आसिक नट सुरति बरत[२] चढ़ि धावै।
दुहरी तेहरी लेहिं कुलाटैं[३] दरस इनायत[४] पावै।।९९।।

कनक जटित केकी[५] कल कुंडल भव भुजंग विष-भंजन।
मनमोहन वर बाज भौंह नख बृजन[६] खगाली गंजन।।
रतन अमोल अमल दृग आयत विपति दलन मनरंजन।
सहचरिसरन त्रिताप तिमिर-हर बदन-चन्द मति-मंजन।।१००।

उर में घाव रूप सौं सेकैं हित की सेज बिछावै।
दृग-डोरे सुइयाँ वर बरुनीं[७] टाँके ठीक लगावै।।
मधुर सचिक्कन अंग-अंग छबि हलुवा सरस खवावै।
स्याम तबीब[८] इलाज करै जब तब घायल सचु पावै।।१०१।।

---

१. स्तूप, समूह २. मोटा रस्सा ३. कलाबाजी, चौकड़ी ४. कृपा ५. मोर ६. पाप ७. बरौनी (आँख की) ८. हकीम, चिकित्सक।

रतनारे अनियारे प्यारे जनु मनसिज के भाले।
घने घाव घाले बहु बाँके आसिकान घर घाले।।
सहचरिसरन रसिक उर अंतर नष्ट साल[१] जिमि साले।
मनमोहन विसवासी के दृग लखि लोने[२] रस आले।।१०२।।

चार मंजन कौ अर्थ प्रगट ही है।। ९९।।१००।।१०१।।१०२।।

निरखि दयानिधि ! निपट गरीबी बेदरदी न जगा दे।
रवादार[३] जिनि होहु पार करि जर[४] फक्करी तगादे[५]।।
सहचरिसरन रसिक आसिक तव भव नदिया न दगा दे।
अइ[*] मल्लाह वर मिहर दुरुस्ती निजु किस्तियें लगा दे।।१०३।।

निरखि इति—मनमोहन कौ मलाह करिकैं वर्नन करत हैं। हे दयानिधि ! मेरी जो **निपट** कहियै—अति गरीबी है; ताहि **निरखि** कहियै—देखौ; अपनी जो बेदरदी है; ताहि मति जगाइ दै। तात्पर्य यह, हमारे ऊपर बेदरदी मति करौ। हमकौं संसार नदिया तें पार करौ। कदाचित आप कहौ कै हमकौं उतराई देउ; तब हम पार करैंगे ? ताकौ उत्तर आप सुनियै—**फक्करी** कहियै—फकीरी; ताकौं आदि दैकैं और सकल सुकृत; तेई भई **जर** कहियै—द्रव्य, ताके जे तगादे; तिनकौं करिकैं ताकौ **रवादार** कहियै—इरादा करनवारौ मति होहु। तात्पर्य यह; हमसौं उतराई मति माँगौ; हमकौं पार करौ। कदाचित कहौ; हम तौ संसार नदिया तें पार करिवे कौं मलाह हैं; बिना उतराई लियैं पार कैसैं उतारैं ? ता पर उत्तर—सहचरिसरन रसिक-आसिक **तव** कहियै—आपकौ है। मलाह अपनैं कौं उतराई बिना पार करै है। कहिवे कौ तात्पर्य यह; मैं आपकौ हौं, तातें मोसौं उतराई मति माँगौ, मोकौं पार करौ। **भव** कहियै—संसार; सोई भई नदिया, ताके पार उतारिवे में

---

१. बाण, काँटा २. सलोने, सुन्दर ३. हितैषी, इरादा करनेवाला ४. धन ५. तकाजा, माँग। * पाठा०—ऐ।

दगा मति देउ। अइ मलाह! हे मनमोहन मलाह! आपकी जो दुरुस्त वर मिहर है, सोई भई आपुकी निजु **किस्ती** कहियै—नौका; तामैं मोकौं बैठारिकैं पार लगाइ देहु।।१०३।।

रूप नीर-निधि अंग-अंग प्रति प्रीतम प्रान पिया तैं।
आसिक रसिक विलोचन प्यासे छबि छिटकान दिया तैं।।
नवल नेहवर मंत्र मेलि सिर मन मानिक सु लिया तैं।
सहचरिसरन स्याम लोभिन पर बाढ़ा[१] सरस किया तैं।।१०४।।

मनमोहन मुख लगी खगी उर जिकर जूह[२] धरिवे कौं।
हाय ! बलाय कहाँ तें आई इस्क-भूमि भरिवे कौं।।
सहचरिसरन रसिक आसिक अति जहमत*[३] पन करिवे कौं।
बंसी सरल सरस वर बंसी[४] मीन-प्रान हरिवे कौं।।१०५।।

रूप अनूप सदन हँसि खोलैं अलक फन्द अलबेले।
तिन बिच बन्द हुते जनु जादू बील[५] भाव तें मेले।।
सहचरिसरन रसिक आसिक सिर अधिक रंग सौं खेले।
सुख सरसाय बसाय इस्क-पुर उर सैतान[६] उसेले[७]।।१०६।।

ठहरि दरस देता नहिं कबहूँ गुन-गंभीर गरबीले।
ठगि-ठगि लेत ठगन मन मेलत मृग सावक[८] दृग बीले।।
अलक बाल मृदु मत्त बँधे गज आसिक वर अरबीले।
सहचरिसरन रसिक रसिया के कल छल छन्द छबीले।।१०७।।

रस रविजात[९] न्हवाइ विमल छबि फबित सिंगार सिंगारे।**
अंकुस भौंह सैंन करि साँकर डीलदार[१०] कल कारे।।
सरस रँगीली टक्कर तिनकी दिगदंतिन[११] मदहारे।
क्या गुनाह आसिक तन पेलत पील[१२] नैन मतवारे।।१०८।।

---

१. बौछार, बाढ़ २. यूथ, समूह ३. कष्ट ४. मछली फाँसने का काँटा ५. मंत्र, ढरारे ६. सन्मार्ग से हटानेवाला ७. सहायक ८. छौना ९. यमुना १०. पुष्ट शरीर वाले ११. दिग्गज १२. हाथी * पाठा०—जिहिं मत। ** पाठा०—न्हाइ।

पाँच मंजन कौ अर्थ प्रगट ही है।।१०४।।१०५।।१०६।।१०७।।१०८।।

दोहा–

यह मंजावलि मंजुवर, इस्क सिलीमुख[१] ग्राम[२]।
रसिकनि ह्रदय प्रवेस करि, राजत अति अभिराम।।१०६।।

वर बरछी मुसिक्यानि हनी उर नैन-कटारी तापै।
अति भरि बाँह तानि बेदरदाँ करद[३] चलाई जापै।।
घायल किए रसिक आसिक-जन बलि तव* वीर कलापै।
इस्क-तमंचा कराबीन[४] छबि लिया स्याम कहु कापै।।११०।।**

नैन कटारी तापै–

दोहा–

मति चलाउ मो सामुहैं, बेदरदाँ दिल यार।
नैंन कटारी बाँकुरी, पल मियान पटियार।।११०।।

बिन हथियार करत उर घायल समर बावरे भै ना।
अति इरषैल मदन पुनि तापर दई बाँक करि सैना।।
इक* बंदूक चढ़ी जिमि बाजी तासौं कोउ बचै ना।**
सहचरिसरन रसिक आसिक इमि महबूबाँ दै नैना⊛।।१११।।

तेरा जहाँ[५] कहाय हाय अब उर विरहागि दहावै।
रे बेदरद दरद यह केता दरबर[६] दस्त गहावै।।
सहचरिसरन रसिक चय[७] चातिक तू घनस्याम कहावै।
रूप रंग रस बरसि स्वाति सुख प्यासहि क्यौं न बहावै।।११२।।

द्वै मंजन कौ अर्थ प्रगट ही है।।१११।।११२।।

---

१. भौंरा, बाण २. समुदाय ३. छुरी ४. छोटी बन्दूक ५. संसार ६. उतावली, दबाब से ७. समूह *पाठा०–तो ** कहि *** इस्क ⊛ महबूब बदै ना।

जग तारीफ करैगा दायम[१] देगा नहिं कर ताले।
वर विनोद मंदिर देखन बिच खूँटि जाहिंगे ताले।।
मुख-चंद्रम दीदार मिलैगा जबर होहिंगे ताले[२]।
सहचरिसरन रसिक आसिक जन तिनका सरस मता ले।।११३।।

रसिक-आसिक जन जे हैं, तिनकौ सरस मत लेहु। कैसौ है तिनके मत कौ प्रभाव; सो वर्नन करत हैं। जग जाकी **तारीफ** कहियै—स्तुति करत रहैगो **दाइम** कहियै—सदैव; **देगा नहीं कर ताले**—कर सौं ताली न देहिंगे। तात्पर्य यह कौन हूँ निंदा न करैंगे। पुनः सरस संमत लियैं तें कहा होयगौ ? सो कहैं हैं—**वर** कहियै—श्रेष्ठ, **विनोद** कहियै—आनंद, तिनके जे मंदिर हैं, तिनके **ताले** कहियै—तारे, एते एक छिन में खूँटि जाहिंगे, विलंब न लगैगौ। पुनः संमत लियैं तैं कहा—होहिगौ ? **मुख-चंद्रम** कहियै—चंद्रमावत है सुमुख तिनके, ऐसे जे प्रिया-प्रीतम; तिनकौ **दीदार** कहियै—दरसन मिलैगौ। पुनः संमत लियैं तैं कहा होहिगौ ? **जबर** कहियै—सर्वोपर **ताले** कहियै—नसीब होहिंगे। सहचरिसरन कहैं हैं—आसिक-रसिक जन जे हैं; तिनकौ सरस मता **ले** कहियै—लेहु। सरस संमत लियैं तैं और हू सकल कारज सिद्ध होहिंगे।।११३।।

मनहि किया है जेरदस्त[३] जिन सोभा साधु सभा की।
सहचरिसरन कुटिल भवमोचन मिहर सबल रसिका की।।
जदपि सुखाखसार[*][४] दुनिया बिच लगत न आफत जाकी।
जिमि आईन आबखाने[५] मधि झलक जात नहिं ताकी।।११४।।

मनहि किया है इति—कैसौ है रसिका ? मन जो है, ताहि कियौ है **जेरदस्त** कहियै—अपने हाथ के नीचै। तात्पर्य कहिवे कौ यह, मन

१. सदा, उम्रभर २. भाग्य, किस्मत ३. अधीन, कमजोर ४. तुच्छ, दीन ५. जलगृह
* पाठा.—सुखाकसार।

कौं अपने बस कियौ है। पुनः कैसौ है रसिका ? साधुजन जे हैं, तिनकी सभा की सोभा है। सहचरिसरन कहैं हैं—पुनः कैसौ है रसिका; महा-कुटिल जो **भव** कहियै—संसार, ताके मोचनवारी है महासबल **मिहर** कहियै—कृपा जाकी। प्रश्न—संसार में रसिका रहत है। जो संसार में रहैगौ, ताकौं तौ संसार के दुख-सुख प्रापित ही होहिंगे। जब आपही दुख-सुख करिकैं जुक्त होहिगौ; तब और कौ संसार कैसै दूरि करैगौ ? उत्तर—रसिका कैसौ है ? और हू कौ संसार दूरि करिवे कौं सामर्थ्य है। रहै तौ संसार में है; परंतु संसार के दुख-सुख ताकौं लगत नहीं हैं। सो कहत हैं—**खाखसार** जो कहियै—**खाख** जो श्रीवृंदावन की रज है, ता करिकैं अपने तन कौं भूषित किये है; ताही रज कौं सेवन करत रहै है; ऐसौ जो रसिका है; सो है तौ जदपि दुनिया के बीच में; परंतु दुनिया की आफत जाकौं लगत नाहीं। दुनिया में रहत है; दुनिया की आफत लगत नाहीं; तापै दृष्टांत—**जिमि** कहियै—जैसैं **आईन** कहियै—दरपन, **आबखानैं** कहियै—जलस्थान; जल के भाजन जा मंदिर में भरे धरे हैं; ताही भाजननि के बीच में दरपन धर्‌यौ है। प्रथम तौ जल-भाजन न्यारेई हैं; दरपन न्यारौई है। कदाचित दरपन कौं जल आइ लगै; तौ दरपन तौ खाखसार है। सिंदूरादिक के मंजन तैं निर्मल होहै। ताकी झलक नाहीं जात है। और दृष्टांत –

दोहा—

दुख सुख ज्ञानी नरनि कौं, यौं व्यापत मन माहिं।
गिरि सागर ज्यौं मुकुर में, भार भीजियतु नाहिं।।१।।
व्यास रसिक जन जगत में, जैसैं द्रुम पर चंद।
सत्य चित्त आनंदमय, भेद न जानत मंद।।२।।
व्यास चंद आकास में, जल में आभा मंद।
जलज मंद यह कहत हैं, जो हम सौ यह चंद।।३।।

साधू या संसार में, ज्यौं कमला जल माहिं।
सदा सरवदा संग रहैं, जल परसत है नाहिं।।४।।११४।।

फिरत कहा दर-बदर[1] मुलकहा गिरि गुहादि दुख दैनी।
सहसधार अरु पंचागिनि पुनि तपचरिया अति पैनी।।
सहचरिसरन कलाम आसिकाँ न्हान किया करि बैनी।
इस्क रंग बिन मिलै न मोहन बिन मोहन सुख सैनी।।११५।।

मद गजेन्द्र जिमि छक्यौ रहै नित नव रंग लाग लगी है।
रूपरासि महबूब खूब सौं मन-मनसात पगी है।।
सहचरिसरन राजरस रस्ताँ तातें मति न डगी है।
रसिक आसिकन की निज जाके उर वर कृपा खगी है।।११६।।

द्वै मंजन कौ अर्थ प्रगट ही है।।११५।।११६।।

मृदु-पद-पंकज पर अलि-आवलि नाभी-सर तिमि देखौ।
कंठ विभूषन मनिमय माला सहचरिसरन विसेखौ।।
मुख-चन्द्रम चकोर वर माथे बरहिचन्द[2] छबि रेखौ।
उत महबूब सु अंग इतै नित आसिकान दृग देखौ।।११७।।

मृदु पद इति—मृदु पद-पंकज जे युगल हैं; तिन पर रसिक-आसिकन के दृग अलि-आवलि हैं। तात्पर्य यह, चरन-कमलनि कौं विलोकत हैं। चरन संबंध करिकैं नखावलिन कौं, गुलफ इत्यादिकनि कौं विलोकत हैं। नाभी सर जो है, ता विषै रसिक-आसिकनि के दृग **तिमि** कहियै—मीन ह्वैकैं बसै हैं। नाभि सम्बंध करिकैं उदर, त्रिवली, रोमराजी इत्यादि विलोकत हैं। कंठ जो है, ता विषैं रसिक-आसिकन के दृग मनिमय माला ह्वै कैं विभूषित हैं। तात्पर्य यह, कंठ कौं विलोकत हैं। कंठ संबंध करिकैं उर, भुज इत्यादि विलोकत हैं। सहचरिसरन

---

१. द्वार-द्वार २. मोर पंख।

विसेखौ। **मुख-चंद्रम** कहियै—चंद्रमावत मुख; ताहि रसिक-आसिकनि के दृग चकोर है कैं विलोकत हैं। मुख विषैं नैंन, नासिका, भौंह, चिबुक इत्यादि। **वर माथे** पर रसिकनि के दृग **बरहि** कहियै—मयूर-चंद्र है सोभित हैं। तात्पर्य यह, मस्तक कौं विलोकत हैं। मस्तक सम्बंध करिकैं सिखान, केस इत्यादि विलोकत हैं। या मंज में उतै तौ महबूब के अंगनि कौ वर्नन कियौ है और इतै तौ आसिकनि के दृगनि की महबूब-अंग-अंग प्रति आसक्ति कौ वर्नन कियौ है। तात्पर्य यह, प्यारे कौं आसिक-रसिक जन नख तें सिख पर्यंत लौं विलोकत हैं। अपने दृगनि करिकैं महबूब कौं भूषित कियौ है।।११७।।

सरस रंग दरियाव महासुख मछरी हुवा चाहिये।
बदन-चन्द्रमा छबि-चकोर वर आसिक हुवा चाहिये।।
सहचरिसरन रसिक जलदा तन चातिक हुवा चाहिये।
मनमोहन दा हुस्न-बाग बिच बुल-बुल हुवा चाहिये।।११८।।

दुख जिनि देहु गरीबौं के हिय हासिल[1] मुराद[2] होगा।
लेते रहौ मिहर सन्तौं की हासिल मुराद होगा।।
उर विस्वास राखि मुरसिद[3] का हासिल मुराद होगा।
सहचरिसरन याद कर हरि की हासिल मुराद होगा।।११९।।

मादर[4] पिदर[5] बिरादर[6] नादर[7] बिना काम के मानैं।
सुख से गुजर होत कै दुख से दिल उनही का जानैं।।
कै जानै खुद बखुद पीर[8] तू सहचरिसरन बखानैं।
क्या बलाय तेरे चस्मौं में आसिक किए दिवानैं।।१२०।।

तीन मंजन कौ अर्थ प्रगट ही है।।११८।।११९।।१२०।।

---

१. प्राप्त २. अभीष्ट, कामना ३. मार्गदर्शक ४. माता ५. पिता ६. भाई ७.श्रेष्ठ, असाधारण ८. दुःख, पीड़ा।

सुख संतोष सु है फकीर कोउ बेदिल[1] कधी न जातैं।
चुप हो रहा सकल आलम[2] से आसिकान से बातैं।।
अइ[⊛] नटनागर अइ* बाँकेवर जिकर लगी दिन-रातैं।
सहचरिसरन सु इस्क-बोस्ताँ[3] चंचरीक[4] जन तातैं।।१२१।।

सहचरिसरन कहत हैं—आसिक-रसिक फकीर जे हैं, ते **इस्कबोस्ताँ**—इस्क जो है, सोई भयौ **बोइ**—सौगंध, ताकौ बाग है। ताही तैं जन जे हैं, ते इस्क-सौगंध के लोभ तें **चंचरीक** कहियै—मधुप होइ रहे हैं। तीन चरन कौ अर्थ प्रगट ही है।।१२१।।

स्वाति-बूँद बरसत वर-वारिद श्रीगुरु मन्त्र सुनावै।
सकुच मीन पुनि परस होत जिहिं रसिक दया दुलरावै।।
सहचरिसरन परत मुक्ताहल विसद मोद उपजावै।
छबिकर छीप हृदय नर-नागर निरखि नीर-निधि भावै।।१२२।।

स्वाति बूँद इति—छीपनि कौं अरु नर-नागरनि के हृदयनि कौं सम जानौ। छीपनि तैं मुक्ता उत्पन्न होत हैं, नर-नागरनि के हृदयनि तैं मोद उत्पन्न होत है; परंतु छीपनि तैं मुक्ता कैसैं उत्पन्न होत हैं; नर-नागरनि के हृदयनि तैं मोद उत्पन्न कैसैं होत है; सो वर्नन करत हैं। पूर्व पीठिका इति। **वारिद** कहियै—मेघ, **वर** कहियै—श्रेष्ठ जो स्वाति बूँद हैं, तिनकौं बरसत है; ते बूँद छीपनि में प्रापित होति हैं। ऐसैं ही श्रीगुरु मंत्रोपदेस करत हैं; तिनके अछिर नर-नागरनि के हृदयनि में प्रापित होत हैं। स्वाति बूँद बरसै; छीपनि में प्रापित हू होहिं; परंतु मुक्ता तौ उत्पन्न न होहिं। प्रश्न—तौ कौन भाँति उत्पन्न होहिं ? उत्तर—समुद्र के विषैं जे मीन हैं, तिनमें एक और जाति मीन की है; तिनकौ सकुच मीन नाम है। जाही-जाही छीप कौं सकुच मीन कौ परस होत है, ताही-ताही छीप सौं मुक्ता उत्पन्न होत हैं। ऐसैंही

१. हृदयहीन, निराश २. संसार ३. उद्यान, बाग ४. भौंरा। ⊛ पाठा॰—ऐ * ऐ।

नर-नागरनि के हृदयनि में श्रीगुरु कौ मंत्रोपदेस, ताके अछिर हू प्रापित होहिं; परंतु मोद कोई उत्पन्न न होहिं। प्रश्न–तौ मोद कौन भाँति सौं उत्पन्न होइ? उत्तर–जब रसिकनि की **दया** कहियै–कृपा; जाकौं दुलरावै। तात्पर्य यह, जाही-जाही नर-नागर के हृदय कौं कृपा परस करै, ताही-ताही हृदय में मोद उत्पन्न होत है। सहचरिसरन कहत हैं–छीपनि तैं तौ मुक्ताहल होत हैं; नर-नागरनि के हृदयनि तें मोद उत्पन्न होत है। छीपैं तौ नीरनिधि में रहत हैं, नर-नागरनि के हृदय भाव में रहत हैं।।१२२।।

जाना सकल जहान[१] ख्वाब[२] जिन नहिं विचार कछु तन में।
श्रुति सुखसार बिहार बिहारी नक्स[३] हो रहा मन में।।
आफताब[४] जनु तेज मध्यवर अस कोई बिरला जन में।
आसिक रसिक निगाह खाक तें होत कीमिया[५] छन में।।१२३।।

सोरठा–

मोहन छबि चक्कान, मनहुँ अजब सबजी सरस।
भूलौ भव मकान*, जाहि दई हरिदासजू।।१२४।।

सहचरिसरन किताबौं में इक हुमा बिहंग कहा है।
आसिक रसिक जहाँ बिच त्यौंही तिनतें लेहु लहा है।।
जा सिर परत छाँहवर ताकी साबित[६] होत महा है।**
इन[⊛] अनुकम्पा करत निकरपति[७] नहिं सन्देह रहा है।। १२५।।

या मंजनि कौ अर्थ प्रगट ही है।।१२३।।१२४।।

अरिल्ल–

बेदरदाँ उस्ताद[८] महा खिलवार हैं।
तापर जादूगराँ दगादातार हैं।।

१. संसार २. स्वप्न ३. चित्रित, अंकित ४. सूर्य ५. रसायन ६. सिद्ध, स्थिर ७. सर्वेश
* पाठा०–मक्कान ** साहिब ⊛ ऐ ८. गुरु, शिक्षक।

मोहन के अस नैन प्रगट छबि देखिये।
आलिसरन उपमान दुरद[1] वर लेखिये।।१२६।।

बेदरदाँ इति—बेदरदीन के जे समूह, तिनके जे कोऊ उस्ताद, तिनहू के खिलावनवारे आपुके नैंन हैं; तात्पर्य कहिवे कौ यह, बेदरदीन के उस्तादनि तैं जो कछु बेदरदी बचि रहीं, **खिलवार** कहियै—तिनके सिखावनवारे हैं।

दोहा — **बधिक कसाईनि तैं बचीं, जे बेदरदी ऐंन।**
विधि मरिदीनी ते सबै, बिच महबूबा नैंन।।

ऐसे आपुन के नैंन हैं। पुनः जादूगर हैं, पुनः दगा के दैनवारे हैं। हे मोहन! निरंतर तौ ऐसे-ऐसे अनेक गुननि सौं भरे हैं। प्रगट में अमित छबि देखियतु है। तात्पर्य यह, प्रगट छबि दरसाइकैं आसिक-रसिकनि कौं बस करिकैं; पुनः प्रथम चरन में कहे जे गुन; तिनकौं प्रगट करत हैं। **आलिसरन** नाम करिकैं सहचरिसरन जानि लीजियै; सो कहत—कैं आसिक-रसिकजन कहैं हैं—हे मनमोहन! आपुके जे नैंन हैं, तेई तौ उपमेय हैं; तिनकौं **उपमान** कहियै—उपमा तें **दुरद वर** कहियै—गजराज हैं। तात्पर्य यह, गजराज की सी छकनि है। अथवा जैसैं गज के दसन देखत के और हैं; निरंतर के और हैं; ऐसैं ही प्रगट में तौ छबि समूह है; निरंतर में बेदरदी कौं आदि लैकैं अमित गुन हैं। कहौ आसिक-रसिकनि कौ निबाह कैसै होहिं?।।१२६।।

अरिल्ल— **मोतिन की वरमाल स्याम उर में बसी।**
देवधुनी[2] की धार मनहुँ जमुना धसी*।।
नाभि चहौं❀[3] चहुँपास रोमराजी[4] प्रभा।
मानहुँ कमल समीप आइ अलि की सभा।।१२७।।

---

१. हाथी २. गंगा ३. चार—गति, रीति, सेवक, कारागार ४. रोमपंक्ति * पाठा॰—लसी
❀ चहूँ।

चखन रूप चकचौंधी में चित मारी लात* खरी है।
अकसमात यह अलक आइकैं मन-जंजीर परी है।।
मृदु मुसिक्यान मूठ उर घाली मोहन मोह भरी है।
सहचरिसरन रसिक आसिक ने क्या तकसीर[1] करी है।।१२८।।

याकौ अर्थ प्रगट ही है।।१२७।।१२८।।

बार-बार मैं बेसुमार[2] मैं बारहि बार करै हैं।
सहचरिसरन औगुनी औगुन हरि काहू न हरै हैं।।
आधि ब्याधि अपराधनि हनियै अरि अरितानि अरे हैं।**
नैन बान बरुनीवर करवत चारु चलाइ खरे हैं।।१२६।।

बार-बार इति—हरि सौं विनय कीजियतु हैं। हे हरि ! बार-बार कहियै—मेरे रोम-रोम प्रति औगुन भरे हैं; **बेसुमार** कहियै—तिनकी गनना नहीं है। ते मैंने बार ही बार करे हैं अरु करत हौं अरु करिवे कौ विचार करत रहत हौं; ऐसौ जो मैं सहचरिसरन औगुनी हौं; ताके जे औगुन; ते हैं। हरि ! काहू नै न हरे; तिनकौं आपु हनियै। पुनः **आधि** कहियै—मानसी विथा कौं; पुनः **ब्याधि** कहियै—तन की विथा, पुनः अपराधनि कौं,.पुनः अरि जे हैं, ते। **अरि** कहियै—सत्रुता, तिन करिकैं अरे हैं। तिन सत्रुतानि करिकैं इनकौं-सबकौं आपु हनियै। प्रश्न—पूर्व तुमनैं कही, औगुनादि लैकैं अरितानि, इन सब कौं हनियै; यह बात हमसौं कहत; सो हम सस्त्र तौ लिये नाहीं हैं; काहे सौं हनैं ? उत्तर—महाराज ! आपके नैंन हैं, तेई तौ बान हैं अरु आपके नैंन की वरबरुनीं हैं; तेई भईं **करवत** कहियै—आरा, **चारु** कहियै—सुंदर, **खरे** कहियै—तीच्छन; तिनकौं औगुनादि के ऊपर चलाइकैं, या विधि इनकौं-सबकौं हनियै।।१२६।।

---

१. अपराध, दोष २. अनगिनत * पाठ०—स्वास ** हरि।

कहि-कहि वचन बिहँसि माथे पर कर कौं कबै धरौगे।
करुनाकर चितचोर कहावत चित कौं कबै हरौगे।।
हरषि हमारी आँखिन में सुख सुषमा कबै भरौगे।
सहचरिसरन रसिक आसिक मोहिं मोहन कबै करौगे।।१३०।।

नाभी-भ्रमर* चारु-छबि लहरैं गरज मुरलिका भावै।
बंकबिहारी नाम सलोना नेह नदी चलि आवै।।
रूप कहर[१] दरियाव परै दृग पैरि पार नहिं पावै।
मन-मलाह की क्या कुदरत[२] है पकरि बाहिरैं लावै।।१३१।।

सरल सुभाव, सील, संतोषी, जीव दया चितचारी।
काम, क्रोध, लोभादि बिदा करि समुझि बूझि अवतारी।।
ज्ञान, भक्ति, वैराग, विमलता दसधा पर अनुसारी।
सहचरिसरन राखि उर सदगुन जिमि सुबास फुलवारी।।१३२।।

धीरज, धर्म, विवेक, क्षमायुत भजन जनन दुखहारी।
तजि अनीति मन सेइ संतजन मानि दीनता भारी।।
मीठे वचन बोलि सुभ साँचे कै चुप आनन्दकारी।
कीरति विजय विभूति मिलै श्रीहरि गुरु कृपा अपारी।।१३३।।

पाहि[३] पाहि उर अन्तर्यामी हरन अमंगल ही के।
सहचरिसरन विनय सुनि कीजै वारिधि कृपा अमी[४] के।।
दुस्तर[५] दुसह दुखद अविचारू विफल होहिं खल जी के।
जिमि सिसुपाल कुचाली मन** के परे मनोरथ फीके।।१३४।।

क्षितिपति लेत मोल पसु पक्षिन इहि विधि कबै लहौगे?
रवि-दुहिता[६] सुर-सरित[७] भूमि जिमि रस उर कबै बहौगे?

---

१. आपदा २. सामर्थ्य, शक्ति ३. रक्षा करो ४. अमृत ५. पार करने में कठिन ६. यमुना ७. गंगा *पाठा.– भमर **जी।

पकरत भृंग कीट कौं जैसें तैसें कबै गहौगे?
सहचरिसरन मराल मानसर मन इमि कबै रहौगे?।।१३५।।

रूप अनूपम सरस मसाले रिस मिरचैं गुनखानी।
मृदु मुसिक्यानि मिली वर सक्कर छबि स्यामा पय छानी।।
सहचरिसरन मदन यह कीन्हीं रसिकनि कौं सुखदानी।
प्रभा स्याम की सिद्धबुटीमय छकनि छकत मनमानी।।१३६।।

सात मंजनि कौ अर्थ प्रगट ही है।।१३०।।१३१।।१३२।।१३३।।
।।१३४।।१३५।।१३६।।

वर महान रँगरेज रसिकमनि नमनि रँगाई दैनी।
गहिरे बोर लगावै मन पट आवै रंग रमैनी[१]।।
अनमिट चटक निपट जनु मटकनि पर परमा मृगनैनी।
सहचरिसरन सरस वृन्दावन गौर स्याम रंगरैनी[२]।।१३७।।

वर महान इति—वर कहियै—श्रेष्ठ जो कोउ महान, तेई तौ भए रँगरेज। कैसे हैं वे ? रसिकनि की मुकुटमनि हैं। तिनकौं **नमनि** कहियै—नम्रता, सोई भई रँगाई; सो तिनकौं दैनी योग्य है। पुनि मन-पट जो है, ताहि दैनौं; कहि दैनौ कै याहि रंग देहु। तब वे मन-पट कौं लैकैं रंग में गहिरे बोर लगावैं; तब मन-पट पर **रमैनी** कहियै—रमनीय गहिरे गौर-स्याम रंग आवैं। रंगे तैं आए जे मन-पट पर जुगल रंग; तिन रंगनि की जो चटक, सो **अनमिट** कहियै—कबहूँ न मिटै; ऐसौ चटक है। ता चटक की उतप्रेच्छा देत हैं—**पर** कहियै—विसेस जो **परमा** कहियै—सोभा, सोई भई मृगनैंनी नायिका, ताकी **जनु** कहियै—मानौं, **निपट** कहियै—अत्यंत मटकनि है। प्रश्न—बसन पै रंग तौ रैनी में बोरे तैं आवै है; यहाँ रैनी कौन सी है ? उत्तर—सहचरिसरन

१. रमणीक २. रंग देने वाली वस्तु, रँगरेज की नाँद।

आसिक-रसिक जन कहत हैं—सरस जो वृन्दावन है, सोई गौर-स्याम रंग की रैनी है। प्रश्न—बिबि रंग की रैनी एक ही कैसैं बनैं ? उत्तर—इही यहाँ अचिरज है। गौर-स्याम जे बिबि रंग; तिनकी वृन्दावन एक ही रैनी है।।१३७।।

सटकारी[1] लटकारी कारी चिकन चारु चितहरनी।
बदन अनूप रूप धन विचरत गरब गाररू[2]-चरनी।।
नवल अलक नागिनि अलबेली अदुष विदुष वर वरनी।
सहचरिसरन रसिक सब साँची निज मन डसत निडरनी।।१३८।।

मृदुल तल्प सुख सैन बदन-विधु मदन-सदन छबि छाई।
मिथुन जीभ नोंकैं नव नागिनि अलक भौंह बिच आई।।
सहचरिसरन रसिक आसिक यह मनहुँ सपक्ष बकाई।
बंदनीय वर-वृन्द ग्रसत मद हँसत उपम समुदाई।।१३९।।

अति अभिराम रोमराजी ऋजु[3] राजी स्याम सुरीतैं।
मुख मुसिक्यानि सिरोही[4] साँची दृग बिबि तुरी[5] खुरी तैं।।
आसिक रसिक बचै अब कैसे नटवर कला-छुरी तैं।
सहचरिसरन बाँक[6] बाँकी गति मदनानन्द पुरी तैं।।१४०।।

सहचरिसरन बसन सुखमामय आनंद भूषन जाके।
रूप अनूपम अंगराग लखि ललित लता बनिता के।।
विकसनि हँसनि सुमन-गुच्छा-मुख अलि ईक्षन[7] मधु छाके।
परसत रसिक स्याम कर-पल्लव फल-उरोज वर ढाँके।।१४१।।

चार मंजनि कौ अर्थ प्रगट ही है।।१३८।।१३९।।१४०।।१४१।।

---

१. लम्बी छड़ी सी २. गारुड़ी, साँप का विष उतारनेवाला ३. सरल, सीधी ४. तलवार ५. तुरंग, घोड़ा ६. टेड़ी छुरी, पैर का गहना ७. नेत्र।

मृदु मुसिक्यानि भौंह करि बाँकी कछुक टारि मुख सारी।
नवल नागरी वर सिंदूर कल कन्दुक पिय हिय मारी।।
सहचरिसरन अनूप रूप छबि सुखनिधि सनधि[1] विचारी।
जनु अनुरागमई कृत मुद्रा आसिक उर कर धारी।।१४२।।

मृदु मुसिक्यानि इति—फाग कौ समय पाइकैं स्यामसुंदर जू श्रीप्रिया जू सौं उमगिकैं फागु कौ सकल साहित्य लियैं फागु खेलिवे कौं आए। तिनकौं श्रीप्रिया जी नैं देखौ, रस भर्‌यौ मनमोहन मदनमत्त मतवारौ चलौ आवै है; यह जानिकैं श्रीप्रिया जी कैं महाउमंग भई; सो कहत हैं। पूर्व पीठिका इति। महामदनानंद रति-मतवारी श्रीप्रया जी लालजी कौं विलोकत मन तैं; कछुक मुख तैं सारी टारिकैं मृदु मुसिक्यानियुक्त भौंहैं बाँकी करि आनंदपूर्वक श्रीप्रिया जी नैं फागु खेलिवे कौ प्रारम्भ कियौ। नवल नागरी, तिन समूह; तिनकी मुकुटमनि श्रीप्रिया जी **वर** कहियै—श्रेष्ठ, तानै सिन्दूरमय **कल** कहियै—सुंदर **कंदुक** कहियै—गैंद, सौ अदापूर्वक प्रेम सहित पिय के हिय में मारी। प्रश्न—कैसौ है स्यामसुंदर, ताकें श्रीप्रिया जू नैं सिंदूरमय गैंद मारी है ? उत्तर—सहचरिसरन कहत हैं—सुख की निधि अनूप है रूप जाकौ; सुख की निधि अनूप है छबि जाकी; तेई भई **सनधि** कहियै—संधे; ऐसैं विचारी है। स्यामसुंदर मुकुटमनि, ताके उर अनूप रूप छबि में भयौ जो सिंदूरमय गैंद कौं अरुन चिह्न, ताकी उत्प्रेच्छा देत हैं—वह अरुन गैंद सिंदूर कौ चिह्न नहीं है। प्रश्न—तौ कहा है ? उत्तर—महाराजधिराज श्रीप्रियाजू स्वामिनी हैं। **प्रीति की रीति रंगीलौऊ जानैं। जदपि सकल लोक चूड़ामनि दीन अपनपौ मानैं।।** तानैं उर अनूप रूप छबि सनधिनि पर अनुरागमई **कृत** कहियै—करी है **मुद्रा** कहियै—छाप तानैं; ते वे सनधैं छाप करिकैं स्यामसुंदर कौ जो कोउ

१. सन्धि, मौका।

आसिक है; ताके उर कर में धारी। तात्पर्य यह श्रीलड़ैती जू नै हुकुम दियौ; अनूप रूप छबि सुख कौं विलसत है। या भाँति आसिक-रसिक कौं निर्भय करि दियौ।।१४२।।

अरिल्ल–

फल विमल हरिदास रसिक रस मूल है।
आलिसरन अलिसरन कृपा अनुकूल है।।
पान करत उर भरत प्रेम स्वछंद कौं।
वंस प्रसंसित सुलभ दुलभ मतिमन्द कौं।।१४३।।

फल विमल इति–सर्वोपर फल जो है, सो अरु सर्वोपर रसिक जे श्री स्वामी हरिदास जू जे हैं, ते; दोऊ जे हैं; तिनकौ वर्नन करत हैं। प्रश्न–फल कैसौ है ? उत्तर–फल जो है, सो तौ रस जो मकरंद है; ताकौ मूल है। श्रीस्वामी हरिदास जू रसिक जे हैं, ते रस कौ मूल हैं। रस यह पद श्लेष है। **अथ रस निरूपनं**। रस लक्षिन। जहाँ–

विभावन, अनुभावन, पुनि सात्त्विक अरु विभचारी।
इन सरसायौ प्याइ पूरन स्वादिक सो रस भारी।।
सोई रस द्वै विधि कौ कहियै । लौकिक और अलौकिक लहियै।।
जग में रस सो लौकिक । परमानंद अलौकिक।। इति।।

अलिसरन जो सखीसरन हैं, सो कहत है–**अलि** जो मधुप, सो फल के सरन होत संतै फल तापै कृपा करिकैं अनुकूल होहि है। अलिसरन **अलि** जो सखी, ताके भाव करिकैं जो कोऊ होहि है; तापै श्रीस्वामी हरिदास जू कृपा करिकैं अनुकूल होहिं हैं। अलि यह श्लेष पद है। अलिसरन जो मधुप है, सो तौ रस जो मकरंद है, ताकौ पान करिकैं; अलिसरन जो सखीभाव करिकैं युक्त है; सो रस जो आनंद है; ताकौं पान करिकैं स्वच्छंद है कैं प्रेम करिकैं उर में भरै है। याही

तें अलि जो मधुप; ताकौ वंस प्रसंसित है। ताकौ रस-मकरंद सुलभ है। मतिमंद जो पंछी हैं, तिनकौं मकरंद दुर्लभ है अरु अली जो सखीभाव, ता करिकैं युक्त हैं, तिनकौ कृपामई जो वंस है, सो प्रसंसित है; तिनकौं रस-आनंद सुलभ है। मतिमंद जो कोऊ पुरुष हैं, तिनकौं रस-आनंद दुर्लभ है।।१४३।।

मैन सैन कौतूहल कोतिल[1] सुरति-समर रंगरेलैं।
प्रमुद गयंद[2] रूप हद हौदा चढ़ि चलि दान[3] दलेलैं[4]।।
तनु छबि छटा अनेक नीलमनि जलज-हार हँसि मेलैं।
आलिसरन आली[5] आली जय पल पल्ले बिच झेलैं।।१४४।।

दोऊ जे प्रिया-प्रीतम हैं, सुरति-संग्राम के अर्थ अपनै-अपनै हाथीन पै सवार भये हैं; सो वर्नन करत हैं। पूर्व पीठिका इति। **मैन** जो काम, तिनकी है सैंना, जिनके संग में है। प्रश्न—काम तौ एक ही है, बहुत तौ रूप काम केहू हैं नाहीं; काम की सैंना कैसें कही? उत्तर—काम की जे अनंत कला हैं, ते वे काम रूपी हैं; तातैं काम-सैना कही। राजान की सवारी के आगैं कोतिल होहिं है। यहाँ कोतिल कहा है? प्रिया-प्रीतम के आगैं अनेक सुरति संबंधी कौतूहल होहिं हैं, तेई मानौं कोतिल हैं। प्रश्न—कैसे हैं वे कोतिल? उत्तर—सुरति रूपी जो **समर** कहियै—संग्राम, सोई भयौ समुद्र, ताके रंग की रेलैं हैं। प्रश्न—सवारी काहे की है? उत्तर—**प्रमुद** कहियै—आनंद, सोई तिनके गयंद हैं। रूप जे जिनके हैं, तेई तिनके हौदा हैं। तिनमें चढ़ि-चढ़िकैं सुरति-संग्राम के अर्थ चलिकैं ठाढ़े भए, दान दैवे में दलेल हैं। प्रश्न—यहाँ दान दैवे कौ प्रयोजन कहा? उत्तर—जब राजा संग्राम कौं चलैं हैं, तब जय के अर्थ दान दैहिं हैं। ऐसैंही प्रिया-प्रीतम राजा हैं। **वृन्दावन के राजा दोऊ स्याम राधिका रानी।** सो दोऊ परस्पर सुरति-संग्राम के अर्थ

१. उत्तम घोड़ा २. हाथी ३. चलिदान—मदजल ४. कड़ी मशक्कत ५. सुन्दर, श्रेष्ठ, सखी।

ठाढ़े भए हैं। अपनी-अपनी जय के अर्थ दान देत भए। कहा दान देत भए? उत्तर—स्यामसुंदर जे हैं, तिनके तन की जो स्याम छबि-छटा हैं, तेई भई अनेक नीलमनि, तिनके **हार** कहियै—समूह, तिनकौं हँसि-हँसिकैं मेलत भए। प्रिया जू के तन की जो छबि-छटा हैं; तेई भए मुक्ताहल, तिनके हार कहियै—समूह, तिनकौ हँसि-हँसिकैं मेलत भईं। प्रश्न—दान कौंन कौं देइ हैं? उत्तर—आलिसरन कहैं हैं—**आली** कहियै—सखीन कीं **आली** कहियै—पंगति, तिनकौं दान देहिं हैं। ते अपने-अपने पल रूपी पल्लेनि में झेलैं हैं। तात्पर्य कहिवे कौ यह, पलकनि में गौर-स्याम रूप कौं भरि-भरिकैं सकल आलीं आसीर्वाद देहिं हैं, कहैं हैं—हे महाराज हौ! तुम्हारी जय होइ, जय होइ।।१४४।।

अदय हृदय कल किलौ मदन मद मनमोहन मन फूले।
खंडित गंड अधर छबि मंडित पंडित सुरति अतूले।।
अविचल अचल मोरचा[1] दीन्हैं कुच-मंडल भय भूले।
समर वीर मंजीर[2] धीर चढ़ि कृत हल्ला भुज-मूले[3]।।१४५।।

सुरति, संग्राम की मंज हैं—तातैं तिलक नाहीं कियौ।।१४५।।

मीन पीन[4] सरसी[5] अथाह रस सुमति सुराह न थक्के।
इस्क सिपाही महिर बहादुर जुगल मजलसी[6] पक्के।।
रसिक आसिकौं के वरदोस्त फासिकानि[7] दिय धक्के।
आनंद अति गद्दी-नसीन[8] मन अस अनन्य जन तक्के।।१४६।।

या मंज कौ अर्थ प्रगट ही है।।१४६।।

---

१. युद्ध में सुरक्षित सामना २. नूपुर ३. कन्धे ४. स्थूल ५. सरोवर ६. सभासद, दरबारी ७. फँसे हुए, दुर्जन ८. गद्दी पर आसीन।

[मूल युग्म चंद्रोदय वर्णनम्]

पीन पयोधर अति उतंग वर परवत-सिखर सोहाती।
बाहु मृनाल[१] विसाल विलोचन दुखमोचन रसमाती।।
सुषमा सुखद सकल सीमंतिनि[२] तिनके हृदय बस्यौ तैं।
मान मन्दमति चाहत अबलगि तहँ तें नाहिं नस्यौ तैं।।१४७।।

पीन कहियै—पुष्ट, अति **उतंग** कहियै—अति ऊँचे, **वर** कहियै—श्रेष्ठ परवत की सिखरैं सुहाईं; तिनवत, ऐसे हैं पयोधर जिनके। प्रथम। बाहु हैं कोमल मृनालवत, **विसाल** कहियै—बड़े हैं विलोचन जिनके, **दुख के मोचन** कहियै—दुख के नास करनहारे, ऐसी नाइका हैं। पुनि कैसी हैं नाइका ? रसमाती हैं। दुतीय। पुनः कैसी हैं; **सीमंतिनी** सकल नाइका; तिनकी **सुषमा** कहियै—सोभा, सुख की दाता हैं। ऐसी जे नाइका हैं, हे मान ! तिनके हृदय में तू बस्यौ है। तृतीय। हे मान मंदमति ! तिन नाइकानि के हृदय तैं अबलगि नाहीं नस्यौ चाहत है। तात्पर्य यह, सुंदर तैंनैं पायौ जो स्थान है, तातैं अबलगि नाहीं गयौ चाहत है। चतुर्थ।।१४७।।

मुकुलित[३] प्रमुद कुमुद कल कलिका छकि निकसी अलि सैनी।
सुकर पसारि कृपान म्यान तें खैंचत निसिपति पैनी।।
सहचरिसरन आमरख[४] लाली नायकानि अनुकूली।
अजहूँ लौं किनि भागि अभागी तकि तोपर प्रतिकूली।।१४८।।

मान प्रश्न करत है। मान कहे है—सुंदर जे तरुनी हैं, तिनके स्थान—हृदय-स्थान मैंने पाए हैं। तुम कहौ हौ, ऐसे स्थाननि कौं तू अब-लगि नाहीं छोड़ै है; सो ऐसौ मोकौं कहा डर है, ऐसे स्थाननि कौं छोड़ि देहुँ ? उत्तर—चंद्रमा नैं तेरे ऊपर कोप करिकैं तेरे मारिवे कौं म्यान

---

१. कमलनाल २. सौभाग्यवती ३. खिली हुई ४. अमर्ष, ईर्ष्याजन्य मान।

तें तरवारि खैंची है। तातैं तू सीघ्र ही स्थान छोड़ि दै। प्रश्न—म्यान कहा ? तरवारि कहा ? उत्तर—**मुकुलित** कहियै—फूली **प्रमुद** कहियै—अत्यंत आनंदित, **कुमुद** कहियै—कमोदिनी, ताकी **कलिका** कहियै—कली, तातैं मकरंद सौं छकिकैं **अलि** कहियै—भौंरा, तिनकी **सैंनी** कहियै—पंगति, सो निकसी। सो वह अलि-श्रेनी मति जानौं; कमोदिनी फूली है, ताहि कमोदिनी मति जानौं। पंचम। तौ कहा हैं; सो कहत हैं—हे मान ! निसिपति जो चंद्रमा है, तानै तोपर कोप करिकैं अपनी जो **सुकर** कहियै—सुंदर किरनैं, तेई भईं **कर** कहियै—हाथ। कर श्लेष हैं; तिनकौं पसारि करिकैं अलि-श्रेनी रूपी जो **कृपान** कहियै—तरवारि पैंनी, सो कमोदिनी रूपी म्यान तैं खैंचत हैं तेरे मारिवे कौं। सष्टम। सहचरिसरन कहत हैं—**आमरख** कहियै—क्रोध, ताकी है लाली जा विषैं; सो वह लाली नाइकानि कौं तौ अनुकूल है। सप्तम। तातैं हे अभागी मान ! अजहूँ लौं तू क्यौं नहीं भागै है। **तकि** कहियै—देखि तू, कोप की लाली करिकैं चंद्रमा तोपर प्रतिकूल है। तातैं हे मान ! सीमंतिनीनि के हृदय रूपी स्थान, तिनकौं तू छोड़ि दै, नातर चंद्रमा तोकौं मारैगौ, मारिहै।।१४८।।

प्रावृट[1] प्रगट सरस रस बरसत सुरति सूर रंगरासी।
आगम आमनाय[2] कौ आनंद बिहंग प्रेम तरु वासी।।
रसिकसिरोमनि जय हरिदासी उर पाथोधि[3] विलासी।
सहचरिसरन स्याम स्यामा भजि जन मन मंजु विकासी।।१४६।।

प्रश्न—स्याम-स्यामा कै ? उत्तर—स्याम-स्यामा जे हैं, तेई भए **प्रावट** कहियै—पावस, सो प्रगट सरस रस बरसत हैं। पुनः सुरति-संग्राम में सूरवीर हैं। पुनः **आगम** कहियै—सास्त्र, **आमनाय** कहियै—वेद; ताकौ स्यामा-स्याम आनंद हैं। पुनः प्रेम तरु के वासी बिहंग हैं। पुनः

१. वर्षा २. परम्परा प्राप्त शास्त्र ३. समुद्र।

स्याम- स्यामा जे हैं, तेई रसिक-सिरोमनि श्रीहरिदासी कौ जो उर **पाथोधि** क़हियै—समुद्र, ताके विलासी हैं। सहचरिसरन कहत हैं—ऐसे जे स्याम- स्यामा हैं, तिनकौं भजि। कैसें हैं स्याम-स्यामा; जन जे हैं, तिनके मन जे हैं मंजु; तिनके विकासी हैं।।१४६।।

[मंजावलि-स्तुति]

कवित्त—

मृदु मकरन्द राग आनंद पराग मित्र
विमल-विराग रति परिमल[1] धीर है।
अरथ अमोल मुकताली त्यौं कलोल भाव
सुवरन-घाट द्वै अतोल छबि-नीर है।।
रसिक रसाल मन मधुप मरालनि की
मीनधी[2] विसालनि की तामें अति भीर है।
सरसमंजावली कौ कियौ है तिलक मंजु
मानहुँ कंजावली कौ मानस गंभीर है।।

।। इति श्रीसरसमंजावली संपूर्णम्।।

श्री टटियास्थान की सम्वत् १६५६ की प्रति सों साभार प्राप्त।।
।।श्रीकुंजबिहारी श्रीहरिदास।।

---

१. सुगन्ध २. बुद्धि रूपी मछली।

श्रीमन्नित्यनिकुञ्जविहारिणे नमः।

श्रीस्वामी हरिदासो विजयतेतराम्।।

अथ गुलजार-चमन लिख्यते।

समझत ही सब दुख दूर करै गम[1] से पावै विश्राम अमन[2]।
फिर इश्क मजाज[3]हकीकी[4] का दिल सेती परदा होय दमन।।
सुर नर किन्नर की कौन गिनै देखें प्रसन्न ह्वै रमा रमन।
इस हुस्न बगीचे का बूटा[5] है शीतल का गुलज़ार[6] चमन[7]।।१।।

वरणन कर चरण बिहारी के जे घर उपमा की भीरों के।
अँगुली दल दाड़िम[8] सुमनकली नख प्रभापुंज छबि नीरों[9] के।।
दिल बिस्मिल[10]पड़े तड़पते हैं अब तक चम्पक दल चीरों के।
दमकें दिनकर के श्वाले[11] से नग हीरेनुमा जंजीरों के।।२।।

पंकज पर बिजली लिपट रही दिल देखें धरत न धीरें हैं।
नौ रतन जड़ाऊ की बेलें बिधि रची तामरस[12] तीरें हैं।।
कुन्दन की ओप दमक ऐसी मनमथ के मन को चीरें हैं।
या लाल बिहारी के पंकज पद हीरेनुमा जंजीरें हैं।।३।।

माणिक के चौके चुन्नी के छबि छद[13] गुलाब के मात पड़े।
कै ललित नगीने मिरजाँ[14] के लगते हैं ये उपमान कड़े।।
दिनकर की किरणें मन्द लगें लखि जिनको उड़गण जात गड़े।
नख लाल बिहारी के पंकज दल उदै शरद के शशी चड़े।।४।।

१.शोक, चिन्ता २. शान्ति ३. सांसारिक प्रेम ४. ईश्वरीय प्रेम ५. पौधा ६. खिला हुआ ७. बाग ८. अनार ९. ओप, पानिप १०. घायल ११. आग की लपट (यहाँ सूर्य-किरण) १२ कमल, सोना १३. दल, पंखुड़ी १४. मूँगा।

हैं कोमल अरुण गुलाब सुमन लखि जिन्हें देख ललचाय सदाँ।
नख नग से दमकें जड़े हुए मुक्ताहल की छबि छाय सदाँ।।
कविता कहि कैसे वरण सकै उपमा सब देखि लजाय सदाँ।
वे वारिज चरण बिहारी के शीतल पर रहौ सहाय सदाँ।।५।।

सेवैं सनकादिक पन्नगारि[१] अज ईश हिये व्रतधारी के।
हैं कोमल अरुण गुलाब सुमन छबि राजत शोभा भारी के।।
मेरे उर बीच समाय रहे वे कुंज केलि संचारी के।
अघ[२] हरण कलुष[३]के नास करण वारिजपद लालबिहारी के।।६।।

नख शरद चन्द्र घन तिमिरहरण अँगुरी चम्पक दल धारें सी।
कै पंचबाण[४] के तरकस की ये पाँचौं कला सुधारें सी।।
दाड़िम दल सुमनकली सुन्दर उपमा कवि सहज विचारें सी।
गुल मदनबाण आनन्दमई विधि घर पर बन्दनवारें सी।।७।।

पंकज पर वीरवधू[५] बैठी उपमा लखि हो जा कुन्द[६] कहीं।
कै शरद कमल दल पर विद्रुम[७] देख छुटै दुख द्वन्द कहीं।।
पंकज दल ऊपर चुन्नी सी वरणें मति रहु मुख मुन्द कहीं।
कुन्दन पर माणिक जड़े हुए जानी मिहँदी के बुन्द कहीं।।८।।

नख शरद चन्द्र मिहँदी कोरें कुन्दन के बाग सुहाये से।
अघ हरण तिमिर के नास करण मेरे उर बीच समाये से।।
नौ रतन जड़ी जंजीर झलक एड़ी गुलाब दल छाये से।
मखमल जरदोजी[८] काम कोश छबि चरण चूमने आये से।।९।।

---

१. गरुड़ २. पाप ३. दोष ४. कामदेव ५. वीरबहूटी (लाल रंग का कीड़ा) ६. भौंथरा, मन्द ७.मूँगा (लाल रंग का) ८.जरी के काम वाला।

माणिक के चौके जड़े हुए बिद्रुम रँग जरद[१] जसी से हैं।
छबि छद गुलाब के मात पड़े उर कंटक दरद कसीसे[२] हैं।।
तारागण मोती अस्त बेध जग राखें ललित असीसे हैं।
नख लाल बिहारी के शीतल क्या पूरण शरद शशी से हैं।।१०।।

माणिक मोती नभ तारागण दरसन कर फेर न भासे हैं।
चम्पक दल मंगल चढ़े हुए या दल गुलाब के खासे हैं।।
दिनकर की किरणें मन्द लगें दुति हीरे ओप दुजा[३] से हैं।
नख लाल बिहारी के शीतल क्या बाँके चन्द्रकला से हैं।।११।।

लखि ललित पींडुरी परम नरम चम्पक गुलाब दल भासी हैं।
या शमे कफूरी[४] का श्वाला दीपक की शिखा सुधा सी हैं।।
नरगिस[५] गुलदस्ते जड़े हुए उन्नत गुलशन के बासी हैं।
बिजली के पुंज शरद सुन्दर या सूधी चन्द्रकला सी हैं।।१२।।

घन जघन अनौखे जानी[६] के वरणन मुझसे नहिं होते हैं।
या साफ आइने चीनी से रम्भा लखि झमझम रोते हैं।।
मखमल मखतूल मुशज्जर[७] या खासे सब खाते गोते हैं।
या अमर बेलि दो बीच चमन के बीज दरद का बोते हैं।।१३।।

कै जान बाल की गिरह पड़ी खोले से होवे अमर[८] कहीं।
कैसी कल कंजन की दिलबर[९] तनुधारी बैठा समर कहीं।।
कै लीक भावई की सोहै नभ में निश्चै का झमर[*] कहीं।
उसको दो दीन दरस होवै जो देखै तेरी कमर कहीं।।१४।।

---

१. पीला २. खिंचाव ३. रात की अँधियारी ४. कपूर का दीपक ५. आँख के आकार का फूल ६. प्राणेश्वर ७. बेल बूटेदार ८. अम्र, समस्या ९. प्रियतम * पाठान्तर–झामर–झमर, सारहीन बात।

कुन्दन की कलियाँ रतन जड़ी रेशम से मिली बिराजैं हैं।
लटकन के मोती लहरदार घुँघुरू के गुच्छे साजैं हैं।।
अलबेली कटि पर बँधी हुई लखि मैन मनोरथ लाजैं हैं।
यह छुद्रघंटिका जानी की सुन मदन दुन्दभी बाजैं हैं।।१५।।

तन ललित तरंगन की भौंरी जल केलि नैन सरसी सी है।
कै नभ में यन्त्र कटोरी सी यह सुधा बुन्द बरसी सी है।।
बाँबी रोमावलि पन्नग[१] की उपमा नहिं और लसी सी है।
जानी की नाभि कहा वरणों कविता की होत हँसी सी है।।१६।।

मृदु माखन कुन्दन बरक[२] कहाँ जिसकी उपमा तू ल्यावेगा।
फिर कदली दल सा वरण-वरण हक नाहक लोग हँसावेगा।।
मखमल की गिल्म[३] मनोभवमय देखें मुनि मन ललचावेगा।
चौकोर चन्द्रमा किया हुआ फिरि उदर देख नहिं भावेगा।।१७।।

मंजन[४] करते में लखा कभी केशर दल कुन्दन साभा सा।
हिमकर सा वदन बरनते हैं लगता है निशिपति आभा सा।।
दरसत ही सब दुख दूर करै परसत गुलाब दल जाभा[५]सा।
तन लाल बिहारी का चमकै चीरे चम्पक का गाभा[६] सा।।१८।।

कुन्दन की घटित ओप दिलबर नौखाना चुन्नी चमकन दे।
मखतूल स्याम के बरण बरण छबि जोति जगमगी झमकन दे।।
नग लाल जवाहर जड़े हुए दिल चमक चौंध में रमकन दे।
गल बीच बिहारी लाला के जुगनू[७] का चौका दमकन दे।।१६।।

---

१. सर्प २. बिजली ३ गद्दा ४. मज्जन, स्नान ५. जाली ६. अंकुर ७. गले का लटकन।

चौकोर चन्द्रमा बीच किधौं यह इन्दुबधू की धार धसी।
प्यारे कुन्दन की पाटी पै चुन्नी गण चौकी चारु बसी।।
चम्पक दल मंगल चढ़े हुए सुनते ही दिलबर भौंह कसी।
कै लाल बिहारी के उर में क्या सुरख[1] बिद्रुमी माल बसी।।२०।।

गरदन सरोज की कली भली या शंखनाल सुखदाई है।
या शमे कफूरी का आभा छबि जगमगान दरसाई है।।
उपमा को ढूँढ़ रहे कविता यह बड़े जतन कर पाई है।
क्या मैन भूप की ए शीतल यह मीनेदार सुराई है।।२१।।

जिन्नत[2] गुलदस्तों के ऊपर वरणन नजरों की ठहरों का।
बिजली सी झलक तले चन्दा रस रूप सुधा की छहरों का।।
जगमगन पीक की लीक अरुण नग भ्रमें लाल रँग बहरों[3] का।
कण्ठी कुन्दन नग जड़ी हुई गुच्छा रेशम की लहरों का।।२२।।

तन शरदकाल के सरवर में युग कमल नाल की शोभा है।
या पारिजात की दो डालें शृंगारदान की गोभा है।।
चम्पक दल बेल बनाई सी जिन देखी जाने जोभा है।
भुज लाल बिहारी की शीतल लख चंचरीक[4] मन लोभा है।।२३।।

शीतल कुछ तुझे नजर आया तज यार दुःख अब द्वन्द कहीं।
वारिज की ललित पालकी में जानी यह बैठा चन्द कहीं।।
रेशम की घुण्डी तारागण मत कर दीजो दिल बन्द कहीं।
मालूम हुआ यह देखा है दिलबर का बाजूबन्द कहीं।।२४।।

१. गहरी लाल २. स्वर्ग ३. महासागर ४. भौंरा।

जो शशी नवग्रह एक रासि आवें तौ उपमा बनै कहीं।
तिसपर भी ऐसी जिलौ[१] नहीं बैठै तारागण घनें कहीं।।
रेशम मुकेश[२] के गुच्छों की लहरों को कविता भनें कहीं।
बाँधा है बाजूबन्द यार मति जा दिल को करि मनें कहीं।।२५।।

वरणन जो करौं कहीं दीखै उपमा सम और न होती से।
नग लाल जवाहर जड़े हुए जगमगैं दिवाकर जोती से ।।
कै कोमल अरुण सुधार धरैं ये सहज निशाकर गोती से।
नख लाल बिहारी के चमकैं छबि कमल दलन पर मोती से।।२६।।

नग चुन्नी चौके जड़े हुए चम्पक दल मंगल बैठे बन।
या पंचबाण ने तीरों की नोंकों पर राखे आछे मन[३]।।
नख लाल बिहारी के शीतल क्या शरद चन्द्रमा के से कन।
या विमल कंज की कलियों पर जानी चढ़ि आये तारागन।।२७।।

या पंचबाण की पंच कला कै पारिजात की कलियाँ हैं।
कै अरुण कली दल दाड़िम की तिनकी उपमा दलमलियाँ हैं।
कंचन सरोज के दल पाँचौं कै साँचे की सी ढलियाँ हैं।
इस लाल बिहारी की शीतल अँगुली चम्पे की कलियाँ हैं।।२८।।

कुछ गुस्से सेती भरा हुआ अरु बँधन अजायब मूठी की।
नाखून हिनाई[४] के भीजे उपमा जहरीली बूटी की।।
चम्पक दल बिजली चढ़ी हुई फिर नग जगमगन अनूठी की।
दिल भीतर फँसी निकलती है छबि हीरेनुमा अँगूठी की।।२९।।

---

१. आभा, प्रकाश २. सोने चाँदी के तार, बादला ३. मणि, मन ४. मेंहदी ।

गिरदाब[१] चन्द्र का गोल किया या मैन भूप की केली है।
या कमल कर्णिका गिर्द[२] पुंज यह भी उपमा सब पेली है।।
दिल समझ समझ चुप होता है कविता का दिलबर बेली है।
मो मन मतंग के फँसने को जानी की सुघर हथेली है।।३०।।

चम्पक दल कली अँगुलियों की यह भी उपमा सब जीरन की।
नख चमकें ललित सितारे से छबि हीन जलज अरु हीरन की।।
मिहँदी के रँगे हुए पोरे दुति पंचबाण के तीरन की।
झमकावै खड़ा हुआ पहुँची ले तेरी जरब[३] जँजीरन की।।३१।।

ऊदे[४] अरु सुरख चमेली की लागी चम्पे की चाह कहीं।
छबि सुधी गुँधी हुई दिलबर मिलती है इसकी थाह कहीं।।
जानी कर छरी छरहरी ले निकला था वह इस राह कहीं।
मालूम हुआ वह थी प्यारे मुझ जिगर लपेटी आह कहीं।।३२।।

क्या कमल नाल में बिजली की जानी उपमा से अड़े कहीं।
कुन्दन के शेरदहाँ[५] सुन्दर ऊपर जालिम नग जड़े कहीं।।
मालूम हुआ दिल मेरे में वे महा तौक[६] हो पड़े कहीं।
इस लाल बिहारी के शीतल देखे हैं तैंने कड़े कहीं।।३३।।

चम्पक दल सोन जुही नरगिस छबि सबके दिल को दरदनुमा।
अलबेली बँधन छबीले की लखि होजा रतिपति गरद[७]नुमा।।
तुर्रे की लहर कहर ऐसी उपमा कतरन को करदनुमा।
यह लाल बिहारी हाय आज सज आया फेंटा जरदनुमा।।३४।।

---

१. भँवर २. आसपास, गोलाई ३. चोट ४. हलका बादामी ५. शेर के से मुँह वाला ६. हँसुली, लौह बन्धन ७. धूल।

जब से वह फेंटा गुलेनार[१] रँगमगा सहज सज आया सा।
उपमा की मुझे तलाश रही उपमान न दिल में भाया सा।।
महिसुत[२]से सरस अरुण जेते लखि दाड़िम सुमन लजाया सा।
शीतल जिन देखा सो जानै मरगजा सुरख बल खाया-सा।।३५।।

ऊदी अलबेली अतर मली छबि देखत नयन समाय गई।
जानी बुड़हानपुरी[३] देखी आशिक के दिल को भाय गई।।
घायल सा पड़ा ससकता हूँ अब तक मुख से नहिं हाय गई।
इस लाल बिहारी की शीतल बेतरह बैजनी खाय गई।।३६।।

अलबेली बँधन छबीले की दिल देखैं लेत न ताबी[४] है।
इक पेचा पेच हजार करै समझे से बड़ी खराबी है।।
तिस पर कश्मीरी अतर मला मुख जगमगान महताबी[५] है।
कहु किसके दिलबर कतल करन को सिरपर सजी गुलाबी है।।३७।।

ये सहज रंग जी लेवैगा जो तुमने यह छबि साजी है।
दिल चाहै दिलबर सो करिये हम धरी शीश पर बाजी है।।
हम में तो एती ताब न थी लाचार तुम्हारी राजी है।
ये जख्म कल्ह के मिटे नहीं फिर तू सज आया प्याजी[६] है।।३८।।

क्या छबि सिकन्दरी[७] पन्ने की जो लख पावै रँग भरा कहीं।
तोते की गरदन गर्द करी शशिपूत[८] बराबर करा कहीं।।
यूसुफ[९] हजार जो हो आवै दल बाँध हुस्न का पड़ा कहीं।
क्या ताकत उनको ताब रहै जो देखै फेंटा हरा कहीं।।३९।।

१. अनार के फूल सा गहरा लाल २. मंगल ग्रह ३. बुरहानपुर की बँधी पाग ४. सामर्थ्य ५. चन्द्रमा जैसी ६. प्याज के रंगवाली ७. सबको जीतने वाला ८. बुध ग्रह ९. एक अति सुन्दर पैगम्बर।

ककरेजी[1] चीरा अतर मला बाँकों से बाँकी हाय चहन।
गुंचा सिर पटकि पुकार करें लखि जानी तेरा मीम[2] दहन।।
दिल टुकड़े टुकड़े हुआ फिरै जबसे देखी शमशेर[3] गहन।
बेदरद कलेजा चूर करै फिर हँसकर तेरी अजी कहन।।४०।।

रँगरेज काम मै-जाम[4] कहर भर डोबी रंग विलासी है।
चुनि चारु[5] चतुर चतुराई से फिरि अतर लपेटी खासी है।।
ये पड़े पेच दरपेच यार यह रूप बधिक की फाँसी है!
यह लाल बिहारी हाय आज शिर सजि आया अब्बासी[6] है।।४१।।

गरदन मयूर ने खम खाया उपमा अरु नहीं समानी की।
दे नील कसूँभी डोब दिया चुनि चारु चतुर अभिमानी की।।
फिर अतर लपेटी नागिन सी जहरीली बारहबानी[7] की।
आशिक का सीना चाट गई बेतरह बैजनी जानी की।।४२।।

चुनरी सुरंग रँग चीरे की उपमा कौ कविता हिले हुवे।
दिल में से लहर उठाते हैं उपमा के गुच्छे पिले हुवे।।
सुन लाल बिहारी बानी से कहते हैं सज्जन मिले हुवे।
मुख शरद चन्द्र पर अरुण घटा तिसमें तारागण खिले हुवे।।४३।।

पचरंग बाँधनू बँधा हुआ सुन्दर रस रूप छहरिया है।
कुछ इन्द्रधनुष सा उदै हुआ नौरतन प्रभा रँग भरिया है।।
आरी सी धारैं कहर करैं प्यारे रस रूप ठहरिया है।
कहु अब क्या बाकी ताब रहे जानी ने सजा लहरिया है।।४४।।

---

१. ऊदा, लाल, काला मिश्रित २. उर्दू के जैसे अक्षर की भाँति मुख ३. तलवार ४. शराब का प्याला ५. सुन्दर ६ गुलाबाँस ७. शुद्ध सोना।

चीरा सफेद बिन कहते ही बाँधा को कहना माने है।
तिसपर मोती गण गुच्छे से कुछ जरीतार उरझाने हैं।।
ज्यों सूरज किरण निकल आई तारागण भोर दिखाने हैं।
क्या पूरण शशिपर शरद जलद जिन देखा सोई जाने हैं।।४५।।

कुछ हमको तो यह खबर न थी यों छबि काढ़ेगा पली हुई।
अब लग उर पड़ी ससकती है मनमथ की बरछी हिली हुई।।
इकपेचा सजा अनोखे ने उपमा सब देखी दली हुई।
मुख शरद चन्द्र पर आज बँधी कंजई[१] अतर से मली हुई।।४६।।

खुसबोई उठी अंग सेती महकान चहूँ दिशि छाय गई।
मजमुआ[२] अतर कुछ फितने[३]का लगते ही हियें समाय गई।।
अलबेली बँधन छबीले की रसमसी चित्त को ताय गई।
यह हाय अगरई[४] जानी की दिल बीच दरद दरशाय गई।।४७।।

दो तरफ किनारी लगी हुई छबि बिजली कैसा रेला है।
क्या काम तिल्लई[५] चिल्ले[६] पर बूटे पर खेंचा बेला है।।
इक छड़ी फूल की लिये हुवे गुलशन में खड़ा अकेला है।
यह लाल बिहारी शरद चन्द्र शिर सजा दक्खनी सेला[७]है।।४८।।

मरकत[८]के तार सिवार[९]किधौं छबि के अपार घन धार उये[१०]।
कै मुख मयंक सों लिपट रहे पन्नग के छौना सुधा चुये।।
लहराते हुये सहज देखे मकरन्द सने सुकुमार सुये[११]।
छहराते छोहभरे[१२] छलकें छरहरे चीकने छवा[१३] छुये।।४६।।

---

१. खाकी रंग की २. ढेर, राशि ३. एक प्रकार का इत्र ४. कालापन लिये सुनहरा रंग ५. जरीदार ६. पगड़ी का कलाबत्तू युक्त छोर ७. रेशमी साफा ८. पन्ना ६. शैवाल (काई) १०. उगे ११. तोते १२. प्रेम भरे १३. एड़ी।

कारे सटकारे लहरदार छबिदार फनी के जाये से।
अरगजे अतर से मले हुए मुख ससी संग लपटाये से।।
मखतूल नीलमणि चारु चौंर उपमा को फिरें लजाये से।
कच कुंचित[१] लाल बिहारी के लहरात लहर बल खाये से।।५०।।

कारी सटकारी लहरदार दिल देखत लगदी अच्छी हैं।
दिया तेल फुलेल अतर आला[२] खुसबोई देबिच[३] मच्ची हैं।।
ये निकसे श्रोन बाँबई से उपमा सब इनकी कच्ची हैं।
जुल्फें[४] इस लाल बिहारी की क्या सिर्फ नाग दी बच्ची हैं।।५१।।

पंकज पर भौंरे मधुमाते शशि पर अहिपति की भीरैं हैं।
मखतूल नीलमणि चारु चौंर उपमा नहिं आवत नीरैं हैं।।
कै वरक[५] तिल्लई पर शीतल ये खैंच दईं तहरीरैं[६] हैं।
या लाल बिहारी के मुख पर क्या कहर जुल्फ जंजीरैं हैं।।५२।।

क्या शरद चन्द्र के पीछे आ नागिन ने लीनी ओटी है।
रेशम के गुच्छे जरीतार फिर अतर लपेटी मोटी है।।
मखतूल नीलमणि चंचरीक उपमा सब लोटक पोटी है।
इस लाल बिहारी की शीतल क्या चित चुरावन चोटी है।।५३।।

न्हा धो कर लम्बे साफ किये उपमा को पन्नग केते हैं।
चेहरे पै दोनों ओर खिले छबि जेब अजायब देते हैं।।
चोबा चहकारे[७] अतर मले छरहरे चीकने जेते हैं।
इस लाल बिहारी के शीतल क्या खिले बाल जी लेते हैं।।५४।।

---

१. घुँघराले २. श्रेष्ठ ३. देह में ४. लम्बे केश ५. पत्र, पुस्तक का पृष्ठ ६. लिखावट ७. चमकाए हुए।

छबि शरद कंज पर पुन्य पुंज मकरन्द मधुव्रत[1] पिए हुए।
मखतूल नीलमणि केकी की गरदन पर दावा दिये हुए।।
लहराती चोबा चारु चुनी जालिम कपोल को छिये हुए।
मुख शरद सुधाकर में बैठी अहि बाल कुंडली किये हुए।।५५।।

कारी सटकारी लहरदार छबिदार अतर सों पाली हैं।
मखतूल नीलमणि चंचरीक उपमा के जी में साली हैं।।
कर साफ अतर से मुखड़े पर बेतरह पेचवाँ डाली हैं।
इस लाल बिहारी की जुल्फें मति छेड़ नागनी काली हैं।।५६।।

बँबई कानों से कढ़ी हुई देखत ही चित में पैठी हैं।
मोती से निकलीं उलझ रहीं चुन्नी ले मुख में ऐंठी हैं।।
नीलम के तार सिवार किधौं छबि चंचरीक की भैंटी हैं।
जुल्फें इस लाल बिहारी की मणिदार नागिनी बैठी हैं।।५७।।

मखतूल नीलमणि चंचरीक सब की उपमा को पेलें हैं।
मुख शरद चन्द्र से लगी हुई क्या सुम्बुल[2] की सी बेलें हैं।।
लहराती हुई नजर आईं दिल में जहरों की रेलें हैं।
रुखसार[3] हेम के थालों पर दो चढ़ी नागनी खेलें हैं।।५८।।

मंजन करने को यमुना पर जानी उठ धाया भोर कहीं।
मुख शरद कंज सा खिला हुआ छूटीं जुल्फें दो ओर कहीं।।
दै पेच निचोड़ी लहर भरीं टपकैं मुक्ताहल कोर कहीं।
ज्यों चन्द्र नागिनें चूस गईं मधु चुवा पूँछ की ओर कहीं।।५९।।

---

१. भौंरे २. एक सुगन्धित घास ३. कपोल।

खुलते में कभी नहीं देखी इन की तूने छहरान कहीं।
पगड़ी के पेच पिटारी में मूँदी जालिम जहरान कहीं।।
फुंकारें कभी निकलते ही दिल में उपजै थहरान कहीं।
नागिन फिर पानी क्या माँगै देखै इनकी लहरान कहीं।।६०।।

मुख शरद चन्द्र पर सुम्बुल का गुच्छा खुशबोई बसा हुआ।
या अमल कमल पर ऐ दिलबर गन चंचरीक का धँसा हुआ।।
जानी यह किस से जाय कहें तुझ जुल्फ जाल का फँसा हुआ।
रस्सी से डरे अरे जालिम जो स्याह साँप का डसा हुआ।।६१।।

जल हुस्न के गहरे ताल कमल खिल रहत कि लपट सुधारत यों।
महकत खुशबू की लहर उठत अरु प्रेम पंथ गल डारत यों।।
ये लहलहात लग लच लौ कम्पत झमकिझमकि झझकारत यों।
यह मुख पर जुल्फैं क्यों जालिम मधु भरे भँवर गुंजारत यों।।६२।।

ज्यौं चित में पार निकल जावे ये नावक[1] का सा तीर कहीं।
फिर अतर लपेटी लहर भरी छबि जादू का सा वीर कहीं।।
कैसा ही चतुर चलाक चित्त रहता है कोई धीर कहीं।
जिसकी गरदन में पड़े जाय यह जानी जुल्फ जँजीर कहीं।।६३।।

लहराता हुआ कतरना सा या पंचबाण का कुर्रा[2] है।
दिल के पक्षी को ऐ जालिम यह मीर[3] शिकारी जुर्रा[4] है।।
जगमगे जरी के फूल लगे या सब उपमा का गुर्रा[5] है।
इस लाल बिहारी के शिर पर क्या मदनबाण का तुर्रा है।।६४।।

१. नली में रख कर चलाए जाने वाला तीर २. कोड़ा ३. प्रधान ४. नर बाज ५. उत्तम, दौज का चाँद

नग अरुण बीच में जड़ा हुआ उपमा को मंगल भटकै है।
गिरदाब चन्द्रमा चौंकि पड़े फिर समझ समझ सिर पटकै है।।
नौरतन जड़ाऊ काम हुआ अब लग सीने में खटकै है।
इस लाल बिहारी के शिर पर इक्के[१] का मोती लटकै है।।६५।।

है सुन्दर सहज सुघर अलबेला चलत अटपटी बान करै।
पलकों के तीर शान धरके कसि भौंहें खैंचि कमान करै।।
तुर्रे के तार छुटे मुख पर उपमा कवि कौन बखान करै।
लखि लाल बिहारी के मुख पर दिन की किरणें कुरबान करै।।६६।।

बरणन करने को क्या बरणों बरणों जो जेती बानी है।
ग्रह तीन उच्च के पड़े हुए जानी यह यूसुफ सानी है।।
शशिभवन[२] जीव[३] सफरी[४]ऽसुरगुरु[५] कन्या बुध ज्योतिस मानी है।
इस लाल बिहारी जानी की क्या अर्द्ध चन्द्र पेशानी[६] है।।६७।।

चुन अर्द्ध चन्द्रमा चूर किया देखे यह बाँका त्यौर[७] कहीं।
हीरे से जड़े हुए मोती सूझै है दिल कर गौर कहीं।।
दो धनुष दोज की कला उई फिर है उपमा को ठौर कहीं।
इस लाल बिहारी की शीतल दरसै अलबेली खौर कहीं।।६८।।

मुख पै रोरी का बिन्दु दिया लखि तरणि सारथी निन्दु हुआ।
कै प्रगटी भाल नाग मणि बाहर सहज प्रभा का सिन्धु हुआ।।
जो सहस धार हो शीतल कै यह शरद सुधा का सिन्धु चुआ।
कै मीनरथी[८] ने ये शीतल अलि सहित आय अरविन्द चुआ।।६९।।

---

१. एक गहना विशेष २. कर्क राशि ३. बृहस्पति ४. मीन राशि ५. शुक्र ६. ललाट ७. तेवर ८. कामदेव।

नग अरुण झलक छबि कुन्दन की लख लोटै महिसुत पड़ा हुआ।
गिरदाब लहर सों लखि हिमकर क्या कढ़े जिमी से अड़ा हुआ।।
जगमगन प्रभा नौ रतनन की है इन्द्रधनुष सा कड़ा हुआ।
मालूम हुआ जी लेवेगा जानी का बेंदा जड़ा हुआ।।७०।।

तुर्रे की हलन तरणि किरणें आनन शशि अमित बिशाला है।
मंगल सा बिन्दु सुरंग दिये बुध हरित मणी जग जाला है।।
केशर गुरु लटकन कवी हुआ तिल श्याम लसत शनि शाला है।
जुल्फैं अगु[1] शिखी[2] रूप थहरन लाला नवग्रह की माला है।।७१।।

बारिज पर मधुकर छौना की छबि ह्याँ भी उपमा निन्दी है।
या भौंह बनाते कलम बिन्दु विधि कर तें गिरी सुहिन्दी[3] है।।
या कमल कली पर नीलम की जगमगन रूप रस रिन्दी है।
या लाल बिहारी के मुख पर क्या सहज स्याह सी बिन्दी है।।७२।।

कै दो शृंगार की बेल चढ़ीं हिमकर ने लईं निसाँके हैं।
महताब जवाहर नीलम की बाँधी कारीगर ताके हैं।।
बारिज से भौंरे लगे हुए जिन देखी भौंह अदाँ के हैं।
कै दो शमशेर फिराई हैं या दृग चकेत[4] की बाँकें हैं।।७३।।

जानी भौंहों की तानों से हमको मत खैंचौ आरों पर।
दर्शन अलबेले बाँके का चलना खंजर की धारों पर।।
यह वार तुम्हारे होते हैं दिलबर दिल शेर हजारों पर।
कट जा मन सुफल मनोरथ हो काशी करवट के आरों पर।७४।।

---

१. राहु २. केतु ३. सुहावनी ४. चक्रधारी (पटेबाज)।

नासा चम्पे की कली भली शशि ईश धनुष ललचावक है।
दृग दो नटवों का बाँस गड़ा तिस बीच कला की धावक है।।
या खूबी की मर्याद बँधी दिलदार चित्त में चावक है।
जानी यह मुझे नजर आया या सर कटाक्ष की नावक है।।७५।।

चम्पक दल सुरगुरु उदै हुआ यह भी उपमा चित खटकन है।
कै शरद चन्द्र पर तारागण जानी मिहँदी की भटकन है।।
बरणन जो करौं कहीं दीखै मुख सुधा बिन्दु सी गटकन है।
बरमा सा दिल में फिरा करै तेरा सा तेरा लटकन है।।७६।।

जैसी तेगे[1] की लहर उठी तैसी इक्के की धार धसी।
पन्ने के तले सुराही का मोती जो बुध से लगा ससी।।
नौ रतन चौक बाजू सुन्दर अरु कंठ आय उरबसी[2] बसी।
कहु दिल में कौन निकालेगा जानी यह नग जगमगन फसी।।७७।।

जो दर्शन करै नवग्रह का प्यारे यह चित की लगन कहाँ।
नौ रतन धुकधुकी[3] जड़ी हुई बिन गले परे यह ठगन कहाँ।।
रेशम के गुच्छे लगे हुए उपमा कै ऐसी खगन कहाँ।
तरी सौं हाय अरे तुझ बिन जानी यह नग जगमगन कहाँ।।७८।।

अलबेली लाल पाग के ऊपर शोभा पड़ी सरसती है।
रँगमगे नैन अलसान भरे छबि अद्‌भुत खुली दरसती है।।
श्रमकण सों बिन्दु ओस के से लट नागिन छुटी परसती है।
मुख लाल बिहारी से शीतल क्या बिहँसन सुधा बरसती है।।७९।।

---

१. खड्ग २. वक्ष का आभूषण ३. गले का गहना।

चौके[1] की चमकन चटकदार छबि देत चुनी अवरेखा क्या।
इस अधर सुधा की लहर उठै कहि शील पियूष बिशेखा क्या।।
मुख चन्द्र बिहारी लखा नहीं फिर आय जक्त में देखा क्या।
इस बिहँसन दशन चंचलाई की शरद चन्द्र में लेखा क्या।।८०।।

मुख चन्द्र बिहारी तेरे की सम कोई चन्द्र बतावैगा।
यह जानि परी दिल बीच सदा वह कभी न उपमा पावैगा।।
यह तीखे तरल तेज अनियारे कुटिल कटाक्ष लगावैगा।
यह बिहँसन हँसन चंचलाई कहु कहाँ कलानिधि[2] पावैगा।।८१।।

गुस्सा करते में लखा कभी सन्मुख नहिं होय प्रभाकर सा।
हँसते में झड़ै चमेली सी अरु शरद चन्द्र की आकर सा।।
दर्पन में दर्श मलीन हुआ नित सोचा करै सुधाकर सा।
मुख लाल बिहारी तेरे का है शरद चन्द्रमा चाकर सा।।८२।।

जानी तेरा मुख चन्द्र लखै लेता है हिमकर ताब कहीं।
दिल में आदर्श[3] मलीन हुआ फिरता है कंज खराब कहीं।।
क्या ताकत पड़ी फिरिश्तों[4] की जो आगै करै जवाब कहीं।
जब बेनकाब[5] हो तू दिलबर अरु रोशन[6] हो महताब कहीं।।८३।।

दो हाथी लड़ैं हथेली पै ए भी बातें मैं मानूँगा।
पंचानन[7] सेती जोर करै रुस्तम[8] की कला बखानूँगा।।
जो जिमीं जमाँ[9] को एक करै अफलातूनी[10] पहिचानूँगा।
तुझ भौंह मोड़ते खड़ा रहै जानी मैं जबही जानूँगा।।८४।।

---

१. सामने के चार दाँत। २. चन्द्रमा ३. दर्पण ४. देवदूतों ५. अवगुण्ठन रहित, उघाड़ा ६. प्रकाशित ७. सिंह ८. एक सुप्रसिद्ध वीर ९. संसार १०. विद्वत्ता, शेखी।

मुख का वरणन क्या करहि सकै कुछ है उपमा का घेरा सा।
करि दूर नकाब जहर की वो आँखों में पड़े अँधेरा सा।।
मैं भी यह बहुत तलाश किया जालिम मन मिला न मेरा सा।
मुख लाल बिहारी तेरे का है शरद चन्द्रमा चेरा सा।।८५।।

क्यों आशिक हो दम भरता है बैठा रहु अपनी आन लिये।
चुप होकर दरद जाम पीजा दुनियाँ में रहु कुल कान लिये।।
आता है अभी इसी रस्ते अलबेला दिलवर पान लिये।
मिजगानी[१] तीर खिंचे जिस्के अरु अबरू[२] कड़ी कमान लिये।।

मण्डित प्रसून छबि दुगुण बढ़ी कर छरी छरहरी लिये हुये।
निशि जागे नैन खुमार भरे अलसान सुधा रस पिये हुये।।
खंजन सरोज मृग चंचरीक उपमा सब घायल किये हुये।
दृग खंजर लिये नजर आया सुरमे के दाये दिये हुये।।८७।।

जालिम बरमी[३] अरु नीमे[४] की दरशे तन जरा चसकने दे।
कर महर नजर की अय दिलबर तू हाय रकीब[५] कसकने दे।।
या चरण कंज लहलहे युगल पलकों से हमें मसकने दे।
कातिल जो बिस्मिल किया मुझे टुक खंजर तले ससकने दे।।८८।।

युग पलक झलक सो जालरंध्र बरुनी रेशम के झाले से।
चितचोर तरल तीखी चितवन सो अंकुश बलित समाले से।।
दृग चाह डोर की लहर लगी नेही खगपति का डाले से।
मुख शशी पींजरे में लीये दृग तीक्षण खंजन पाले से।।८६।।

---

१. बरौनी २. भौंह ३. कवच जैसा ४. जामे के नीचे का वस्त्र ५. संरक्षक।

झलकें झिलमिले झुके झूमें झपकारे सुघर नवीने हैं।
चपलौहें चटक चोंच चितवन खंजन के कसकत सीने हैं।।
लखि शरद कमल दल मलिन हुए मृग बनोवास सा लीने हैं।
दृग लाल बिहारी के शीतल युग मीन महा बड़मीने हैं।।६०।।

गुणवारे अरुण जाल डोरे दृग भरे हुए बेपीरी के।
पंकज पर दिनकर की किरणें छींटे मनमथ की बीरी के।।
कै हैं गुलाब में उदै हुए अंकुर[⊛] केशर कशमीरी के।
खंजन के गले (में) पड़े हुए गुच्छे दाड़िम दल चीरी के।।६१।।

पट लगे लाज तिय मन्दिर के खुलते ही दिल में ललकें हैं।
कै वारिज पानिय सरवर के खिल रहे रस भरे दलकें हैं।।
मुख रूप स्वाति की बूँद पिये दोउ सीप पलन बल झलकें हैं।
या लाल बिहारी की शीतल रस भरी छबीली पलकें हैं।।६२।।

क्या शरद चन्द्र में खंजन से मोती का चारा चरे हुए।
सफरी सरोज मृग चंचरीक सब शीश हाथ पर धरे हुए।।
जिनके दर्शन कर चित्त बीच जिन्नत के नर्गिस हरे हुए।
दृग लाल बिहारी के शीतल जगमगन झमक रस भरे हुए।।६३।।

लहलहे अनोंखे लहरदार जानी ये कंजन[⊛] गंजन से।
अलसाते हुए झलकते हैं ये शीतल के मनरंजन से।।
दरसत ही आनँद कन्द लसें त्रिविध ताप के भंजन से।
दृग लाल बिहारी के दोनों क्या शरद चन्द्र में खंजन से।।६४।।

⊛ पाठान्तर – अंकुश। ⊛ पाठान्तर – कंजल

मुख सरस सुधाकर में खेलें शशिकर के छौना भोरे से।
मुसक्याते हुए लखे जब से जिय जलज फिरै चित चोरे से।।
कै बीज बीजुरी के झलकें झिलमिले झमक रस बोरे से।
दन्दाँ-छद[1] लाल बिहारी के बिम्बाधर[1] सुधा झकोरे से।।६५।।

लागै ज्यों तीर तुफंग[2] कहीं नावक का गहवर भर पीवै।
खंजर जमधर[3] का जख्म लगै तो टाँके कारीगर सीवै।।
अहिपति का काटा मैर[4] चढ़े जब भौंहें जहर लहर पीवै।
शीतल का और इलाज नहीं लटकन का मारा क्या जीवै।।६६।।

सब यन्त्र मन्त्र बेताब रहैं जब चढ़ै जुल्फ का जहर कहीं।
फिर लगै सुधारस फीका सा जब सुनी लटपटी बहर[5]कहीं।।
सुरखी आलूदे[6] होंठ लबे क्या पड़ा इलाही कहर कहीं।
जखमी हो फिर न सम्हाल सकै लागै जब लटकन लहर कहीं।।६७।।

केशर कुसुम्भ गुलाब सुमन विद्रुम तकि हिये हलाक[7] किये।
गौहर[8] बिम्बा बदनाम किये माणिक के दामन पाक[9] किये।।
हंसों के चरवण चोंच चुनी लख ललित ललाई ताक[10]किये।
अब तक लाला[11]दल फिरते हैं यह रविश[12]गरेबाँ[13]चाक[14] किये।।६८।।

प्यारे के सुरख अधर देखे गुंचे की उड़ गई धड़ी धड़ी।
नग मीना जटित अरे जालिम यह फूलों की सी छड़ी छड़ी।।
मुसकान बिहारी की शीतल कहिं अम्मृत की सी झड़ी झड़ी।
झमकाहट दशन अनोंखे का मुक्ताहल की सी लड़ी लड़ी।।६९।।

---

१. रदच्छद, होंठ २. फूँक से तीर छोड़ने की नली ३. झुकी नोंक की कटारी ४. लहर ५. छन्द ६. मिश्रित ७. मार दिये ८. मोती ९. पवित्र १०. दूर किये ११. गुल्लाला, गुड़हल १२. बगीचे की रौस–पट्टी, चलने का मार्ग १३. कुर्ते का सामने का भाग १४. फाड़ दिये।

लट ललित लहर खाती देखी छबि ऐसी फेर न हेरी मैं।
सुरमे से जड़े हुए लोचन यह चितवन लखी अनेरी मैं।।
मुख राका चन्द्र बिहारी के पै कोटिक उपमा फेरी मैं।
यूसुफ का गररा[1] डूब गया इस चाह जनखदाँ[2] तेरी मैं।।१००।।

नीमा प्रीतम के सुरख खुला गल भीतर रंचक चसा हुआ।
गोया[3] अरुण बादली फोड़ यार शशि जामें दीखै धँसा हुआ।।
जागा है पुरुष मार[4] खूनी अलसानी छबि रसमसा हुआ।
तन बदन दमकता प्यारे का ज्यों हेम कसौटी कसा हुआ।।१०१।।

कारे सटकारे लहरदार सौंधे भीने सगबगे हुए।
फिर बिथुरित कुसुम मल्लिका के ज्यों तम से तारे लगे हुए।।
मुख चन्द्र दशन मुक्ताहल से मुस्क्यान जाल से ढके हुए।
जानी हम को दिखलावेगा फिर भी वे नग जगमगे हुए।।१०२।।

अज विष्णु ईश वो रूप तुही नभ तारा चारु सुधाकर है।
अम्बा तारा लौं शक्ति सुधा स्वाहा ओम् प्रबल प्रभाकर है।।
हम अंसा अंस समझते हैं सब वाक जाल से पाकर हैं।
सुन लाल बिहारी ललित ललन हम तो तेरे ही चाकर हैं।।१०३।।

कोइ शक्ति रूप भजि बाम हुए कोइ समृति सासना ग्रसे हुए।
कोइ महाविष्णु के जापक हैं उर माल छाप भुज लसे हुए।।
कोइ निर्गुण ब्रह्म समझते हैं जे महासुषमना बसे हुए।
जानी हम हाय कहाँ जावें तुझ जुल्फ जाल के फँसे हुए।।१०४।।

---

१. गर्व २. चिबुक, ठुड्डी ३. मानो ४. कामदेव (फारसी में साँप)।

तुझ चरण कमल की शरण हुवे तेरे ही गुण कूँ गुनते हैं।
तुझ बिन यह जगत सुजान जीव हम पड़े शीश कूँ धुनते हैं।।
निर्गुण सर्गुण की लहर उठें ताना बाना सा बुनते हैं।
जानी हम तुमको समझ लिया सब तज हरि भज ये सुनते हैं।।१०५

कारण कारज ले न्याय कहै ज्योतिष मत रवि गुरु शशी कहा।
जाहिद[१] ने हक्क[२] हुस्न यूसुफ अरहंत[३] जैन छबि वशी कहा।।
रतिराज रूप रत प्रेम ईश जानी छबि शोभा लसी कहा।
लाला हम तुमको समझ लिया जो ब्रह्म तत् त्वं असी कहा।।१०६।

उर अवा अनल में आँच दिया तुझ विरह संग[४] से पीसा है।
भरि खून जिगर को अय जालिम गुलजार रंग दुति दीसा है।।
मजनू फरहाद माधवानल इन सब मिल तुझे अशीसा है।
दृग ठोकर जरब[५] न मार यार दिल निपट करकरा शीशा है।।१०७।।

इक रोज बिहारी लाला से यह सहज किसी ने पूछा है।
जीगे[६] के ऊपर तारागण दुति उदै मलिन छबि सूछा[७] है।।
यह कहौ कहाँ से पाया तुम उपमा को दिनमन[८] तूछा है।
शीतल ने मुझे बँधाय दिया यह अश्क[९] गौहरी गूछा है।।१०८।।

तीखी चितवन के जख्म लगे मेरे दिल बीच अमाने[१०] के।
यूनाँ[*] तक मालिज[११] मिलै नहीं मुझ लख्तें जिगर[१२] चुचाने के।।
बरुणी की सुई लाल डोरे दे टाँके सलज लजाने के।
कुछ मरहम[१३] की दरकार नहीं सुन अफलातून जमाने के।।१०९।।

---

१. उपदेशक २. सत्य, ईश्वर ३. पूज्य, तीर्थंकर। ४. पत्थर ५. चोट ६. कलगी, सिरपेच ७. शुद्ध, स्वच्छ ८. सूर्य ९. आँसू १०. अपरिमित, अत्यधिक ११. चिकित्सक १२. कलेजे का टुकड़ा १३. घाव ठीक करने का लेप। * यूनान, यवन देश।

हम दर्दमन्द मुश्ताक रहे तुझ बिन उर दूजा दुरा नहीं।
तीखी चितवन का जख्म लगा दिल में सो अब तक पुरा नहीं।।
तुझ हुस्न बलख[1] में अय दिलवर कुछ हम लोगों का कुरा[2] नहीं।
बिहँसन के बीच बिकाते हैं शीतल इन मोलों बुरा नहीं।।११०।।

जिसतें नित मोती झड़ते हैं ज्यों लिखी कंज की आकर है।
लब से जो कभी निकल आवे शरमिन्दा होय विभाकर है।।
छाती से लगे शरम खाकर बिन दामों बिजली चाकर है।
जो जाने दरदमन्द होबे बेदरद दरद से पाकर है।।१११।।

तन चम्पक रंग गुलाब कली उपमा के बीच अरेरा है।
रद कुन्द अधर दल दाड़िम से दृग कंजन तौर तरेरा है।।
सब अंग सुमन की आभा से शोभा का सिन्धु दरेरा है।
कहु लाल बिहारी यह तेरा दिल कारण कौन करेरा है।।११२।।

कानों में हलते हुए जलज लखि इनकी उपमा तरनि कहै।
कहि दिल क्योंकर बेताब न हो जब यह छबि जी में अरनि कहै।।
इतने पर वचन सुधा बोरे से भोरे मुख मन हरनि कहै।
लोचन बिन गिरा गिरा बिन लोचन क्योंकर शीतल बरनि कहै।।११३।।

रगमगा छबीला चौक भरा केशर के नीर चुचाता सा।
मुख ऊपर उमड़ गुलाल रहा छबि मन्द ठवन अलसाता सा।।
कर में चन्दन का वारियन्त्र लखि मेरी तरफ लजाता सा।
शीतल जिन देखा सो जाने वो मधुर मन्द मुसकाता सा।।११४।।

---

१. बल्ख देश २. गाँव, जमींदारी।

मोती की लड़ियाँ देखी हैं देखे हैं गुंचे बेली के।
मरते हैं मान पड़े दिल में उस चारु चाँदनी चेली के।।
हीरे हहराय गये चित में फिर मोलों रहे न धेली[1] के।
जानी वे कैसे झड़ते हैं हँसने में फूल चमेली के।।११५।।

शीतल तुझ आँखों से आँसू क्या विरह सिन्धु के सोते[2] हैं।
जिसमें पड़ थाह न लाय सकै मजनू को अब तक गोते हैं।।
फरहाद किनारे लगे हुए भरि हाय सरद[3] फिर रोते हैं।
सुन लाल बिहारी दरद बीच घायल ऐसे ही होते हैं।।११६।।

जानी के झुमकन कानों में लखते मोती बेताब हुआ।
जुल्फों में आय फँसा जब से सुम्बुल दर बदर खराब हुआ।।
मुख शरद चन्द्र जब से देखा नित छीन पीन महताब हुआ।
इस लाल बिहारी के आरिज[4] सुन हाय आइना आब हुआ।।११७।।

सब सैर चमन की करते हैं क्यों हमें बागवाँ[5] अड़ते हैं।
मालूम हुआ हमको दिलबर इनकी आँखों में गड़ते हैं।।
तुझ रुखसारों का रंग लखें गुंचे के पत्ते झड़ते हैं।
कर चाक गरेबाँ सीने पर खारों[6] के तेशे[7] जड़ते हैं।।११८।।

जिसकी दीवारें सोने की ऊपर बूटे नग जड़े रतन।
नरगिस बादाम अरगवाँ[8] के गुललाला और गुलाब सुमन।।
बहुतेरे जिन्नत पारिजात गुल लाय लाय कर बड़े जतन।
बिन लाल बिहारी कौन लखै यह शीतल का शृंगार चमन।।११९।।

---

१. अठन्नी, आधा रुपया २. स्रोत ३. ठण्डी ४. कपोल ५. माली ६. काँटे ७. कुदाल ८. गहरा लाल रंग।

तुझ जुल्फ पेच बिन आठ पेच काली नागिन के पड़ते हैं।
मन चित्त बंध संसृती भर्म संकल्प सभा में गड़ते हैं।।
फिर छुटें नहीं मुख चन्द्र बिना जी जतन सैकड़ों घड़ते हैं।
यह समझ चित्त दिलजानी की जुल्फों में दिल को जड़ते हैं।।१२०।।

है इश्क पेच दिलजानी का जो इस के आगे मर्द रहै।
बीमारी पहिले करि पैदा जो आह जिगर की सर्द रहै।।
कुछ ऐसा समझ अरे शीतल जो दिल के शिर में दर्द रहै।
लग नक्श खाकपा[1] जानी की सुनते ही संदल[2] गर्द[3] रहै।।१२१।।

इति श्रीशीतलदासजी कृत गुलजार-चमन सम्पूर्णम्।

१. चरण रज २. चन्दन ३. धूल।

श्रीमन्नित्यनिकुञ्जविहारिणे नमः।

श्रीस्वामी हरिदासो विजयतेतराम्।।

अथ आनन्द-चमन लिख्यते।

मोहन मुकुन्द मधुसूदन जू हरि श्री ब्रजराज दुलारौ कहु।
घनश्याम छबीलौ सुघर पुंज नेही नैनन को तारौ कहु।।
वनमाली कालीदमन सदाँ जगजीवन रूप उजारौ कहु।
शीतल भव बाधा सहज तरै नित मोर-चन्द्रिका वारौ कहु।।१।।

चम्पकवरणी मनहरणी कहु रस-सुधा-सिन्धु में सानी कहु।
बाधा हरि राधा नाम कियौ कीरति-कुँवारि जग जानी कहु।।
शोभा की सीमा रूप अवधि गुण गरब गहेली[1] बानी कहु।
शीतल भव-बाधा सहज तरै ब्रजरानी कहु ब्रजरानी कहु।।२।।

समझै है चतुर सुजान कोई यह है जैसा सुख कन्द चमन।
जो इश्क पेच में खुला नहीं समझैगा क्या दिलबन्द चमन।।
है ध्यान धारणा ध्येय जुदा कीना ब्रजरानी फन्द चमन।
सुन लाल बिहारी ललित ललन यह है दूजा आनन्द चमन।।३।।

जानी अनन्त पर शरद चन्द्र यह सुधा सिन्धु का सोता है।
छबि ललित बाम गंडाक्ष मिलै यह बानी बीज उदोता है।।
दिलबर यह बारक लाख जपै तब मंत्र शारदा सोता है।
समझै सब आगम निगम भेद लखि मूक वाकपति होता है।।४।।

कहते हैं जिसको ब्रह्म तत्त्व अरु अज अनीह अविनासी है।
तीनों गुण पाँचों तत्त्व परे सब विश्व रूप का बासी है।।
सुन लाल बिहारी ललित ललन यह बात चित्त में भासी है।
मुख शरद चन्द्र विश्वेश्वर सा जानी बिहँसन ही कासी है।।५।।

---

१. उन्मत्त।

सब छोड़ चरण की शरण सदाँ तेरेही दर पर अड़े हुए।
टलते हैं भला कभी जालिम जे सर्व[१] चमन में गड़े हुए।।
गुललाला गुंचे फूल गये कर चाक गरेबाँ झड़े हुए।
मरने जीने से खारिज[२] हो तड़फें नित बिस्मिल पड़े हुए।।६।।

कोइ शक्ति रूप सा कहते हैं कोइ निर्गुण बारहबानी का।
कोइ काल कर्म गुण शून्य जीव कर्ता प्रानी से प्रानी का।।
फिर हंस सुपेद हरे तोते मोरों पर चित्र जहानी का।
चुप होकर चरण चूम लेना कहना क्या अकथ कहानी का।।७।।

पूरणमासी के शरद चन्द्र को लखें सुधा रस मत्ता सा।
मुख तें नकाब को खोल दिया जगमगै प्रताप चकत्ता[३] सा।।
मुसकान निकल कर खाय गई चित सुधा लपेटा कत्ता[४] सा।
भरि नजर न देख सुधाकर को छुट परै छपाकर[५] छत्ता सा।।८।।

श्रम सीकर[६] लाल बिहारी के देखे उपमा में दंगल सा।
कुछ हीरे हरे हुए चित में मोती के जी में मंगल सा।।
अलसाता हुआ नजर आया अलबेला रूप अखंडल[७] सा।
कै शरद चन्द्र पर उदै हुआ जानी तारागण मंडल सा।।६।।

मुख शरद चन्द्र पर श्रम सीकर जगमगे नखत गण जोती से।
कै दल गुलाब पर शबनम[८] के हैं कणिका रूप उदोती से।।
हीरे की कनियाँ मन्द लगें हैं सुधा किरण के गोती से।
आया है मदन आरती को धर हेम थार पर मोती से।।१०।।

---

१. एक ऊँचा वृक्ष – सरो २. बहिष्कृत, अलग किया हुआ ३. गोला ४. बाँकी, टेढ़ी तलवार ५. चन्द्रमा ६. बिन्दु ७. सम्पूर्ण, इन्द्र ८. ओस की बूँदें।

मुख शरद चन्द्र पर ठहर गया जानी के बुन्द पसीने का।
या कुन्दन कमल कली ऊपर झमकाहट रक्खा मीने का।।
रहता है कोई होश कहीं हो पिदर बूअली सीने[*] का।
या लाल बदख्शाँ[1] पर खैंचा चौका इलमास[2] नगीने का।।११।।

कर छुएँ गुलाब दिखाता है जो चौसर गूँथा बेली का।
गल बीच चम्पई रंग हुआ मुसकान कुन्द रद[3] केली का।।
दृग स्याह मरीच[4] लपेटेही रँग हुआ सोसनी[5] सेली का।
जानी यह तदगुण भूषण है पचरंगा हार चमेली का।।१२।।

लोटै गोदी में बिजली सा चख चंचल सुरमा पड़ै चुआ।
अलसान सुधा रस भीज रहा ज्यों उदय शरद का शशी उआ।।
हँसि ललक झलक छबि छलक उठी मैं चरणकमल को नेंक छुआ।
यह लाल बिहारी मचल गया तड़फै जरतारी गेंद हुआ।।१३।।

सुन शीतल सुघर अरे मेरी जालिम हीरा चौकोर कहाँ।
दृग मृग के सभी वरणते हैं वह तीखी ललित मरोर कहाँ।।
कुन्दन की बीन बनाई जो वह मधुर यन्त्र सुर घोर कहाँ।
महबूब मोम दिल होय नहीं गेंदे में अतर हिलोर कहाँ।।१४।।

जिन तेरी तरफ सहज देखा सो आह नक्शदीवार[6] रहा।
मुख चन्द्र बिहारी तेरे की उपमा का मुझे विचार रहा।।
खूबी सी दौलत मिली तुझे पर तेरा दिल न उदार रहा।
तू ईसा[7] हुआ जमाने का यह दरदमन्द बीमार रहा।।१५।।

---

१. अफगानिस्तान के एक प्रदेश का नाम, जहाँ का लाल प्रसिद्ध है २. हीरा ३. कुन्द पुष्प से दाँत ४. किरण ५. लाली युक्त नीला रंग ६. भित्ति चित्र की भाँति ७. मसीहा, स्वस्थ करनेवाला। [*] अली जैसे बलबान् के पिता का हृदय भी होश खो देता है।

श्रृंगार रूप रस भरे हुए हैं सुधा किरण के गोती ये।
बाँधे सीने में मूरति सी दरसावै रूप उदोती ये।।
परखे मुक्ताहल दृष्टी से झमकाहट जगमग जोती ये।
काढ़े हैं सुधा-सिन्धु में से मैं शब्द ब्रह्म के मोती ये।।१६।।

दिलबर अब क्यों पछताता है तुझ जुल्फ जाल से सैद[1] गया।
अब किसको दरद दिखाता है वह दरद बूझता बैद गया।।
जानी इस परदे[2] अदम[3] बीच बाकैद[4] गया बेकैद[5] गया।
खूबी इस जाम जहानी की ले गया जहाँ जमशैद[6] गया।।१७।।

जानी के शरद चन्द्र-मुख से मुसक्यान सुधा की सीर[7] हुई।
वह दशन झलक जी लेती है क्या जादू की सी बीर[8] हुई।।
क्या मुझे उकसने[*] देती है गरदन पर जुल्फ जँजीर हुई।
बिन मारें घायल करती है जानी की चितवन तीर हुई।।१८।।

तेरी जुल्फों का पेच लखै नागिन का सीना फाटै ही।
कुंडल मोती मुख बीच लिये अहिबाल ओस को चाटै ही।।
खा रही लहर जो सुम्बुल की उपमा को फिर फिर डाटै ही।
लहराती लखें मरें जीवें लहरें लेवें बिन काटै ही।।१६।।

मजनूँ फरहाद माधवानल ये थे महरम[9] इस बस्ती के।
लैलै शीरीं में लीन हुए उर कामकन्दला किस्ती के।।
यह इश्क चन्द्रिका छाय रही अब तक बायस[10] इस मस्ती के।
जानी ढूँढे ही मिलते हैं गाहक इस हुस्नपरस्ती[11] के।।२०।।

---

१. शिकार २–३. आवरण रहित परलोक ४. कैद में बन्दी ५. बिना कैद, स्वतन्त्र ६. ईरान का एक सम्राट जिसके प्याले में संसार की सारी बातें दिखलाई देती थीं ७. प्रमुख अधिकार, ठण्डक ८. सखी, बहादुर ६. भेद जानने वाला, निकट सम्बन्धी १०. कारण, सबब ११. सौन्दर्योपासना। * पाठान्तर–उसकने।

जानी तू खरीदार मेरा जो सुधा-सिन्धु मय सोती के।
यह सुयश स्वाति की बूँद हुआ प्यारे रस रूप उदोती के।।
तुझ दसन हँसन ने सजल किया मुसकाहट जगमग ज्योती के।
रहती है सदाँ तलाश मुझे जो हैं गाहक इस मोती के।।२१।।

सुन लाल बिहारी ललित ललन यह गति बिरले ने जानी है।
तुझ आह दरद के श्वाले का कहना कुछ अकह कहानी है।।
सुरतरु की कलमें मन्द हुईं लिखना भी बारहबानी[1] है।
समझे से सीना जला करे चलि बे तू कैसा जानी है।।२२।।

सुन लाल बिहारी ललित ललन बिन दरद आदमी मानै क्या।
दिलबर अलबेला मिला नहीं दिल की सूरत पहिचानै क्या।।
जो समझा सो खामोश हुआ फिर फिर छाने को छाने क्या।
सूरत[2] अहवाल[3] अगर मेरा तू भी समझै तो जानै क्या।।२३।।

हैं नैन करद से अनियारे जिन दरद हजारों गरद करे।
दिल फरद[4] सरद[5] बेताब हुआ महताब ताब सों जरद करे।।
खंजन के गंजन रस रंजन अंजन दे कंजन सरद करे।
कहि इनका कौन इलाज करे जो तैं घाइल बेदरद करे।।२४।।

काहे हमको दिखलाते हो जानी अबरू खमदार[6] बहुत।
वे दिन दिलबर क्यों भूल गये करते थे हम से प्यार बहुत।।
अब परे सरक जा कहते हो होजा मत मुझसे यार बहुत।
इन दिनों बगल में रहती है जालिम तेरे तलवार बहुत।।२५।।

---

१. निर्दोष, विशुद्ध २. कृपालु (संस्कृत), शक्ल, स्थिति (अरबी) ३. वृत्तान्त ४. अकेला, बेजोड़ ५. ठण्डा ६. टेढ़े, घुँघराले।

हम दरदमन्द मुश्ताक रहे घूमें दृग दोनों चावक के।
सुध आए दिलबर हा तेरी मारे मनमथ सर सावक[१] के।।
तलफैं तुझ शरद सुधा घन बिन ये प्राण-पपीहा पावस के।
रहता है तू इन दिनों कहाँ वे हाय कलानिधि मावस के।।२६।।

उठ भोर प्राणपति छबि सेती अलसान भरा दरसाव कहीं।
रंगमगे नैन की नोंकों से तीरों का दिल तरसाव कहीं।।
तलफैं ये प्राण पपीहा लौं नित सुधा जलद बरसाव कहीं।
इन नैन-चकोर हमारे को मुख शरद-चन्द्र सरसाव कहीं।।२७।।

थी शरद-चन्द्र की जोन्ह खिली सोवै था सब गुण जटा हुआ।
चोवा की चमक अधर बिहँसन रस भीजा दाड़िम फटा हुआ।।
इतने में ग्रसन समै बेला लखि ख्याल बड़ा अटपटा हुआ।
अवनी से नभ नभ से अवनी उछलै अगु नट का बटा हुआ।।२८।।

थी शरदचन्द्र की जोन्ह खिली दुति मुख-मयंक के सहने की।
सोवै था भरा खुमारी में चमकै थी छबि सब गहने की।।
मैं चरण चाँपने को बैठा क्या कहौं आपने लहने[२] की।
फिर फिर या दिल में कसक उठे चल परे सरक जा कहने की।।२६।।

सरभरी गुलाब जलयन्त्र झलक थी शरद चन्द्रकी जोन्ह खिली।
मंजन कर पैरन लगा जभी चमकै तन चम्पकदार दली।।
लग बूँदें बदन फुहारे की उपमा कवि शीतल वरण भली।
कै क्षीर सिन्धु में झिलमिलाय मुक्ताफल कुन्दन बेलि फली।।३०।।

---

१. शिशु (छोटे) २. उपलब्धि (भाग्य)।

छबि दसन हँसन की हूल[1] लगी शरमा कर मुक्तामाल खसी।
तड़के ही उतर पलँग सेती चुनने को लागा भौंह कसी।।
वह आलस भरा लखा जब से उपमा शीतल उर आय बसी।
अवनी पर उतरा नभ सेती तारागण बीनें सरद ससी।।३१।।

जानी इन गुल रुखसारों पर शबनम का जड़ा पसीना है।
या लाल बदखशाँ पर दिलबर इलमासी जड़ा नगीना है।।
समझै यह रम्ज[2] वही जालिम जो इश्क दरद में बीना[3] है।
हिमकर पर अफशाँ[4] जड़े हुए या किया जौहरी मीना है।।३२।।

दृग लाल बिहारी के देखे उपमा नहिं पाई हिरनों पर।
मुसकाते मुख से बचन कढ़े कुरबान सुधा जल किरनों पर।।
यमुना में पैरन लगा जभी वारी सफरी इन तिरनों पर।
मुख पर सीकर के बिन्दु लगे अफशाँ दिनकर की किरनों पर।।३३।।

दिल चाक घूम इस दामन की होता है छबि लखि बाँके की।
चितवन के भाले पर दिलबर कुछ ताब नहीं है टाँके की।।
इतने पर सँभल उठा फिर भी दुति देखी दुशम[5] नजाके[6] की।
तकते ही सीना खाय गई अबरू शमशेर झमाँके की।।३४।।

जानी के मुख पर जड़े हुए ज्यों तारे सुधा उदोती से।
दिनकर पर जरीतार डारे या उये सुधाकर गोती से।।
या सरद गगन पर तेज पुंज जगमगे निशाकर जोती से।
श्रम सीकर लाल बिहारी के क्या हेम थार पर मोती से।।३५।।

---

१. हथियार की नोंक का आघात २. संकेत, मर्म ३. देखने वाला ४. स्त्रियों के गालों या बालों पर छिड़कने का रुपहला-सुनहला चूर्ण ५. कठिन ६. सुकुमारता (नजाकत)।

दिल चला चूम नख चन्द्र चरण पहुँचा दामन के फेरों तक।
इक छोरे पटके सों लटका छाती जा लागा देरों तक।।
कंठी कुन्दन नग जड़ी देखि उलझा मोती के घेरों तक।
मिजगाँ के भाले बेध गये जाता अबरू शमशेरों तक।।३६।।

हम खूब तरह से जाने हैं जैसा आनँद का कन्द किया।
सब रूप शील गुण तेज पुंज तेरे ही भीतर बन्द किया।।
तुझ हुस्न प्रभा की बाकी ले फिर विधि ने यही प्रबन्ध किया।
चम्पक दल सोनजुही नरगिस चामीकर[१] चपला चन्द किया।।३७।।

जानी तुव अंगों से महकी खुशबोई गई हजारों पर।
कुछ कमल गुलाब सुमन दिलबर पहुँची चम्पे कचनारों पर।।
रायबेल मोतियारु मरुवा चन्दन के कुहसारों[२] पर।
अरगवाँ सुनरगिस जिन्नत के केशर मृगमद घनसारों[३] पर।।३८।।

रँग ललित जाफराँ[४] फेंटे की ऊपर रस भरी गुलाब कली।
जानी सुगन्ध से भरे हुए तिस ऊपर गुंजें मंजु अली।।
मुख शरद चन्द्र पर क्यों दिलबर अलबेली अलक गुलाब मली।
रँग चुवन ललित छबि क्या वरणों ज्यों नागिन के नकसीर चली।।३९।।

नीमे की लहर कहर तुकमे[५] में सहज जगमगन हीरे की।
कंचन सरोज की कलियाँ सी कंठी के जरब जँजीरे[६] की।।
मुसक्यान जवाहर हँसन लसन छबि दसन अरुणई बीरे की।
क्या दिल से जिकर निकलती है इस रंग जाफराँ चीरे की।।४०।।

---

१. सोना २. पहाड़ ३. कपूर ४. केसरिया ५. बटन या घुण्डी फँसाने का फन्दा ६. बटा हुआ लहरदार धागा।

जो षरज ऋषभ सुर लखा नहीं तो क्या कर कुन्दन बीन लिये।
जो रासि अंस गति भेद नहीं तो फिरै मेष क्या मीन लिये।।
जो शब्द रूप कुछ लखा नहीं तो है क्या पुस्तक पीन लिये।
जो र्दिल दिलबर से लगा नहीं तो क्या करवा कोपीन लिये।।४१।।

जानी तुझ नीमे के ऊपर तड़पै बिजली सी पड़ी हुई।
ढिंग शरद चन्द्र के तारागण कुन्दन माणिक से मड़ी हुई।।
सुरपति में तारा पाँती सी है यह भी उपमा अड़ी हुई।
इस लाल बिहारी के उर में सोहै कंठी नग जड़ी हुई।।४२।।

दृग लाल बिहारी के देखे जाते हैं मृग सँग कोर[1] लगे।
जुल्फों को अहिपति समझ यार ये भ्रम के मारे मोर लगे।।
तन कमल गुलाब कली समझा देखे से भौंरे भोर लगे।
मुख शरद सुधाकर जानी का फिरते हैं संग चकोर लगे।।४३।।

रद देखे लाल बिहारी के अनबेधे मोती मड़क[2] गये।
कै षटदश कला छपाकर के इन हूँ के किरचे कड़क गये।।
मुसकाते भरे लखे जब तें रस भींजे दाड़िम दड़क गये।
शरमिन्दी कली चमेली की तड़िता के सीने तड़क गये।।४४।।

प्यारे के सुरख अधर देखे गुंचे की उड़ गईं धड़ियाँ सी।
कै मुख मयंक में छिपी हुई जगमगें सुधा की झड़ियाँ सी।।
कै मैन सुनार कलित कुन्दन छबि ललित चुन्नियाँ जड़ियाँ सी।
कै जलज जौहरी लिए हुए छबि दसन जलज की लड़ियाँ सी।।४५।।

---

१. करोड़ों २. दबकर टूट गये।

चौसर चुन चारु चमेली के जोबन कारीगर बीने हैं।
शीतल बिजली के बीज धरे रस बोरे सुधा नवीने हैं।।
हैं गौहर सिलक[१] सुधार धरे छबि जरीतार के छीने हैं।
रद लाल बिहारी जानी के क्या हीरेनुमा नगीने हैं।।४६।।

मुझ आह दरद के श्वाले के आगे क्या बिजली कड़क सकै।
मजनूँ फरहाद माधवानल बिस्मिल हो दम भर भड़क सकै।।
हालत हरदम बेताबी की लखि ताब दरद की मड़क सकै।
फरियाद हमारी सुन दिलबर क्या बज्र इंद्र का तड़क सकै।।४७।।

क्या सरद चन्द्र पै सुधाबिन्दु रस रूप रँगीली छहरें ये।
चम्पक दल सुरगुरु उदै हुआ उपमा आपुस में थहरें ये।।
मुसक्याते हुए तड़पता है जानी बिजली की कहरें ये।
निकलेंगी दिल से क्यों जालिम तेरे लटकन की लहरें ये।।४८।।

क्या सरद कोकनद[२] उदै हुए लगते हैं दिल को प्यारे से।
रसमसे रैन के जगे हुए कुछ सहज रंग रतनारे से।।
जिस दिल पर खैंचे सो जानें जानी मनमथ के आरे से।
दृग लाल बिहारी के दोनों क्या खंजर साफ दुधारे से।।४६।।

ऊदे चीरे की लहर फँसी भौंहें कमान सी कड़ी लिये।
लब लाल दसन मुकताफल से जालिम मिस्सी[३]की धड़ी लिये।।
वरणन मुझ पै क्यों होती है कहता हौं उपमा अड़ी लिये।
अलसाता हुआ नजर आया जानी मीने की छड़ी लिये।।५०।।

---

१. लड़ी, पंक्ति २. गुलाबी या लाल कमल ३. काला मंजन।

कदसरवे[१] चमन छबीले का यह प्रेम सुधारस सींचा है।
नैना नरगिस अब हरी जड़ैं गुललाला अधरन जी चाहै।।
चम्पक बेली सी बाँह सजन शोभा का सिन्धु उलीचा है।
यह लाल बिहारी आज यार जानी जगमगन बगीचा है।।५१।।

जानी फिर तूने लखा नहीं हमको चितवन मनहरनी से।
जुल्फों को अहिपति मति वरणे उपमा इनको दे भरनी[२] से।।
तुव ललित माधुरी मूरति क्या यह शोक-सिन्धु की तरनी से।
गजगति उतार मति कर रेजै[३]जालिम दिल नजर कतरनी से।।५२।।

अँगुली पाँचों में खाय पेच तलवे के नीचे रवाँ[४] हुआ।
चपि चाइ चूर हो जल्दी से एड़ी जुल्फें अरु छवाँ[५] हुआ।।
जगमगन जड़ाव जँजीरों में मिहँदी रँग भीजा भवाँ[६] हुआ।
तुझ चरण शरण में आय लगा जानी मन मेरा झवाँ[७] हुआ।।५३।।

जिन तेरी तरफ सहज देखा अनियारी चितवन ढबि[८] ही में।
फिर रहे नैन ये दुनियाँ के बाकी आते हैं कवि ही में।।
भौंहौं की जुड़न तड़प दृग की बेदरदी बाँकी छबि ही में।
अपना तौ काम तमाम हुआ जानी इस जुम्बिश[९] लब ही में।।५४।।

फरियाद हमारी कौन सुनै दिलजान विकरमाजीत नहीं।
जो कामकन्दला दरदमन्द माधोनल की सी प्रीति नहीं।।
अटका जो भौंरा बेली से जब सूख गई तब रीति नहीं।
जानी तू दरद जौहरी है यह समझ नेह की नीति नहीं।।५५।।

---

१. सरवेकद –सरो वृक्ष (मोर पंखी) जैसा लम्बा २. सर्प विष उतारने का मंत्र ३. टुकड़े ४. प्रवाहित ५. एड़ी, छा गया ६. चक्करखाता ७. झामा (पैर का मैल छुड़ाने का) ८. तौर, तरीका ९. हिलना।

कोइ आँखों ने भी मार लिया उसको नरगिसी कहानी है।
कोइ जुल्फों के भी पेच तले नागिन की कला बखानी है।।
कोइ हँसने के भी बीच रहा झमकानि रूप सुखदानी है।
आखिर को निश्चै हुवा नहीं तेरा सा तू ही जानी है।।५६।।

जानी जब लाल बदख्शाँ पै लटकन का मोती सार रहा।
हँसने में झुकन चमक तड़पन दिल के भी दिल पर खार रहा।।
सुन लीजौ बड़ी रसायन है यह वार जिगर के पार रहा।
प्यारे तुझ अधर नगीनों में सीमाव[1] कायमुन्नार[2] रहा।।५७।।

पंकज से बिजली लिपट रही नौरतन जड़ाऊ जड़ियाँ हैं।
मोती की कोरें गुही हुईं बाँधी उड़गन की लड़ियाँ हैं।।
नीची ऊँची इक लहर रही दिल पर उपमा बेकड़ियाँ हैं।
पैरों में लाल बिहारी के जैसी कुछ बाँकें पड़ियाँ हैं।।५८।।

कुछ बिजली के से गिरद[3] पुंज मेरे ही गले पड़ाऊ हैं।
कुन्दन के शेरदहाँ सुन्दर चुन्नी दृग जान अड़ाऊ हैं।।
हीरे पन्ने की लहर भरी छबि मीनेदार तड़ाऊ[4] हैं।
चल देख देखना बाकी है जानी के कड़े जड़ाऊ हैं।।५६।।

हीरों में नीलम जड़े हुये वरणन मिस्सी की रेखों का।
लखि लाल बदख्शाँ पर जानी दुति हँसन जलज अवरेखों का।।
सम्पुट जड़ाव का बन्द किया है दूर समझना लेखों का।
हँसने पर बिजली मायल है झमकाहट कुन्दन मेखों[5] का।।६०।।

---

१. पारा २. स्थिर ३.गोल घेरे ४. ताड़ने (ध्यान से देखने) योग्य ५. कील।

सुन लाल बिहारी ललित ललन यह देखा बड़ा तमासा है।
शशि पर तोता दो खंजन हैं तिस ऊपर धनुष प्रकासा है।।
तारागण सूरज उदै हुए जिसमें जहान की आसा है।
टुक नजर इधर को होते ही दिल के पक्षी को लासा[१] है।।६१।।

जानी यह चमन हमेशह का है मेरे दिल से हिला हुआ।
गुललाले पर नाफरमा[२] है बेली का गुंचा खिला हुआ।।
तिस भीतर नरगिस श्वाले दो सुम्बुल का गुच्छा जिला[३] हुआ।
दो लाल बदख्शाँ की रौसें दिलजान बनफ्शा खिला हुआ।।६२।।

जब तेरे रुख[४] की हवा चली तब से असमानी चंग हुआ।
ठड्डा[५] अरु काँपै[६] सिरीपेट[७] यह भेद रूप सब अंग हुआ।।
नीचे ऊँचे अरु गोते हैं कन्नी[८] का मुड़ना तंग हुआ।
रिश्ते से बँधा हुआ जानी दिल मेरा तुझे पतंग हुआ।।६३।।

हरदम पर दम कुछ दम पर दम तेरा ही सुमिरण करते हैं।
इकीस हजार छै सै श्वासों से रात और दिन भरते हैं।।
जानी मालूम तुझे क्या है ज्यों विरह सिन्धु को तरते हैं।
गिरदाब[९] बड़ा जी छोटा सा हम इसी फिकर में मरते हैं।।६४।।

खम[१०] खाते तौ खम खाय गया यह निपट अदा से सोहा है।
गुस्से से भरे हुए उस दिन तुम पढ़ा अजायब दोहा है।।
देकर दुशनाम[११] हँसा जालिम क्या दिल मेरे को मोहा है।
जानी अबरू शमशेरों का बेतरह खाम[१२] यह लोहा है।।६५।।

---

१. चिड़िया पकड़ने का चिपकना पदार्थ २. उद्दण्ड ३. चमकाया, ४. तरफ, ओर ६. बाँस की तीली ५-७. पतंग का एक अंग ८. पतंग का किनारा, उस पर बँधी धज्जी ९. भँवर १०. वक्रता, टेढ़ापन ११. बुरा नाम, बदनामी १२. खालिस, कच्चा।

छबि बल के तले फिरिश्ता भी तू अभी जहाँ को जान गया।
मुख चन्द्र किशोर अलक लटकन अरु ऊपर से दै पान गया।।
लब लख जानी के रंग भरे लालों का सहज गुमान गया।
मैं बहुत छिपाया जानी से वह बात नेह की जान गया।।६६।।

जानी श्रमकण से भरा हुआ उमड़ा ज्यों रंग बहारों से।
कुछ शम्स[1] किरण से सुरख हुआ चेहरा मिल गया अनारों से।।
सरसीरुह[2] शीतल खूब बना मोतिन के हुस्न हजारों से।
निस्फुल[3] निहार[4] में छिपा हुआ है शरद चन्द्रमा तारों से।।६७।।

रँग जरद जाफराँ चीरे की दिलजान चुनावट चोली है।
अबरू अबीर सों मिली हुई यह भी उपमा अनतोली है।।
दिलजान कुमकुमे हाथों में अरु हँस हँस कर यह बोली है।
मुद्दत[5] में आज नजर आया अब कहाँ जायगा होली है।।६८।।

यह अजब लहर है दरशन की देखै जो कोई आन लियें।
मुसक्याता पान चबाता सा अबरू खमदार कमान लियें।।
मिजगाँ के हैं वर शान धरैं क्या अर्जुन के से बान लियें।
होली में मुझे नजर आया जानी झोली पकवान लियें।।६६।।

क्यों जान सहज में चीरै है काशी करवट के आरों से।
फलता है सुफल मनोरथ अब कट जा इन साफ दुधारों से।।
इन सेती बचा न छोड़ूँगा तुझको मिजगाँ के खारों से।
बिस्मिल हो जल्दी तड़प जरा मेरी अबरू खमदारों से।।७०।।

---

१. सूर्य २. कमल ३. आधीरात ४. कुहरा ५. बहुत समय।

जो तैं देखा सो अब न और है आठों पहर गुमान लिये।
खंजन से नैन वचन मीठे चपलाहट वर सरसान लिये।।
तू क्यों गलियों में फिरता है जाता रहु अपनी जान लिये।
जानी को जिस दम देखैगा हाथों मे तीर कमान लिये।।७१।।

सुन शीतल सुघर अरे मेरी जेते जहान में आब[१] पड़े।
वे शब्द ब्रह्म के सोते हैं सब अलफ[२] रूप गिरदाब पड़े।।
मिल एक दोय अरु तीन बहुत हरफों के लुगत[३] सबाब[४] पड़े।
होते हैं फिर मिट जाते हैं ग्रन्थों के वृन्द हुबाब[५] पड़े।।७२।।

कुछ कैसी हवा चलाते हौ हर दम चुंगल[६] नामरदी का।
हिम सीकर लहर कटार नोंक अरु मजा भरा बेदरदी का।।
खिल रहे बसन्त मधुप गुंजें तुझ याद माह फरवरदी[*] का।
हाथों से जानी जाता है तुझ बिन यह मौसम सरदी का।।७३।।

तुझ चरण कमल की अँगुली के नख पंच कला को धरते हैं।
इच्छा नभ काल चिनमई तक फिर शुद्ध रूप अनुसरते हैं।।
तेरे ही पाँच परत वे हैं अपनी आज्ञा को भरते हैं।
मुखत्यार[७] जानमन तेरे ही सब अपना कारज करते हैं।।७४।।

इच्छा जो छिन में गुम्मज की तसबीर करोर बनावै है।
नभ तत्त्व देव इन्द्रीगण को असमानी मजा दिखावै है।।
माजी[८] मुस्तकबिल[९] हाल करै यह भेद न कोई पावै है।
चिनमई जीव अरु माया को बाँधे फिर शुद्ध छुड़ावै है।।७५।।

---

१. जल, पानिप २. हरी घास, चारा ३. शब्दकोश ४. पुण्यफल ५. पानी का बुलबुला ६. पकड़ ७. स्थानापन्न अधिकारी ८. भूतकाल ९. भावी, भविष्य। * सम्भवतः 'फरवरी' मास।

समझै न बूअली सीना सा जो मेरी तेरी घातें हैं।
दिन को खुरशैद[1] नजर आवै फिर वेई अँधेरी रातें हैं।।
सब यार कोइ कोइ दिन का है आशिक की दोई जातें हैं।
नीचे ऊँचे हो मिलते हैं जानी से हर दम बातें हैं।।७६।।

सुन लाल बिहारी ललित ललन फूलों की गेंदें खेलैगा।
सनमुख यह देह निशाना है दिलजान कहाँ तक पेलैगा।।
आँखों से आँखें भिड़ी रहें इस रूप रंग को झेलैगा।
यह मजा उसी को मिलता है जो खाक शीस में मेलैगा।।७७।।

अरविन्द चरण पर चम्पकली दल चारु चन्द्रमा चमकें हैं।
कुन्दन जंजीरों में हीरे माणिक के चौके झमकें हैं।।
बिन देखे सूझै क्यों दिलबर जो इश्क पेच[2] की रमकें[3] हैं।
इस लाल बिहारी के नूपुर क्या दामिनि की सी दमकें हैं।।७८।।

धाधा किट धाकिट थिरर थिरर थुं थुं थहरट की लाजन है।
त्यों झुन झुनकारें झुनक झुनक कुछ तिरहट की सी गाजन हैं।।
सातौं सुर तीनों ग्राम मिली क्या मदन दुन्दुभी साजन है।
आवाज तुम्हारी कान बसी जैसी नूपुर की बाजन है।।७९।।

मुख शरद चन्द्र मकरन्द भरा अरु हँसन प्राण हर लेती है।
पानों की लहर चोंप चुन्नी समझै जी को दुख देती है।।
फूले कदम्ब अरु मालतीन प्यारे यमुना की रेती है।
दरसन कर लाल बिहारी के संसार वासना केती है।।८०।।

---

१. सूर्य २. प्रेम के दाव पेच, इश्कपेंचा—एक सुन्दर बेल ३. हलका झोंका।

चम्पक दल कुन्दन कलियों पर जानी दृग सुरगुरु उदै हुए।
सूरज की किरणें मन्द लगें इलमासी चौके जड़े हुए।।
छबि छद गुलाब के मात पड़े दिलबर विद्रुम दल कढ़े हुए।
नख लाल बिहारी के पंकज दल शरद चन्द्रमा चढ़े हुए।।८१।।

मुख लाल बिहारी का देखें छबि शरद कंज बेआब हुआ।
छोटा मोटा हो श्याम श्वेत अरु छीन पीन महताब हुआ।।
तुझ हुस्न प्रभा के श्वाले से जानी रूपा सीमाव हुआ।
झमकाहट बदन अनौखे का लखि वर्क तिल्लई आब हुआ।।८२।।

मोती गण गूँथी गोल सुघर छबि जाल रेशमी मेलनि पर।
ऊँची नीची हो प्राण हरै दुति रूप सुधा रस झेलनि पर।।
बिन देखै समझै नहीं यार चित पार हो गई हेलनि पर।
इस लाल बिहारी जानी की कुर्बान गेंद की खेलनि पर।।८३।।

आँखों से देखै सौसन सी तन लगि चम्पक बेआब हुई।
नख चरण चन्द्रमा की किरणें लखि जरीतार बेताब हुई।।
मुख शरद चन्द्र पर नजर गई जानी हर दम महताब हुई।
बेतरह जान को लेती है हाथों में गेंद गुलाब हुई।।८४।।

रँग भरा छबीला नोंकदार गजदसन उदै रँग रट्टू की।
डंडी से मछली मिली हुई रेशम जरतारी पट्टू की।।
खैंचन अरु भौंह कसी सँभरन फेंकन धरनी पर बट्टू[1] की।
सब सुर तमाम कर चित्त धरी गुंजन इस बंगी[2] लट्टू की।।८५।।

---

१. काला चिकना गोला २. चंचल।

है गोल छबीली सुघर पुंज अलि गुंज रसीली घेरन पर।
रेशम की डोरी लगी हुई जानी असमानी हेरन पर।।
ये खेल खिलौने रसदौने अनहौने टौने टेरन पर।
बेतरह चित्त फिर जाता है जानी चकई की फ़ेरन पर।।८६।।

बे तरह तीलियाँ साफ करीं अरु सुरख हरित रँग जालों के।
रँग भरी पेचवाँ लगी हुई जलदान तिल्लई[१] चालों के।।
सुरखी अरु बूँद कुहुक[२] फटकनि जी लैहै मारे हालों[३] के।
इस लाल बिहारी जानी के बेतरह पींजरे लालों[४] के।।८७।।

चोंचों से चोंचें जोड़ दईं बेतरह रोस के रवा हुए।
काढ़े पर लुंचित लोम शीश ये हालाहल के हवा हुए।।
सीने को ढाल बनाते हैं ये लाल तुम्हारे लवा[५] हुए।
क्या फिर पीछे पग देते हैं रन पक्षिराज के छवा हुए।।८८।।

गुल सोसन नरगिस इश्कपेच मोतिया मोगरा सींचे की।
चम्पक गुलाब दल मदनबाण शोभा के सिन्धु उलीचे की।।
पन्ना सिकन्दरी मायल है जो देखै आभा नीचे की।
जिन देखी सोई जाने है जानी के सैर बगीचे की।।८६।।

सन्तरा जँह्मीरी नीबू तक अरु अनन्नास इकसार किये।
दाड़िम बादाम सेव खिन्नी आड़ू सफ्तालू यार किये।।
सब तरु हलाय फल जिमीदोज[६] जानी नव ललित बहार किये।
खाये बख्शे तैं औरों को हम सेती सजन उधार किये।।६०।।

---

१. सोने का सुनहरा २. चहक, कूक ३. झूमना, झोंका ४. लाल रंग की एक छोटी चिड़िया ५. एक पक्षी ६. भूमिस्थ।

तुझ अधर अरुण नग जगमग छबि मकरन्द कर दिया मीना सा।
पानों की सुरखी कहर करै रखते हैं विद्रुम कीना सा।।
जौहर बिम्बा बेआब हुए अरु जपा पुहुप दल छीना सा।
मुसक्याता हुआ लखै तुझको टल जाय बूअली सीना सा।।६१।।

जानी जब से इन गलियों में लब तेरा सुघर हकीम हुआ।
मरने से बचे तलफ छूटी शाफी[1] हर एक सकीम[2] हुआ।।
तेरे कामत[3] को देख सजन झुकि अलफ सरनिगूँ[4] मीम हुआ।
मालूम हुआ दिल मेरे पर जालिम तू दुरे[5] यतीम[6] हुआ।।६२।।

नग अधर अरुण रस रंग भरे मकरन्द रहा छबि मीना की।
पानों की सुरखी कहर करै लहरें ज्यों लाल नगीना की।।
जाना यह परख जवाहर की ह्याँ पहुँचे सुरति प्रवीना की।
या अकल होश दीमाग जहन[7] चुप रहे बूअली सीना की।।६३।।

ललिता के ललित ललित पुनि ताके कलित बलित रँग बोरे से।
घूँघट पट खुलत पलक पलवें मनु जाल फन्द मृग छोरे से।।
कहि शाह सिचानक[8] जरबारे[9] ढरवारे मदन झकोरे से।
ठहराते जेब छोभ छहराते लगे दुचोवट[10] कोरे से।।६४।।

जरबीले नैना अजब जोर झझकारें[11] झझकि झझकि[12] झपटैं।
चटकीले चटक खटक दिल अन्दर दिल कपटी न कलम कपटैं।।
भनि अतक शाह दहके दहकीले दन्दाँगिरी[13] करत दपटैं।
ललकें लखि लखि लखि ललकें मन यह ललक दामिनी की लपटैं।।६५।।

१. आरोग्यदाता २. निष्ठुर, भाग्यहीन ३. लम्बा शरीर ४. नतशिर ५. उत्तम मोती ६. बेजोड़ ७. बुद्धि ८. बाज चिड़िया ९. चोट करने वाले १०. चारों ओर ११. भड़काते हैं १२. भड़ककर १३. उपद्रव।

विरहीन जोर बरजोर मुसाफिर निरखि निरखि धर पटकत हैं।
इतने पर दया नहीं बेदरदी दाहि दाहि दिल खटकत हैं।।
भनि अतक शाह रस भरे भभक अति मुदित मोद मन भटकत हैं।
चमकें चित चतुर चारु चंचल चकचौंध चहचहे चटकत हैं।।६६।।

सरसात पात अरु खिले कमल छबि छलक छलक मद मस्ते से।
भौंरा रस आस-पास अटके युग रहें कैद हो फँस्ते से।।
भनि अतक शाह अटके अंजन गुण खंजन छुधित तरस्ते से।
अनियारे ऐन[1] वार डारों सब हैं दराज[2] दृग हँस्ते से।।६७।।

जानी तुर्रे की हलन अजब किरणें जी भीतर अड़ती हैं।
रवि रूप प्रभा से मिली हुईं चौगुनी चुन्नियाँ जड़ती हैं।।
चौंधें सब चित से निकल गईं जब झमक तिल्लई गड़ती हैं।
तारों की छुटन छुटन मुख पर दिनकरी मयूषें[3] झड़ती हैं।।६८।।

है सुरख जरद अरु हरित श्याम सित बाँधी लहर जँजीरे की।
तीनों गुण सहित विकार रहित बूँदें ज्यों कनियाँ हीरे की।।
उस अरुण घटा में छटा सहित मुख सुरख अरुणई बीरे की।
जानी कहु कैसे भूलैगी यह जरब बाँधनू चीरे की।।६६।।

उस करम रूप को भूल गया जब से दिल को आराम हुआ।
दरसन तेरा दिलजान सही दिल को जमशेदी जाम हुआ।।
देखे सब लोक अलोक पन्थ यह जिकर सुबह अरु शाम हुआ।
मुख शरदचन्द्र दिलजानी का लखि मेरा पूरण काम हुआ।।१००।।

---

१. हिरन २. लम्बे, दीर्घ ३. किरणें।

जाने को जगह नहीं जग में वह निगह[1] चित्त को घेरै जब।
अलबेला कुँवर छैल दिलबर चित चारु पीत पट फेरै जब।।
मुरलीधर मदन मुकुन्द हरी तेरी रसना यह टेरै जब।
मन काम वासना पूरण है हँसने में फूल बखेरै जब।।१०१।।

जानी तुझ झलक दशन कौंधें लखि-लखि हीरे हहराते हैं।
मोती छाती में छेद करें बाअदब[2] खड़े थहराते हैं।।
चुन्नी की चोप चटक दिल में बिजली कण छबि छहराते हैं।
दिलबर तेरी यह हँसन लसन शशि किरण पुंज लहराते हैं।।१०२।।

वरणन जो करौं कहीं दीखै थकते हैं पर[3] ह्याँ बानी के।
जो पराशक्ति अहलादा है अरु चिदा चिन्मई शानी के।।
नख-चन्द्र समूह स्वेत किरणें कटते हैं तम अज्ञानी के।
गोलोकवासिनी प्राणसखी पद लक्ष चक्र रथ रानी के।।१०३

माया अरु वधू बीज जाके हैं काम राज रजधानी के।
कर्पूर बाग भव षोडश पद अध ऊरध कला बखानी के।।
वह राधा सुरा सुधा जानो अधिकारी जैसे पानी के।
वरणन कर शीतल चित्त सोध पद लक्ष चक्र रथ रानी के।।१०४।।

हंसों की चोंच सु चुन्नी में अरु चखन चकोर समाय रही।
विद्रुम बंधूप दल बिम्बी में बन्दन के फूप सजाय रही।।
जानी दिल के अनुराग बीच किंशुक[4] के बाग बनाय रही।
दिलबर पैरों के तलवों की सुरखी सब बीच समाय रही।।१०५।।

---

१. निगाह, दृष्टि २. सम्मान सहित ३. पंख ४. पलाश

कोमल अरुणारे सरस पुंज गुंजत अलि सुभग सुधारे हैं।
शरणागत वत्सल जग जाने ये दीनबन्धु उजियारे हैं।।
अघहरण कलुष* के नाश करन मन हरण सन्तजन प्यारे हैं।
सुन लाल बिहारी चतुर छैल अलबेले चरण तुम्हारे हैं।।१०६।।

पंकज से बिजली लिपट रही शोभित शोभा की भीरें हैं।
नौरतन जड़ाऊ बेल खिंची मनमथ के मन को चीरें हैं।।
नीचे मुक्ताहल लगे हुए उपमा की लगी बहीरें[1] हैं।
शिशुमारचक्र[2] के तले कहीं उड़गण की जटित जंजीरें हैं।।१०७।।

कुछ ललित शारदा वीणा से बाजे सुरपति के यार कहीं।
कै मदन मन्त्र पढ़ि कोक कला बोलै है बारम्बार कहीं।।
जानी ये बीज वशीकर के मनहरण सुधा रस धार कहीं।
तुझ चरण धरण में झनक मनक बोली घुँघुरू झनकार कहीं।।१०८।।

जरदोजी बूटा बेल खिंची गुल किरण चित्त में आय अड़ी।
मोती की झालर गिरदनुमा ज्यों तारागण की गुही लड़ी।।
मखमल से गोटा लगा हुआ बिच-बिच चुन्नी की चोंप जड़ी।
देखे से दिल बेताब हुआ जानी की कौस जड़ाव जड़ी।।१०६।।

दल सरद कंज के पाँच खिले दिलबर दाड़िम की कलियाँ सी।
कै पंचबाण के तरकश की पाँचौं कोरें रस रलियाँ सी।।
कै पंच शक्ति कंजासन तें ये कड़ी रमा की अलियाँ सी।
अँगुली पाँचों रसभीने की ये मदनबाण की कलियाँ सी।।११०।।

---

१. भीड़ २. सौर-मण्डल। * पाठान्तर – कली।

पंकज पर बीरबधू बैठी मिट जाय देख दुख-द्वन्द कहीं।
कुन्दन पर माणिक जड़े हुए यह उपमा लागे कुन्द[1] कहीं।।
भूतनय रमा के घर आये सुन बैठ रहे मुख मुन्द कहीं।
शमशाद[2] बेखसे गुल आनौ जानी मिहँदी के बुन्द कहीं।।१११।।

समझै दोनों दुख दूर करै जानी का यह सुखकन्द चमन।
⊛रसगुण शशि[3] छन्द बनाय रचा यह प्यारे का आनन्द चमन।।
समझै न बूअली सीना सा समझैगा क्या दिल बन्द चमन।
इस लाल बिहारी जानी का सुख रूप हुआ दुखकन्द चमन।।११२।

इति श्रीशीतलदासजी कृत आनन्द–चमन सम्पूर्णम्।

---

१. मन्द २. सरो, एक लम्बा पेड़ ३. १३६ छन्द।

⊛ टिप्पणी– प्रतीत होता है कि कवि ने केवल दो चमन लिखे हैं, गुलजार चमन और आनन्द चमन। बिहार चमन स्वतन्त्र रचना नहीं, क्योंकि आनन्द चमन के ११२ और बिहार चमन के २४ छन्द मिलाकर १३६ होते हैं।

श्रीमन्नित्यनिकुञ्जविहारिणे नमः।

श्रीस्वामी हरिदासो विजयतेतराम्।।

अथ बिहार-चमन लिख्यते।

हीरे से दशन हँसन माणिक विद्रुम अधरों से अड़ते हैं।
मुख सम्पुट जड़ा जड़ाव लहर चुन्नी के चौके जड़ते हैं।।
मुसक्यान बिहारी का शीतल बेली के गुंचे गड़ते हैं।
लब लाल बदख्शाँ से जानी हँसने में मोती झड़ते हैं।।१।।

नख चमकें ललित सितारे से पहुँची लखि छबि से छाय गया।
दुति हीरेनुमा अँगूठी की नग जी के बीच समाय गया।।
मिहँदी के रँगे हुए पोरे दिलदार अचानक आय गया।
जानी का हाथ नजर आया दिल हाथों हाथ बिकाय गया।।२।।

कुन्दन माणिक से जड़ी हुई यह रची बूअली सीने की।
नीलम माणिक पुखराज लगे लहरें इलमास नगीने की।।
सुरपुर से सुरपति चाहै है देखों मैं जाय प्रवीने की।
अलसाता हुआ नजर आया है छड़ी हाथ में मीने की।।३।।

सूरज की किरणें उदै हुईं आईं सब फैल दरीचे[1] में।
गुल नौबहार[2] लहलहे हुए जे प्रेम सुधा रस सीचे में।।
सब्जे[3] का रंग जवाहर सा जब नजर पड़ गई नीचे में।
अलसाता हुआ नजर आया जानी जगमगन बगीचे में।।४।।

तुझ तन सुगन्ध से घायल हो केतकी केवड़े पट्ट हुए।
खारों के तेशे[4] सीने पर जड़ते गुलाब रँग घट्ट हुए।।
कचनार चम्पई मृगमद से घनसार अरगवाँ ठट्ट हुए।
बेहोश मद छके गुंजें हैं जानी भौंरों के गट्ट हुए।।५।।

---

१. एक छोटी खिड़की, मोखा २. नव वसन्त, नया यौवन ३. हरी घास,पन्ना ४. कुदाल।

जिस दिन तू गली हमारी में जानी भूले से पाँय दिया।
मधु भरे मधुव्रत गुंज उठे खुशबू से आँगन छाय दिया।।
कशमीर पानरी खस गुलगूँ[1] मजमुआ[2] अतर बरषाय दिया।
अब लग सुगन्ध नहिं जाती है मानौ गुलाब छिड़काय दिया।।६।।

काटे से मरा न ऐ जालिम नहिं इस घायल की पीर गई।
सब मन्त्र तन्त्र अरु यन्त्र जड़ी जानी इसके नहिं तीर गई।।
गाड़रू हजारों फिरते हैं लाखों जहरों की भीर गई।
जानी की जुल्फ नागिनी है दिल दरदमन्द को चीर गई।।७।।

जानी की कोर किनारी की चौफेर गिरद जगमगी हुई।
तिनमें मोती गण गुच्छ गुहे दूजी उपमा रगमगी हुई।।
संजाफ[3] लगी दरयाई[4] की सौंधे भीनी सगबगी हुई।
चपलाहट पर कुरबान गई दामन[5] पर बिजली लगी हुई।।८।।

कहते हैं लोग जुन्हाई[6] सी मुसकान चन्द्रिका छाई है।
मुख शरद चन्द्र से छूट चली जानी त्रैलोक लुनाई[7] है।।
हरदम बेताब कोई होलो जिन पाई है तिन पाई है।
इस लालबिहारी की बिहँसन भीतर कुछ गजब इलाही[8] है।।६।।

बेतरह जानमन[9] बाँधा है शिर ऊपर फेंटा काही[10] सा।
जीगे[11] की लहर कहर मोती नौरतन जड़ाऊ माही[12] सा।।
मुसक्याता करणफूल धरना हरना चित मदन दुहाई सा।
जानी सुरमे की स्याही में हैगा कुछ गजब इलाही सा।।१०।।

---

१. गुलाबी २. समूह, कई प्रकार के इत्र ३. गोट, ४. रेशमी कपड़े का एक प्रकार ५. आँचल, छोर ६. चाँदनी ७. सलोनापन ८. ऐश्वर्यमयी ६. प्राणप्रिय १०. स्याही लिये हरा रंग११ सिरपेंच १२. मछली, मीनाकार।

कुछ जरीतार का गुच्छा सा हीरों का हार समान लिये।
मोती की लड़ियाँ फीकी हैं चुन्नी चित में कुर्बान लिये।।
आता है अभी इसी रस्ते वह अर्जुन के से (यू)बान लिये।
कहता है मैं भी देखोंगा जावैगा घर मुसकान लिये।।११।।

जानी तेरी सौं बहुत मिले जिन्ने यह इलमे[१] सैफ[२] पढ़ा।
आतश तुझ यार बिछुड़ने की हालत पर सब ने हैफ[३] पढ़ा।।
लोटै है हरदम बिजली सा श्वाला भौं चम्पा दैफ[४] पढा।
दबता है कोई जाहिद ने सौ बार अलफ[५] तर कैफ[६] पढ़ा।।१२।।

कानों पर गुललाले के गुल नाफरमाँ बिन्दु सुहाया है।
नरगिसी कटोरी आँखों पर अरगवाँ अंग छबि छाया है।।
जिन्नत गुलदस्ता खड़ा हुआ जिसकी जहान पर छाया है।
जानी इस सैर बगीचे की तू आज इसी ढब आया है।।१३।।

फूलेंगे चारों ओर चमन अरु मदन पंचसर साजेंगे।
शीतल सुगन्ध छबि मारुत की राका शशि उड़गन लाजेंगे।।
बाजैं* सुधंग नभ मंडल में रम्भा के रणित बिराजेंगे।
पग धरन लटक मुसक्यान मन्द जानी के नूपुर बाजेंगे।।१४।।

हीरे की कनियाँ जड़ी हुईं छबि जोति जवाहर जैसे हैं।
बूटे में नक्शा दिल जाने बरणन क्या कीजे कैसे हैं।।
आवाज आह से मिली हुई क्या सहज बजावन तैसे हैं।
इसके आगे फिर तूही है जानी के नूपुर ऐसे हैं।।१५।।

---

१. विद्या २. तलवार ३. शोक ४. लुढ़कना ५. संकट ६. नशा, आनन्द।
* पाठान्तर—बागैं, बोलना।

जो शब्द ब्रह्म के सिन्धु सोत नित ही प्रति बाजैं रनक मनक।
कुछ षड़ज ऋषभ से मिले हुए सातों सुर भीतर गनक मनक।।
रम्भा अरु सची लटक तड़फन पावे न आन भर छनक मनक।
प्यारे इसरार[1] इलाही[2] है जानी नूपुर की झनक मनक।।१६।।

मजमुआ अतर से भरा हुआ जानी भौंरों का नायब सा।
लगते ही कभी बूअली हो सब होश अकल का गायब सा।।
नौरतन जड़ाऊ गोल गिरद वरणन करि देखा साहब सा।
झमकाहट दिल को साफ करे तेरा शिर पेच अजायब सा।।१७।।

इलमासी चौके जड़े हुए दिलबर हीरों के गोत कहीं।
नग हरित मणी पुखराज अरुण दुति कोटि चन्द्र छबि होत कहीं।।
गिरदाब जवाहर जड़े हुए देखे हैं भला उदोत कहीं।
तू आफताब में जरा[*] होय दिखला दे जगमग जोत कहीं।।१८।।

जिसको दुख भंजन कहते हैं अरु आठ मेल का रंजन है।
बिन इच्छा कोश भिन्न निर्गुण अरु मायातीत निरंजन है।।
समझै न बूअली सीना सा प्यारे यह बड़ा लुकंजन[3] है।
मेरी आँखों में पैठ देखि जानी तेरा ही अंजन है।।१६।।

यूसुफी सितारे पाँच चढ़े अरु सबसे ऊँची आन चढ़ी।
अबरू कशीश[4] खमदार हुई जैसी कमान मुलतान चढ़ी।।
जुल्फों की लहर अतर भीनी नागिन की सी लहरान चढ़ी।
बेतरह जान को लेती है जानी की चित मुसकान चढ़ी।।२०।।

---

१. रहस्य २. ईश्वरीय ३. छिपने वाला ४. खिंचाव।
[*] जर्रा – अणु, त्रिसरेणु, जरासा, बहुत थोड़ा।

चीरा गुलाब के अतर मला कर में हीरे का छल्ला सा।
माथे पर बेंदी स्याह सुभग आँखों में सुरमा घुल्ला सा।।
पानों की लहर कहर बिहँसन अँग-अँग चम्पा दलमल्ला सा।
मालूम नहीं यह है किस पर जालिम महबूबी हल्ला सा।।२१।।

चन्दा को बिजली लिपट रही क्या बिजली चन्दा घेरी सी।
या शिव के शीश तरंग गंग छबि है अनियार हनेरी[1] सी।।
हरतार[2] मुकेसी की प्यारे हैं सूरज किरणें चेरी सी।
क्या साफ जान कूँ खाती है टोपी पै धनुष रुपेरी[3] सी।।२२।।

ता सीप समुन्दर का मोती जानी के लटकन पड़ा हुआ।
सुमेर गढ़ पर्वत का सोना खासे कारीगर गड़ा हुआ।।
सुरख सब्ज अरु नील सुनैरी ऊदी चुन्नी जड़ा हुआ।
लटकै था पड़ा अधर नथ में जानी के लटकन कड़ा हुआ।।२३।।

सुन शीतल सुघर अरे मेरी तेरा भी धीरज रहा नहीं।
दिल इश्क विरह के नेजे[4] ने चितवन का तेजा सहा नहीं।।
अलसाता हुआ न देखा तैं जीवन का लाहा लहा नहीं।
फिर क्या उपमा तू देवैगा चल परे सरक जा कहा नहीं।।२४।।

इति श्रीशीतलदासजी कृत बिहार-चमन सम्पूर्णम्।

---

१. मारक २. एक प्रकार का पीला रंग ३. चाँदी की ४. भाला, बर्छी।

श्रीरसरंग जी कृत परम धाम-तत्त्व

कर इक याद भई रे भाई कहौं सखुन[1] इक और।
बसरी और फुरकानि हूँ की तहाँ न इनकी दौर।।१।।

चौदह तबक[2] हैं या विराट में तामें तीनौं देवा।
जेते जीव जहान तिते सब करत इन्हीं की सेवा।।२।।

ता आगे सुख और बताऊँ जहाँ मियाँ[3] का डेरा।
आलमीन अल्लह जहाँ बैठा सबका करै निबेरा[4]।।३।।

ता आगे सुख और बताऊँ जहाँ रमापति राजैं।
वेद कितेब कहें ह्याँ ही लौं आगे फिर जिय लाजैं।।४।।

ताके आगे ज्योति निरंजन इन सबही कौ मूल।
सप्त शून्य फिर और बताऊँ मेंटै सबकौ शूल।।५।।

ऊपर अक्षर ब्रह्म अपारा जाकर सकल पसारा।
सो तौ है आभास धाम का जानत जाननहारा।।६।।

सो तौ है गोलोक अनेकन राम कृष्ण जहँ दोऊ।
करि सतसंग जाय कोइ बिरला बड़ी पहुँच जो होऊ।।७।।

क्षर अक्षर निःअक्षर छाँड़ै तजै अक्षरातीत।
आगे हंस हिडम्बर[5] बैठ्यौ सत्त सुकृत कौं जीत।।८।।

ताके आगे और पुरुष है वाका रूप अगाधा।
जाकौं कोई जानत नाहीं ना काहू आराधा।।९।।

---

१. सुखन–उक्ति, कविता २. तल, तह, परत, लोक ३. आदरणीय, स्वामी, ईश्वर
४. निबेड़ा–छुटकारा, निबटारा, निर्णय, पूर्ति करना। ५. हंस पुरुष

ताके आगे और पुरुष है गहे आपनी टेक।
इन सबहिन कौं करै सकेला[1] रहै अकेला एक।।१०।।

हद बेहद बेहद के आगे एतौ सब कहि आये।
कोटिन ब्रह्म प्रेम कोटिन पर जहँ कोउ गये न आये।।११।।

ताके आगे रास विलासी रूप रंग अनियारा[2]।
रहै पास नायब[3] नहिं जानैं यह तौ अचरज भारा।।१२।।

व्हाँ तौ देखौ रूप सुभानी[4] व्हाँ तौ अजब तमासा।
सखी समूह रहैं बीचहिं में जाय न कोऊ पासा।।१३।।

पक्षी मधुकर सब्द न पहुँचै जहँ नहिं सोर सराबा[5]।
बाजे जिते तहाँ नहिं बाजैं ताल मृदंग रबाबा।।१४।।

सो तौ निधिवन राज बिराजै रंगमहल ता माहीं।
श्रीस्वामी हरिदास बतायौ कोऊ पहुँचत नाहीं।।१५।।

साँची सरन लेय स्वामी की सो तौ पहुँचनि पावै।
नातर रहै बीच ही हिलग्यौ[6] कोटि कलप नहिं जावै।।१६।।

श्रीगुरुदेव कियौ निरधारा सो तौ पढ़ियौ बानी।
ललित किशोरी धरौ हृदै में समझौ अकथ कहानी।।१७।।

दोहा- ललितमोहिनी दया तें, दरसायौ रस रंग।
रसरंग छबि बाँकी लखी, झाँकी नव-नवरंग।।

।। इति श्री रसरंग जी कौ पद सम्पूर्ण।।

---

१. समेटना २. अनेरा, स्वच्छन्द, निरंकुश ३. सहायक ४. सुब्हानी, पवित्र, ईश्वरीय ५. हल्ला-गुल्ला ६. अटका हुआ।

वचनिका-सिद्धान्त
टीका-वचनावली

श्रीमन्नित्यनिकुञ्जविहारिणे नमः।

श्रीस्वामी हरिदासो विजयतेतराम्।।

अथ श्रीस्वामी ललितकिसोरीदेव जू कृत वचनिका-सिद्धान्त की श्रीस्वामी सहचरीसरनदेव जू कृत टीका-वचनावली

मंगलाचरन

साखी– बन्दौं गुरु पद प्रीति जुत, श्री आलय सुखदान।
तन मन सन्मुख होत ही, सब दुख दूर सुजान।।१।।

सोरठा– मेरौ मन बिछुरै न, चरन सरोजनि पास तें।
ज्यौं जुड़ाफ सुख चैन⊛१,त्यौं ही निसिदिन मानियौ।२।

कवित्त– बन्दौं चरन वर सरस हरिदास जू के,
पुंडरीक वृन्दनि कौं जीति सोभा लीने हैं।
नवल नवेलि नित्य केलि सर तें मानौं,
रसिक समूहनि के हंस मन कीने हैं।।
दीपत निकेत सत्त के प्रकासवंत,
चित्त काल गन भोर पाप भय छीने हैं।
अति ही उदार सुख सागर* न वारापार,
सेवत विचार जेई परम प्रवीने हैं।।१।।
जग में प्रसिद्ध सिद्ध साधक समाधि लावैं,
धरम धुरीन औ अधीर* करि गाये हैं।
परम प्रवीन पर स्वारथ परायन हैं,
भव से समुद्र पार जाय कैं बताये हैं।।

⊛ पाठान्तर–नैंन। * सुख देत। * सधीर। १. जुर्राफ पशु दम्पति जब चलते हैं, तो सम्मुख नेत्र मिलाकर चलते हैं; उन्हें बहुत सुख-चैन मिलता है।

संकर गनेस हरि सेष हू प्रसन्न जानौ,
दरसे अखंड तेज मन्दर लसाये हैं।
तौपै हू न पावैं हरिदास कौ बिहार चार,
अति ही उदार सुख सागर सुनाये हैं।।२।।
ललितकिसोरी वर मुख तें प्रगट भरी,
वचन समूह सुख सम्पति बखाने हैं।
तेई लिख लीने सो गुपालबंस कोविद ने,
जीवनि उधारिवे कौं प्रीतम सुजाने हैं।।
वेद औ पुरान गुन गावत सनेति नेति,
देत हैं उदार सोई काय मन माने हैं।
सबकौं अगम्य है बिहार हरिदास जू कौ,
तातें उर धारि बेगि मिलिवौ असाने[१] हैं।।३।।

साखी– जानौ बंस गुपाल कौ, तन मन रसिक प्रवीन।
ललितकिसोरी चरन में, सदा रहै लव लीन।।
तिन कीनौ जिग्यास वर, परम प्रेम जुत आय।
भई प्रगट वचनावली, अति सब ही सुखदाय।।
यह वचनावलि सरस वर, सब ग्रन्थनि कौ सार।
ताकौ दोहनि चौपाई, करियतु विमल विचार।।

कवित्त– किधौं यह मोहन सुजान कौ है अंग,
किधौं प्रेम सुख सागर विचारि कैं बनायौ है।
जग में प्रसिद्ध महामन्त्र मन मोहिवे कौं,
स्वामिनी कौ प्रान कै महान हिय गायौ है।।

---

१. सुलभ।

चन्द्र औ सूर कै प्रकास कीनौ तम हियें,
अतिसै प्रचंड अरि काल कौ कि आयौ है।
लैन कौं पठायौ मानौं सुन्दर सुहायौ वर,
प्रीतमै जु भायौ किधौं ग्रन्थ सरसायौ हे।।

वचनिका-सिद्धान्त—

सिद्धान्त सब सारनि कौ सार श्रीमुख सौं श्रीस्वामी जू ने काहू-काहू समय कह्यौ, सो जितनौ सुनौ, मेरी बुद्धि में समायौ, प्राकृत भाषा में लिख लियौ; जो तत्काल समझ्यौ परै। जैसैं अमोलक लाल झीने पट में धरिये तौ सबकी दृष्टि में आवै। ऐसें यह रतन अमोल जो कोटि जतन कीजै तौऊ हाथ न आवै, सो सुगम-सुलभ दिखरायौ। जापर श्रीललिता जू की पूरन कृपा दृष्टि होय, ताकौं दिखरावनौ। कदाचित् और कूँ दिखरावनौ नहीं। जैसैं महारंक-अति कृपन अगनित धन पावै, ताकौं छिपावै। ऐसे या सिद्धान्त कौं राखै। कोटि-कोटि मंत्र या सिद्धान्त के ऊपर न्यौछावर करिवे योग्य हैं। यातें परे कछू सिद्धान्त रह्यौ नाहीं। जो समझै सो निस्चय परम पद, जा पद कौं कोऊ ना पहुँचै; ताकौं पावै। नित्य वस्तु दरपन सी दिखराई है। जो अनन्त सास्त्र, बानी आचार्यन की भली भाँति सुनै, पढ़ै; तौहू ऐसी निःसन्देहता कौ निरूपन न पावै। एक श्रीस्वामी जू की उदारता सौं महाकठिन वस्तु हाथ परी, सब उपासकन सौं विनती है, याकौं अपने हृदय में राखनौ।

श्रीमद्भागवत कौ सार श्रीकृष्णचन्द्र ने कह्यौ– जैसौ मोकूँ ज्ञानी प्यारौ है, ऐसौ और नाहीं। फेर कह्यौ– भक्तनि के पाछैं फिरत हौं चरन रज के निमित्त, तातें पवित्र होत हूँ। दोनों वचन में भक्ति की अधिकता प्रगट है। भक्तनि में उद्धव सौं कही– तू मोकौं जैसौ प्यारौ है; लक्ष्मी नाहीं, बलदेव जू नाहीं, मेरौ सरीर नाहीं; तू मेरौ ह्रदय है। यातें परे भक्ति कौ स्वरूप नाहीं। सो उद्धव बाँछा करैं हैं– श्रीवृन्दावन की गुल्म लता होंहि, रज श्रीवृन्दावन की सीस पर परै। उद्धव जी श्रीकृष्णचन्द्र के सन्मुख विराजत हे। यातें परे और पदारथ कहा होइगौ ? सो श्रीवृन्दावन की रज की अधिकता प्रगट दिखराई। ता श्रीवृन्दावन में प्रिया-प्रीतम कौ बिहार है। ता बिहार कौं श्रीस्वामी हरिदास जू तीन काल अवलोकत हैं। एक छिन अन्तर नाहीं। तातें श्रीवृन्दावन सबतें सर्वोपरि है। ताके उपासकनि में श्रीस्वामी जू सबतें सर्वोपरि हैं।।१।।

टीका-वचनावली –

सब सारनि कौ सार सुमान्यौ। श्रीस्वामी श्रीमुखहि बखान्यौ।।
महाराज कब कबहूँ गायौ । सो जितनौ मो बुद्धि समायौ।।
प्राकृत भाषा में लिखि जोई। यौं ततकाल समझ परै सोई।।
ज्यौं भल लाल अमोलक जानौ। झीने पट में ताहि बखानौ।।
तौ सबही की दृष्टिहि आवै। ऐसें यह वर लाल सुहावै।।

कोटि जतन करि हाथ न आयौ। सो सुलभ करिकैं दिखरायौ।।
जा पर कृपा स्वामि की छाई। पुनि दयाल दृग दृष्टि सुहाई।।
ताहि देहु करि प्रीति सनेहा। और कदाचित हाथ न लेहा।।
महा रंक ज्यौं अति कृपनाई। सो धन अगनित पाइ छिपाई।।
अैसें यह सिद्धान्तहि राखहु। कोटिन मंत्र निछावर नाखहु।।
यातें परे रह्यौ कछु नाहीं। यह सिद्धान्त जानि मन माहीं।।
जो समझै सो निस्चै पावै। प्रेम पदारथ अति मन भावै।।
जा पद कौं पहुँचै नहिं कोई। नित्य वस्तु दर्पन करि जोई।।
आगम निगम सुनौं जो आछैं। आचारज बानी ता पाछैं।।
भली-भाँति पढ़ि लीनौ सबहीं। निस्संदेह हियौ नहिं कबहीं।।
दोहा– एक कृपा श्रीस्वामी की, तासौं मिलौ जो मोइ।
महा कठिन यह वस्तु है, यह जानौ सब कोइ।।
सोरठा–सबसौं यह विनती जु, परम उपासक जे महल।
याकौं अपने हीय जु, महा गुपत करि राखियौं।।

श्रीस्वामीजी कौ वाक्य - भागवत-सार –

श्री हरि वचन ताहि मधि कहऊ। ग्यानी मोकौं अति प्रिय भयऊ।।
ताहि समान और नहिं मेरे। पुनि यह कह्यौ सरस मैं टेरे।।
भक्तनि के मैं पाछैं डोलौं। अंघ्रि रेनु लै पावन बोलौं।।
दोऊ बचन भक्ति अधिकाई। महिमा प्रगटि सु कहि दिखराई।।
चिदानन्द बोले सुख मान्यौ। साधुन में तुम उद्धव जान्यौं।।
जासौं तू प्यारौ अति मोई। प्रान रमा बल अंग न कोई।।
यातें परे भक्त को लहिये। सो उद्धव यह चाहत कहिये।।
वृन्दावन की गुल्म लता सी। होहुँ सदा हरि अन्तर बासी।।

वृन्दावन की रेनु जो गाई। मो सिर उड़ि उड़ि परहिं सुहाई।।
सो उद्धव भक्त कृष्ण के आगें। सदा विराजत प्रीति सभागे।।
और कहा जग में बड़ हूहै। परम पदारथ जानि हितू है।।
वृदावन की रेनु जो लेखहु। ताकी महिमा प्रगट जु देखहु।।
ता वृन्दावन में सुख सारा। प्रिया पीउ कौ चारु बिहारा।।
ता बिहार कौं सेवत स्वामी। तीन काल अवलोकत नामी।।
दोहा– श्रीस्वामी हरिदास सौं, अन्तर कछू न मानि।
तातें यह वृन्दाविपिन, अधिक कह्यौ मन जानि।।
जानि उपासिक बिबिन के, जितने परम प्रवीन।
तिनमें अधिक बखानिये, श्रीस्वामी रस लीन।।१।।

जा समय अर्जुन द्वारिका की रानी लैकें मथुरा जी में आये; तब उनकौं विरह बहुत भयौ। एक दिन जमुना जी के कमल प्रफुल्लित देखिकें पूछ्यौ– तुम विरह में काहे तें प्रफुल्लित भये हौ ? कही– हम सदा उनके साथ हैं। कही– हमकौं ऐसौ साधन बताऔ, जासौं सदा उनके साथ रहैं। कही– उद्धव जी गोवर्द्धन के निकट गुल्म-लता रूप विराजत हैं; वे उपदेस करैंगे। तब वा ठौर जायकैं विलाप कियौ। उद्धव जी प्रगट भये; श्रीमद्भागवत सुनायौ।।२।।

जा समै अर्जुन वर आए। द्वारावति रानी सब ल्याए।।
एक दिना मथुरा में ठाढ़ीं। महा विरह करि गही जु गाढ़ीं।।
जमुना माँझ कमल बहु देखे। रहे फूल वर चारु विसेखे।।
पूछत भईं रानि कुबलेईं। कहौ विरह में क्यौं फूलेई।।

तब बोले हम हरि के अंगी। तब मन जानि महा सुख संगी।।
पुनि बोलीं सब रानि अधीरा। हमें देउ कछु साधन बीरा।।
ताहि साधिकैं हरि कौं मिलईं। बोले कमल सुनौ दुख हिलईं।।
गिरिवर तीर बास है जाकौ। उद्धव नाम लता वपु ताकौ।।
सो उपदेस करहिंगे तुमकौं। सुनत चलीं कहि मिलिहैं हमकौं।।
पुनि वह ठौर विलाप कराई। तब प्रगटे उद्धव सुखदाई।।
दोहा- श्रीभागवत पुरान की, करी परायन जानि।
तिन्हैं सुनाई प्रीति सौं, महा प्रेम सुख सानि।।२।।

एक समय दुर्वासा ऋषि श्रीकृष्णचन्द्र पै आये। कही– तीनि पदारथ दीजै। श्रीवृन्दावन-वास, भक्ति, स्वपच के घर की जूठन। तब श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कह्यौ– श्रीवृन्दावन-वास वृन्दासखी के आधीन है, भक्ति की दैवेवारी आप श्रीप्रिया जी हैं, स्वपच श्रीवृन्दावन में कोऊ नाहीं; सब मेरे ही स्वरूप हैं।।३।।

सोरठा– एक समै छबि रास, दुर्वासा जिहिं नाम कही।
जाँच्यौ कृष्ण जु पास, तीन पदारथ दीजिये।।
वृन्दावन सुख खानि, सुपचन की जूठन भली।
भक्ति महा छबि थान, तब बोले श्रीकृष्ण जू।।
विपिन वास वृन्दा सखि हाथा। भक्ति आप राधे सुख दाता।।
सुपच विपिन में नाहिंन जोई। मेरौ अंग बसैं सब कोई।।३।।

श्रीवृन्दावन धाम की स्लाघा चारौं आचार्य करत हैं। श्रीलक्ष्मी जू नारायन जू सौं सदा बाँछा करति हैं कि हमकौं

ब्रजरज की दासी कीजिये। सो श्रीधर स्वामी ने नाग-पत्नी की स्तुति समय टीका में निरूपन कियौ। ब्रह्मा रज बाँछत हैं, सो पावत नाहीं; महादेव गोपी स्वरूप रास में मसाल दिखावैं हैं; सनकादिक, नारद प्रगट श्रीवृन्दावन के उपासक हैं।।४।।

वृन्दावन की अघट बड़ाई। वेद महान मुखनि करि गाई।।
श्रीपति सौं माँगत जुरि हाथा। ब्रज की दासि करौ मुहिं नाथा।।
श्रीधर टीका मध्य सुनायौ। कह्यौ निरूपन अति सुखदायौ।।
रज बिरंचि बंछित नहिं पावैं। महादेव गोपी है ध्यावैं।।
मंजु कमल कर लियें मसाला। निरखत रास महा सुख जाला।।
सनकादिक नारद भल जानौ। विपिन उपासिक प्रगटि बखानौ।।४।।

निज धाम निज महल कौ आवरन एक जोजन श्रीवृन्दावन; ताकौ आवरन बीस कोस श्रीवृन्दावन; ताकौ आवरन चौरासी कोस ब्रज। बैकुण्ठ, महाबैकुण्ठ, गोलोक आदि धाम ऊपर के; जगन्नाथ, बद्रीनाथ, द्वारिका, अयोध्या आदि धाम नीचे के चित्रवत् श्रीवृन्दावन की चौकी में रहत हैं। नित्य माया काल रहित; निर्गुन-सगुन और औतार लीला नित्य सब भक्तन कौ मनोरथ पूर्न करत हैं। इच्छा कौ सूत्र लियें जा भाँति महल में काहू कारज की सुधि न पहुँचै। प्रेम ही केवल माधुर्य श्रीस्वामी जी के निज महल में है।।५।।

निज धाम स्याम मन्दिर कौ चारी। जोजन एक आवरन भारी।।
वृन्दावन कौ गाइ सुनावा। दस अरु दसे आवरन भावा।।
ताकौ ब्रज जानैं पुनि सोई। कोस चौरासि भनैं सब कोई।।
गुनि गोलोक बैकुंठ महा लौं। पुनि तीजौ बैकुंठ तहाँ लौं।।

धाम कहे ऊपर के जेते। अधिकै धाम सुनौ अब तेते।।
अवध द्वारिका बद्री कहिये। जगन्नाथ लौं सब ही लहिये।।
चौकी देत विपिन की तेई। रहैं चित्रवत अति सुख लेई।।
नित[⊛] माया तें रहित सुहावा। पहुँचै नहीं काल दुःख दावा।।

दोहा— भए महा औतार जे, निरगुन सरगुन जान।
लीला करि पूरन करैं, भक्त मनोरथ मानि।।

सोरठा— इच्छा जो कछु होइ, लियें सूत्र सोई रहत।
महल न पहुँचै कोइ, कारज की सुधि मानियौं।।

वर्तमान हैं अति सुखदाई। प्रगट देखियत गाइ सुनाई।।
केवल यौं माधुर्य जु मानौ। स्वामी कौ निजु महल बखानौ।।५।।

जो हरि कौं नित्य मानत हैं, ते नित्य कौं प्रापित होइँगे; जे अवतार जन्म-कर्म मानत हैं, तिनकौ सरीर छूटैगौ, तब योगमाया के हवाले होहिंगे। अट्ठाईसवीं चौकरी वैवस्वत मन्वन्तर के जुग ताँईं सोवत रहैंगे; न हरि कौं प्रापित होहिंगे, न जन्म धरैंगे। ऐसें ही रह्यौ करैंगे। जब अवतार होय, तब वेहू जन्म धरिकैं मिलैंगे।।६।।

जो मानत हरि कौं वर ऐसैं। नित्य विराजत सब सुख जैसैं।।
नित्य वस्तु कौं प्रापित जेई। और कहौं अब सुनियौ तेई।।
जनम करम औतारनि मानैं। छूटै अंग सो यह गति ठानैं।।
माया बस में रहैं जु तेऊ। चौकरि अट्ठाईसवीं बितेऊ।।
हरि कौं मिलैं न जन्मैं सो भाई। जब औतार धरैं हरि आई।।
वेऊ जन्म लेयँ वर जैसें। मिलिहैं फेरि रहैं पुनि ऐसें।।६।।

⊛ पाठान्तर—निज।

कबीर जी ने रामानन्द जू सौं पूँछी—
एक राम दसरथ के खेलैं। एक राम घट घट में मेलैं।।
एक राम कौ सकल पसारा। एक राम सब ही तें न्यारा।।
रामानन्द जी ने कही—
वही राम दसरथ के खेलैं। वही राम घट घट में मेलैं।।
वही राम कौ सकल पसारा। वही राम सबही तें न्यारा।।७।।

कबीर जी नें रामानन्द जी सौं पूछी –
एक राम दसरथ के खेलैं। एक राम घट घट में मेलैं।।
एक राम कौ सकल पसारा। एक राम सब ही तें न्यारा।।
श्रीरामानन्द जू कौ वाक्य –
वही राम दसरथ के खेलैं। वही राम घट घट में मेलैं।।
वही राम कौ सकल पसारा। वही राम सबही तें न्यारा।।७।।

वस्तु के स्वरूप कौ दृष्टान्त— सूरज के चारि स्वरूप— मूरतिवान। रथ पर विराजमान। तेज कौ पुंज, सो जोति। बिम्ब कौ बिम्ब व्यापक।।८।।

वस्तु के स्वरूप कौ दृष्टान्त –
मारतंड के चार स्वरूपा। स्यन्दन मूरतिवन्त अनूपा।।
तेज पुंज कल जोतिहि जानौ। बिम्ब बिम्ब[⊛] कौं व्यापक मानौ।।८।।

और दृष्टान्त— जैसैं थार में नाना भाँति कौ प्रसाद है। सो प्रसाद वस्तु एक है; पर सब सामग्री न्यारी हैं, नाम न्यारौ है, स्वरूप न्यारौ है, स्वाद न्यारौ है, गुन न्यारौ है।।९।।

⊛ पाठान्तर—ब्रह्म ब्रह्म।

अन्य दृष्टान्त –

कोपर[1] मध्य अनेक प्रकारा। धर्‌यौ प्रसाद महा सुख सारा।।
यौं प्रसाद करि वस्तु सु एका। भिन्न भिन्न करि जानहु नेका।।६।।

जे माधुर्य भाव सौं भजत, तिनसौं प्रसन्नता अधिक है और ऐस्वर्य सौं तौ ब्रह्मा, सिव भय मानत हैं; जीव की कहा सामर्थ्य है ?।१०।।

जो माधुर्य भाव सौं भजहीं। तिनसौं अधिक प्रसन्न जु रहहीं।।
और ऐस्वर्य रूप है जाकौ। सिव बिरंचि भय मानत ताकौ।।
जीव समर्थ कहा है भाई। रहै नजर के आगें आई।।१०।।

एक समय लाला फुलवारी देखत भये। जीव ने मन लाला के स्वरूप सौं निकासि कैं फुलवारी में दियौ, तहाँ फँसि गयौ; जब फेर सरन आवै, तब छूटै।।११।।

एक समय लाला सुखकारी। देखत हैं फुलवारि सु चारी।।
जीवहु ने मन लियौ निकारी। हरि की सुधि सो सबै बिसारी।।
फुलवारी में अब दियौ जु आछैं। गयौ बंधि* मन ही ता पाछैं।।
जब आवै फिर सरन स्याम की। छूटै तबै कहौं यह काम की।।११।।

हरि ने जीव के समझाइवे कौं चारि रूप धरे। प्रथम तौ आप अवतार धरत भये। दूसरौ– गुरुन कौ सरूप धरिकैं उपदेस कियौ; हरि कौ भजन। तीसरौ– साधुन कौ सरूप धरिकैं बतायौ। गुरु-आज्ञा करै; सोई करै। तब कछू प्रतीति भई। गुरु ने हरि कौ भजन बतायौ; साधुन कही– गुरुन की

---

१. थार। * पाठान्तर–बींध।

आज्ञा मानै; दोनों बचन एक ही हैं। चौथौ– सास्त्र कौ रूप धरिकैं उपदेस कियौ, गुरुन की सरन जाय, साधुन कौ संग करै, सास्त्र स्रवन करै, हरि कौ भजन करै; तब चारौं स्वरूप एक ही जानैं। हरि,गुरु, साधु समान हैं; जैसैं तीनि चना, एक छिलका।।१२।।

चारि स्वरूप धरे हरि नागर। सनमुख जीव लयें सुख सागर।।
प्रथम धर्‌यौ औतार सुहायौ। दूजे गुरु हरि भजन बतायौ।।
तीजे भक्त स्वरूप सुहावा। गुरु सासन मानहु भल जावा।।
तब परतीति भई कछु आई। गुरु हरि भजन कह्यौ सुखदाई।।
साधुन कही करौ गुरु सासन। दोऊ बचन एक ही भाषन।।
चौथौ आगम रूप बिसाला। करि उपदेस दियौ सुख जाला।।
गुरु के सरन जाइ हरि भजई। पुनि सतसंग संत कौ करई।।
आगम सुनैं देह दुःख भानैं। चार्‌यौं रूप एक ही जानैं।।
हरि गुरु साधु बरोबर ऐसैं। चना तीनि छिलुका एक जैसैं।।१२।।

चांडाल, म्लेच्छ, स्वपच, ब्राह्मन, देवता, ब्रह्मा आदि सब समान हैं। हरि कौं भजे, सोई श्रेष्ठ है; नहीं तौ सब माटी के डेल हैं।।१३।।

दोहा– सुपच चंडाल बिरंचि पुनि, जमन आदि दै कोइ।
सबै समान बखानिये, हरि कौं भजै वर सोइ।।

नातर माटी डेल कहावा। कहौं और अब सुनि चित लावा।।१३।।

यह प्रानी आपनौ भलौ चाहत नाहीं, न जानत, भलौ कासौं कहियतु है। पै श्रीगुरु जोरावरी याकौ भलौ करत हैं;

याके लियें श्रीबिहारी जू सौं कहैं।।१४।।

यह प्रानी मति मूढ़ महा है। अपनौ भलौ सो चाहत ना है।।
नहिं जानत भल कहा कहावे। पर स्वामी बल भलौ बनावैं।।
श्रीहरि सौं पुनि विनती करैं। महा उपायनि आपहू ढरैं।।१४।।

आपकौं कबहूँ असुद्ध न मानैं। यह सरीर धोये पवित्र, सुद्ध होत नाहीं। भीतर बिष्ठा भरी है, ऊपर तें धोयौ तौ कहा भयौ ? वस्तु विषै मन कौं दियें रहै; सदा सुद्ध है।।१५।।

आपकौं कबू असुद्ध न मानैं। धोये अंग सुद्ध नहिं जानैं।।
भीतर मल है अति दुखदाई। ऊपर धोये सुद्ध नहिं भाई।।
वस्तु विषै मन दियें जु रहिये। सदा काल सुद्ध ताहि कहिये।।१५।।

भूखे कौं देइ, बंधान न करै; सरीर क्षनभंगुर है; यह बंधान करै, ताकौ निर्वाह न होय। तातें यथायोग्य सामर्थ्य टहल करै।।१६।।

क्षुधावन्त कौं देय जु आछैं। पुनि बंधान करै नहिं पाछैं।।
पुनि बंधान करै सुख चाहन। सधे नहीं अतिसै दुख दाहन।।
तातें जथाजोग बनि आवै। करै टहल सो अति मन भावै।।१६।।

संसार के छूटिवे कौ उपाय– जाति बुद्धि छोड़ै। ब्राह्मन आपकौं ब्राह्मन ही मानि रह्यौ है, चांडाल आपकौं चांडाल ही मानि रह्यौ है, ब्रह्मा आपकौं ब्रह्मा ही मानि रह्यौ है; जा देस में, जा क्रिया में है; तहाँ तैसौ ही आपकौं मानत है; जब आपकौं हरिदास मानैं, तब संसार छूटै।।१७।।

अब छूटन संसार उपाया। छोड़ै बुद्धि जाति मन भाया।।
भूसुर आपहि भूसुर मानैं। अंतिज हू पुनि अंतिज जानैं।।
विधि आपुन कौं विधि ही कहई। सब यौंही सुनि मानत रहई।।
जौन देस में रहन सु तहाँई। तहँ तैसौ आप मानत जाई।।
जब यह मानै हरि कौ दासा। छूटै तब संसार जु फाँसा।।१७।।

जामें काहू कौ भलौ होय; सो कीजे। काहू भाँति हूँ अपनौ अहंकार न करै।।१८।।

जामें भलौ होइ काहू कौ। कीजै सो जु भलौ ताहू कौ।।
सोरठा— काहू भाँति बनै जु, अहंकार अपनौ न करि।
सरस महान भनैं जु, यहै समझ सब जानियौ।।१८।।

सब कर्ता सब संसार के, सब ब्रह्मांडन के इकट्ठे होयकैं जो साप देंइ; पर श्रीबिहारी जी सब कर्तान के कर्ता हैं, जा काहू कौं हरि कृपा करैं; ताकौं साप न लगै।।१६।।

दोहा— सब करता संसार सब, सब ब्रह्मांड बखानि।
देयँ स्राप सब एक ह्वै, चलै नहीं चित जानि।।
करतनि कौ करता गुनौं, सरस बिहारी आप।
जा पर ढरैं दयाल ह्वै, ताहि न लागत स्राप।।१६।।

नास्तिक सौं संसारी भलौ।।२०।।

नास्तिक तें भल यह मन मानौ। जगत भलौ अपनौ जिय जानौ।।२०

निष्काम और हरि प्रापति कौ बांछित आवै, सो प्यारौ लगै; सकामी बहुत भारी है। यही स्वभाव साधुन कौ, यही ठाकुर कौ।।२१।।

हरि कौ भक्त निरासिक सोई। जो अति प्यारौ लागत मोई।।
लगै सकाम अधिक मोहिं भारी। यहै स्वभाव दोइ कौ चारी।।
प्रथम एक ठाकुर मन माना। दूजे भक्त महा सुखदाना।।२१।।

दान भूखे कौं देइ, सुपात्र कौं देइ; व्यवहार मार्ग, प्रतिष्ठा मार्ग में द्रव्य न लगावै।।

साखी— जिनकौ बनते घर भलौ, हरि कथा साधु संजोग।
जैसैं औषधि विष मिलै, हरै ब्याधि कफ रोग।।
मोटी माया सब तजैं, झीनी तजी न जाय।
नागा मौनी सिद्ध साधकनि,झीनी सबहिन खाय।२२।।

तन भूखौ अरु जानि सुपातर। ताहि देउ करि प्रीति जु आदर।।
व्यौहार प्रतिष्ठा धन न लगावे। पुनि अब सुनौ और कल गावैं।।

साखी— जिनकौ बनते घर भलौ, हरि कथा साधु संजोग।
जैसैं औषधि विष मिलै, हरै ब्याधि कफ रोग।।
मोटी माया सब तजैं, झीनी तजी न जाय।
नागा मौनी सिद्ध साधकनि, झीनी सबहिन खाय।।२२।।

सुकृति यातें परे और नाहीं, काहू जीव कौं हरि के सन्मुख करै और दुष्कृति जीव के विमुख करिवे तें नाहीं।।२३।।

दोहा— सुकृत यातें कौनहू, और परे नहिं जोइ।
हरि सनमुख जीवै करै, यह जानैं सब कोइ।।

उकृत[1] है कछु यातें नाहीं। हरि सौं विमुख करै जग माहीं।।२३।।

---

१. दुष्कर्म।

प्रतीति– सरनागत वचन नृसिंह जू के प्रह्लाद प्रति– इक्कीस कुल भक्त के कृतार्थ होहिं। तहाँ पूर्व पक्ष– प्रह्लाद जी तीसरी संतान ब्रह्मा की हे; इक्कीस कुल कैसें कहे ? उत्तर दियौ– माता-पिता की ओर के। वचन महादेव जी कौ पार्वती प्रति– चौरासी लक्ष कुल कृतार्थ होहिं; जा-जा जोनि में जन्म लियौ होइ।।२४।।

वचन प्रतीति सरनागत जानौ। नरसिंह प्रहलादै मानौ।।
कुल इकईस तरे तुम्हरेई। कहि नरसिंह महा सुख देई।।
पक्षय पूरब जानिब सोई। सन्तति कमलासन त्रिय जोई।।
कुल इकईस कहे किहिं भाँती। यह कहि तब वर बात सुहाती।।
मात पिता कौ जानहु नीके। और सुनौ सिव वचन सती के।।
होइ कृतारथ यौं अब सुनिये। जहँ जहँ जनम लियौ सत गुनिये।।२४

वचन पद्म पुरान– द्वादस कोटि ब्राह्मन कुलीन जथा-जोग्य प्रसन्न करै और सत सालिग्राम की जथाजोग्य सेवा करै और सहस्र पार्थिव[१] महादेव की जथाजोग्य सेवा करै। इतनी सब क्रिया करै अथवा एक स्वपच भक्त प्रसन्न करै; दोऊ क्रिया समान हैं।।२५।।

पदम पुरान जानि हितकारी। तिहिं में कह्यौ बात अति चारी।।
द्वादस कोटि छोनिसुर[२] कहिये। सालिगराम जानि सौ लहिये।।
लिंग हजार ईस के धरईं। जथाजोग पूजा सब करईं।।
अथवा सुपच भक्त एक सेवा। करै प्रसन्न महा सुख लेवा।।
ए पुनि जानि बरोबर दोऊ।।२५।। भली बनै कृपा करै व सोऊ।।

---

१. मिट्टी से बनी शिवलिंग। २. ब्राह्मण।

जो क्रिया भली बनै, सो हरि की कृपा सौं जानैं, ओछी क्रिया अविद्या अपनी।।२६।।

हरि की कृपा मानिये तबही। भली सुकृत बनि आवै जबही।।
ओछी क्रिया अविद्या अपनी।।२६।। आप मान चाहै नहिं सपनी।।

आप मान न चाहै, मानपात्र कौं मान देइ।।२७।।

मान चाह कौं देइ जु माना।।२७।। पुनि सुनिये लक्षन नर नाना।

मनुष्य के लक्षन– सब जीवन कौं सुखदाता रहै, काहू कौं दुख न देइ। ऐसौ मनुष्य हजारनि में एक होय। ऐसे हजारनि में एक हरि कौ भक्त साधारन। ऐसे हजारनि में एक ऐसौ पुरुष होय, जो अपने स्वरूप कौं जानिकैं हरि के मिलिवे की चाह राखै। ऐसे हजारनि में एक ऐसौ पुरुष होइ, जो आपकौं हरि प्रापित, जीवन्मुक्त जानैं।।२८।।

सब जीवनि कौं सुखद विचारौ। दुखद न काहू सब जीव प्यारौ।।
सहस नरनि में एक सु जानौ। ऐसें सबनि मद्धि एक मानौ।।
हरि कौ भक्त सधारन होई। पुनि हजार में एक जु कोई।।
तिन स्वरूप पहिचान्यौ अपना। हरि के चाह मिलन हिय जपना।।
ऐसे सहस मध्य कोई लेखौ। जीवन मुक्त मिलन हरि पेखौ।।२८।।

चन्द्रमा आकास पर है, प्रतिबिम्ब जल में परै है। मच्छी अनेक आयकैं खिलौना जानिकैं क्रीड़ा करैं हैं। चन्द्रमा निर्लेप है। बधिक जाल डारै, तौ मच्छी सब फँसि जायँ; चन्द्रमा न्यारौ है।।२६।।

चन्द्रमा आकास पर रहई। प्रतिबिम्ब जल में परई।।

अनेक मछरी[⊛] क्रीड़ा करहीं। जानि खिलौना आनन्द मनहीं।।
आय बधिक जाल में गहै। चन्द्र निरलेप न्यारौ रहै।।२९।।

काहू साहूकार कौ बेटा ठगनि के हाथ परि गयौ। तहाँ चाहियै, आपकौं बचावै; उनमें मिलि जाय; मन में राखै, जब दाव बनै, तब निकसि जाय। या भाँति विवेकी व्यवहार में रहै।।३०।।

दोहा— बेटा साहूकार कौ, पर्‌यौ ठगनि के हाथ।
तहाँ बचावै आपकौं, जाय मिलै उन साथ।।
ऐसैं मन में राखिये, दाव बनैं छूटि जाय।
यही भाँति व्यौहार में, विवेकी करै उपाय।।३०।।

अनन्य उत्तम भक्ति के लक्षन— मन बच कर्म इष्ट, गुरु के स्वरूप में सावधान और सब जीवनि कौं सुखदाता, सब ठौर सौं गुन लेइ, औगुन न लेइ।।३१।।

अब अनन्य के लच्छन मानैं। मन बच काय स्वरूपै जानैं।।
पुनि हिय* स्वामि चरन में लाई। सब जीवनि कौं अति सुखदाई।।
सब ठौरनि सौं जु लेवै सुगुन। और न लेवै मन में औगुन।।३१।।

जैसी प्रापति सरीर छोड़े पाछैं; सास्त्र और आचार्यन की बानी में लिखी है, याही सरीर में अपनी आँखिन देखै; वा धाम में भावना सरीर सौं जाय टहल करै; कहा वैराग, कहा गेह। यह तीन सिद्धान्त श्रीगुरु सौं सुनिकैं निस्सन्देह होइ। फेर सन्देह न राखै; संदेह ही संसार है।।३२।।

⊛ पाठान्तर—मच्छी। * हरि।

जो सरीर कौं छोड़ै आछैं। मानत हैं प्रापति ता पाछैं।।
आगम निगम महान जु गाई। सो गति पेखहिं यह वपु भाई।।
जो यह धाम स्याम कौ कहिये। रूप भावना टहल जु लहिये।।
कहियतु है ग्रह कौन विरागा। यह सुनिये गुरु सौं वर भागा।।
पुनि संदेह संसार न❀ माहीं। यौं सुनिये संसय कछु नाहीं।।३२।।

अपराध सौं अपराध बढ़ै, साधु अपराध सौं स्वरूप सौं अन्तरा होइ।।३३।।

अपराधनि सौं बढ़ै अपराधा। साधुनि कौ सतसंग असाधा।।
मेरे इष्ट स्वरूप सुखारी। हिये होइ दुख अतिसै भारी।।३३।।

एक समय लाल जू ने पंडुक कौं बुलायौ। कही– भजन हमारौ बहुत कियौ। एकै तू वाकी बोली है; सो भजन करि मानौ। वाने कही– मेरौ स्वभाव है, भजन मैं नाहीं कियौ। साधु कौ स्वभाव ऐसौ चाहिये, भजन करै, ताकौं न मानैं।।३४।।

एक समै वर चारु कपोता। लियौ बुलाइ लाल सुख हेता।।
यौं बोले सुखदानि सु बानी। हमरौ भजन कियौ हम जानी।।
एकै तू सुनि वाकी बोली। लियौ भजन वर मानि ब खोली।।
तब कपोत बोल्यौ सुखदाई। सहज सुभाव जानि हम राई।।
मैं नहिं कियौ भजन सुखदावा। साधुनि कौ यह जानि सुभावा।।
करैं भजन ताकौं नहिं मानैं।।३४।।पुनि भल होइ कछू सो ठानैं।।

जहाँ जो बात भली देखै, सो लेइ; बुरी देखै, सो छाँड़ै। दोऊ ठौर गुरुत्व मानैं।।३५।।

❀ पाठान्तर–असारन।

बुरी बात वा छोड़ै सोई। स्वामि भाव वर मानैं दोई।।३५।।

दत्तात्रेयजू कौ प्रसंग— मन कौ स्वरूप— दीपक की लोय, पीपर कौ पात, दर्याव की लहर, कछुवा की ग्रीव, पवन, दामिनि।।३६।।

दत्तात्रेय प्रसंग सु जानौ। अति सब ही संदेह जु भानौ।।
मन कौ स्वरूप सुनौ अब ऐसौ। चलदल पान तड़ित पुनि जैसौ।।
लहरि कहर की दीप सिखाई। पौन कच्छप की ग्रीव बताई।।३६।।

कुसंग मन में न लावै। जैसें वृक्ष पर पक्षी बहुत रहत हैं, अपनी-अपनी बोली बोलत हैं, कोई काहू की बोली सीखत नाहीं; ऐसें उपासक दृढ़ चाहिये।।३७।।

सुनि कुसंग में मन नहीं ल्यावै। अपनौं धर्म छोड़ि नहिं धावै।।
ज्यौं दुज[१] बैठि वृन्द तरु माहीं। अपनी बानि कहै पर नाहीं।।
परम उपासिक जे वर कहिये। तिनकौ यह स्वभाव वर चहिये।।३७।

इच्छा पर प्रसन्न रहै। जैसें आसिक सौं मासूक कहै— यह पाथर कौ ढेर सिर पर धरिकैं उठाय डारि; वह प्रसन्न होइ। ऐसें सरनागत अप्रसन्न कदाचित् न होय।।३८।।

रहैई प्रसन्न आप इच्छा पै। और सुनौ अब एक जु तापै।।
वचन कहै मासूक पियारा। सुनि आसिक इक वचन हमारा।।
उपल[२] ढेर माथे धरि भाई। डारौ दूरि सुनै सुख पाई।।
सरनागत भक्तिहि कौं चाहै। अपुन उदास कदाचित नाहै।।३८।।

---

१. द्विज, पक्षी। २. पत्थर।

प्रापति कौ लक्षन– जब चारि सन्देह जाहिं। गृह-वैराग कौ सन्देह, जीव बुद्धि कौ सन्देह, जाति बुद्धि कौ सन्देह, कर्म बुद्धि कौ सन्देह।।३६।।

अब लच्छन प्रापति के गाऊँ। मिटहिं चारि संदेह बताऊँ।।
जाति बुद्धि ग्रह को वैरागा। जीव कर्म बुधि जानि सभागा।।
यह सन्देह दूरि जब होई। मिलन स्याम संसै नहिं कोई।।३६।।

दृढ़ धर्म श्रीस्वामी जू कौ तब जानिये, जब काहू उपासना कौ खंडन न करै। जैसें बादसाह सूबेदारन कौं अपनौ जानैं; निर्बैर होय, निरभिमान होय।।४०।।

सोरठा– स्वामी कौ जब धर्म, दृढ़ करि मानौ सकल जन।
यहै समझिये मर्म, काहू भाव न खंडहीं।।
जैसैं मानत साह, सूबनि कौं अपनौ अनुग।
निरभिमान बताहि, बैर रहित पुनि जानिये।।४०।।

जो कार्य संसार, व्यवहार कौ करनौ होय; मन लगायकैं करै, आलस न करै; सूत्र मन कौ हरि सौं राखै।।४१।।

दोहा– जो कारज संसार कौ, पुनि व्यौहार बखानि।
मन दै करिये सूत मन, हरि की ओर सु जानि।।४१।।

राजा निमि ने जब सरीर छोड़ौ, हजार बरस तेल में राख्यौ। पाछैं ऋषीस्वरन प्रसन्न होयकैं कही– फेर या सरीर में प्रवेस करौ। राजा ने न मानी। कही– मैंने राज देख्यौ है। एक निमिष हू न मानी।।४२।।

अब सुनिये इक बात सुहाता। निमि राजन जानहु सुखदाता।।
जब छोड़ौ उन अपनौ अंगा। धर्‍यौ नेह[1] यह परम अभंगा।।
रह्यौ सहस तहँ वरष बिताई। रिषिवर निकर तहाँ पुनि आई।।
बोले वचन सबय सुनि राजन। मानहु आसु रिषिन अनुसासन।।
करहु गवन अपने पुनि अंगा। बोले निमि सुनि वचन अभंगा।।
मैं नहिं मानौं वचन तुम्हारे। लख्यौ राज कहँ कहौं पुकारे।।४२।।

महाप्रसाद कौं जब पावै, तबही लेइ; आपकौं असुद्ध मानैं।।४३।।

सुनहु एक पुनि परम प्रसंगा। सुखद जानि अपने मन रंगा।।
मिलय प्रसाद जबय तब लेई। आपुन कौं न असुद्ध गनेई।।४३।।

एक ब्राह्मन भजनीक द्वारिका गयौ। ताकौं हरि कौ दर्सन भयौ। पंडा ने कह्यौ– प्रसाद लेउ। उनने कही– स्नान करि आऊँ। ता समय उन ब्राह्मन ने अकबर कौं ठाकुर के पास देख्यौ; जब स्नान कौं गयौ। गोता लियौ। उछरिकैं देखै, तौ अपने गाँव के ग्वेंड़े[2] एक कुंड महानरक कौ है, तामें स्नान करै है। तब जानी मोतें प्रसाद कौ अपराध भयौ। अकबर के पास आयौ। खबरि करी, ब्राह्मन आयौ है। अकबर ने बुलाय लियौ। पूछी– स्नान करि आयौ ? प्रसाद लैवे कौं सुद्ध असुद्ध न मानै। जब मिलै, तब पावै; प्रसाद ही सदा सुद्ध स्वरूप।।४४।।

रहइ एक धरनीसुर संता। मिलै ताहि कहँ सुखद अनंता।।
बोले स्याम लेहु परसादा। कही सपरि[3] आवहुँ बदि[*] नादा।।

---

१. तेल। २. निकट, पास। ३. स्नान। * पाठान्तर–बधि।

तहँ देख्यौ अकबर हरि संगा। भयौ दुखारि छोनिसुर अंगा।।
लग्यौ नहान इक कुंड मँझारी। पुनि देख्यौ दृग दृष्टि उघारी।।
महा नरक इक कुंड सु आई। ताहि मध्य अस्नान कराई।।
अन्तरधान भये हरि तबहीं। भूसुर जानि गयौ यह जबहीं।।
मोतें भयौ परसाद अपराध। अकबर पास गयौ दुख बाध।।
करी खबर भूस्वर[१] वह आयौ। साह सुनत वह तुरत बुलायौ।।
अकबर कही सपरि तू आयौ। यहै वचन पट ताहि सुनायौ।।
जबय लेइ परसाद जु कोई। सुद्ध असुद्ध न मानैई सोई।।
जबहि मिलै तब लेइ सुखारी। सुद्ध रूप परसाद विचारी।।४४।।

एक दिन नारद ठाकुर जगन्नाथ के दर्सन कौं गये। तहाँ प्रसाद मिल्यौ, फिर कैलास में गये। महादेव-पार्वती बैठे हे। नारद हर्षित, नृत्यत गये। पूछी— काहे तें हर्ष भयौ? कही— जगन्नाथदेव कौ प्रसाद पायौ है। महादेव जी ने कही— हमकौं न लाये? देखैं तौ होठ सौं सीत लगौ है। ताकौं महादेव जी ने लैकैं वाही भाँति हर्ष कियौ। पार्वती ने कही— मोकौं न दियौ? कही— तू महाप्रसाद की पात्र नहीं। पार्वती बहुत लज्जित भईं। तप कौ आरम्भ कियौ। हजारनि बरस तप कियौ। भगवान ने दर्सन दियौ। कही— वर माँग। पार्वती ने कही— सब जीव प्रसाद के पात्र होंय। कही— यथार्थ। तब तें सब ही प्रसाद के अधिकारी हैं।।४५।।

एक दिवस नारद वर गएऊ। जगन्नाथ दरसन वर भएऊ।।
तहाँ परसाद लियौ इन जाई। पुनि कैलास आइ सुखदाई।।

१. ब्राह्मण।

जटिय उमा तहँ राजैं दोऊ। पहुँचे नृत्य करत ये सोऊ।।
बोले ईस कहा सुख भावा। हरि परसाद पाय मैं आवा।।
कही हमनि कौं काहि न ल्याए। अधर सीत लखि आपुन धाए।।
सो वह सीत दौरिकैं लीनौ। वाही भाँति हरष वहँ कीनौ।।
बोली उमा तबहि पछिताई। हमहिं दियौ क्यौं नाहिं गुसाँई।।
लगे कहन पुनि ईस सुखारी। तुमहिं नाहिं अधिकारि विचारी।।
भई उमा लज्जामय तबहीं। तप आरम्भ कियौ उन जबहीं।।
बरस करोरनि तपय बितानी। दयौ दरस हरि तबय जु आनी।।
बोले वचन जबय सुखदावा। माँगहु वर अपने मन भावा।।

दोहा— सब अधिकारी होहिं जब, तुव परसाद भगवान।
कही जथारथ तब भए, गन अधिकारी मान।।४५।।

नारद पंचरात्र के वचन— दक्ष प्रजापति के यज्ञ में नारद बीरी प्रसादी की पायकैं गये। सबनि पूछी— एकादसी के दिन बीरी क्यौं खाई ? नारद जी बोले— एकादसी मूर्तिमान् या यज्ञ में आई है, वाही सौं प्रसाद कौ स्वरूप पूछौ। सबनि एकादसी सौं पूछौ। वाने कही— प्रसाद कौ स्वरूप जैसें समुद्र, मेरे व्रत कौ प्रताप जैसें बूँद। प्रसाद कौ प्रताप चिंतामनि, व्रत कौ प्रताप जैसें कौड़ी। प्रसाद हरि के मुखारविन्द सौं परसत है, मैं हरि के चरन परस कौं बांछत हौं।।४६।।

नारद पंचरात्र के वचन —

दोहा— दक्ष प्रजापति के यज्ञ में, नारद गये प्रवीन।
पान प्रसादी पाइकैं, सबइनि पूँछि तहँ लीन।।

सोरठा– बोले सबै महान, हरि वासर जानहु सरस।
क्यौं पायौ तुव पान, कहे वचन नारद तबै।।

धरि स्वरूप आईं यहँ आजू। एकादसि वह सुन्दर साजू।।
ता सहँ पूँछहु निस्चै ब जाई। कहा रूप परसाद बताई।।
पूछी सबनि नेह सौं जबही। बोलीं वचन प्रेममय तबही।।
मो व्रत रूप गनहु सब अैसैं। कौड़ी बूँद तोय की जैसैं।।
यौं स्वरूप परसाद सुहावा। चिन्तामनि वारिधि जस गावा।।
परस सीत हरि मुख तें जानौ। मैं बांछति उन चरन बखानौ।।४६।।

सर्व महंतनि की निष्ठा– कंठी सौं भाव, महाप्रसाद की प्रतीति, रज सौं भाव, सब प्रानी समान।।४७।।

सबै महंतनि की यह निष्ठा। भाव दाम सौं सीतहिं चिष्टा।।
रज सौं भाव करैं पुनि सोई। सब प्रानी सम जानैं जोई।।४७।।

एक समय सनकादिक बैठे हे। सुगन्धि आई; सो बहुत प्रसन्न भये, वाही ओर कौं चले। बैकुंठ धाम पहुँचे। वहाँ तुलसी कौ मंदिर देख्यौ, ताकी सुगन्धि आवत ही; तब नारायन जू के दर्सन किये। आज्ञा करी– तुलसी की कंठी धारन करौ, औरनि कौं करावौ; याकौ प्रताप प्रसिद्ध करौ। सो प्रथम कंठी सनकादिक कौं प्रापित भई।।४८।।

अब इक सुनौ और वर बाता। समझि ताहि भ्रम दूर ब जाता।।
एक समै सनकादिक चारी। बैठे हते महा सुख भारी।।
तिनिकौं तहाँ सुगन्धि जु आईं। भए प्रसन्न महा मन भाई।।
चले तहाँ कौं करत विचारा। पहुँचे जाइ बैकुंठ निहारा।।

तहँ तुलसी कौ लख्यौ निकेता। जाकी परिमल हती सुचेता।।
जहँ नारायन दरसन कीना। तबै इन्हैं अनुसासन दीना।।
लखी चारु तुलसाँ कौं तुमने। धरौ दाम याकी उर अपने।।
पुनि औरनि कौं देव जु जाई। करौ प्रसिद्ध परताप बढ़ाई।।
मिली प्रथम कंठी भल जानौ। सनकादिक जे परम सुजानौ।।४८।।

श्रीनिंबादित्य आचार्य के तीन स्वरूप हैं। महल में रंगदेवी सखी, ऐस्वर्य में सुदर्सन चक्र, प्रगट में आचार्य स्वरूप, जगत के उपदेस करिवे कौं प्रथम पार्षद सुदर्सन चक्र हैं। तातें मूल आचार्य ये हैं। चारौं स्वरूप इनहीं के हैं।।४६।।

अब इक सुनौ और परसंगा। तामें गुनिये परम सुरंगा।।
नीम्ब अर्क के तीन सरूपा। महल माँझ रंग देवि अनूपा।।
सखी स्वरूप कहावै सोई। सदा निरन्तर जानौ जोई।।
ऐस्वर्य रूप अब ऐसौ कहिये। चक्र सुदर्सन नाम जु लहिये।।
प्रगट रूप सुखदाइक ऐसा। आचारज छबि परम सुवेसा।।
प्रथम पारषद चक्र सुमानौ। मूल आचारज येई जानौ।।
चारि स्वरूप जानि इनहीं के। कहे सुनाइ भलै तिनहीं के।।४६।।

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीन अवस्था सरीर की हैं, चौथी तुरीया है। श्रीस्वामी जी के उपासकनि की सदा तुरीया अवस्था चाहियै।।

साखी— तन परेवा कुंज मन, चकई दृष्टि सेवंत।
भृंगी है घट संचरै, तब भेंटैं भगवंत।।५०।।

पुनि जानौ ए चारि अवस्था। सुनिये जिनकी परम विवस्था।।

जाग्रत सुप्न सुषोप्तर सोई। तीन अवस्था अंगनि जोई।।
चौथी तुरी अवस्था जानौ। स्वामी के जे रसिक बखानौं।।
तिनकी तुरी अवस्था चहिये। अब सुनि और महा सुख लहिये।।
साखी— तन परेवा कुंज मन, चकई दृष्टि सेवन्त।
भृंगी है घट संचरै, तब भेंटैं भगवन्त।।५०।।

यामिनी सिद्धान्त— बन्दगी मेरी कर, नहीं तौ मेरौ दियौ न खा। मेरी आज्ञा कर, नहीं तौ मेरे देस में न रह। मेरे दिये पर सन्तोष कर, नाहीं तौ खाबिन्द और कर। बुरौ कर तौ तहाँ कर, जहाँ मैं न देखूँ।।५१।।

यामिनी सिद्धान्त —
मेरी करै बन्दगी नाहीं। मेर्‍यौ दियौ न खाइ सु वाहीं।।
मेरौ हुकुम न मानै सोई। मेरे देस रहै नहिं जोई।।
जो कछु देउँ रीझि मैं आछैं। करै न धीरजता ता पाछैं।।
तौ वह करै और ही स्वामी। बुर्‍यौ करै तहँ मैं नहिं नामी।।५१।।

एक जिज्ञासु कौं राह में ठग मिले। पूछी— भगवान के दर्सन चाहत हौं? ठग ने कही— आँख मूँद, मैं कहूँ, तब खोलियौ; दर्सन होहिंगे। ऐसें ही करी। ठग वाकी सब वस्तु लैकैं जात रह्यौ। बहुत दिन ताईं आँख न खोली। नारद जी आये। तब कही— आँख खोल। उत्तर दियौ, मेरे गुरु कहैंगे, जब खोलूँगो। नारद जी बैकुंठ में गये। नारायन जी सौं कही। नारायन जू ने विमान भेजौ; तौऊ आँख न खोली। नारद जी वाही ठग कौं लै आये; जब आँख खोली। नारद जी ने कही—

विमान पर बैठ। कही– मेरे गुरु बैठें। नारद जी नारायन जी की आज्ञा सौं दोनौं कौं विमान में बैठायकैं बैकुंठ में लै गये।।५२।।

रहय एक जिज्ञासी भाई। मिलै ताहि मग में ठग आई।।
तब बोल्यौ जिज्ञासु सुजाना। चाहत हौं दरसन भगवाना।।
लगे कहन ठग मूँद जु आँखैं। जब खोलौ तब हमही भाखैं।।
तब हूहैं दरसन तुहिं मोहन। करीय रीति सोई सब सोहन।।
गए चोर पट लैकैं तबहीं। बहुत दिवस खोले नहिं दृगहीं।।
तब नारद पहुँचे सुख भावा। बोले वचन महा छबि छावा।।
खोलिये चक्षु सकल सुखदाई। तब बोल्यौ जिज्ञासु सुहाई।।
मैं नहिं खोलौं दृग सुनि लीजै। जब खोलौं गुरु दरसन कीजै।।
तब नारद बैकुंठ गएऊ। सबय खबर पुनि कहत जु भएऊ।।
ह्वै प्रसन्न नारायन तबहीं। दयौ विमान पठै पुनि जबहीं।।
खोलै नहीं नैन पर याने। तब नारद ल्याये ठग जाने।।
लग्यौ कहनि ठग खोलौ नैंना। खोलै तुरत सुने वर बैंना।।
बोले नारद अति मन भाई। चढ़उ विमान महा सुखदाई।।
तब यह कही गुरु बैठैं मेरे। पुनि बैठहुँ मैं कही जु टेरे।।
तब रिसि हरि सौं जाइ सुनाई। हरि अनुसासन जाइ चढ़ाई।।
पहुँचे तबय धाम पर दोऊ। यहै समझियौ मन सब कोऊ।।५२।।

विरक्त कौ धर्म– मानसी सेवा, जीभ सौं नाम। आस्रम में जो कोई रहै, ताकौ परम धर्म– गुरु सेवा, साधु सेवा, हरि सेवा, सास्त्र कौ संग, कथा स्रवन। आस्रम के तीन स्वरूप हैं– बैरागी, गुसाँई, गृही। सबकौ परम धर्म यही– हरि सेवा में

मानसी होय। परम धर्म विरक्त आस्रमी के कहे, यामें प्रापति दुहुँनि की एक है। वर्न-आस्रम में मानसी करै, तौ भाव सहित प्रापति होय; नाहीं दासंतन[1] लियें प्रापति होय; जो निरन्तरता सौं राग-द्वेष रहित सेवन करै। और प्रगट सेवा हू मानसी बिना नाहीं। मानसी सौं भाव प्रगट होत है। और आश्रम में पहिले गुरु सेवा पीछे, हरि सेवा, साधु सेवा।।५३।।

दोहा— विरकत कौ सुनिये सरस, परम धर्म है सोइ।
लेइ नाम पुनि मानसी, यह जानौ सब कोइ।।

जो आस्रम में रहै जु कोई। ताकौ धर्म सुनौ अब सोई।।
आगम स्रवन गुरुनि की सेवा। भक्तनि सेव कथा संग भेवा।।
ए आस्रम के तीन स्वरूपा। ग्रेह वैराग गुसाँई अनूपा।।
सबकौ परम धर्म यह जानौ। ताहि प्रगट करि सबय जु मानौ।।
यह आस्रम की कही जु बाता। यामें मिलन दुहुँनि सुहाता।।
वरनाश्रम में करै जु कोई। चारु मानसी अति छबि सोई।।
भाव सहित प्रापति है ताकी। मिति दोष करि रहित जु हाँकी।।
पुनि रागनि सौं रहित सुहावा। यह गुनियौं अतिसै सो गावा।।
और प्रगट सेवा छबि छाहीं। बिना मानसी जानि सु नाहीं।।
जानि मानसी सौं यह सोभा। भाव प्रगट जानहु मन लोभा।।
यह आश्रम की जानि सु रीती। पहिले सेव गुरुनि सौं प्रीती।।
ता पीछे हरि सेव सुहाई। पुनि भक्तनि की टहल बताई।।५३।।

ठाकुर सेवा विषै पाँच साधन होंय, तब ठाकुर प्रसन्न होंय। आत्मवत्— सीत, उष्न, भूख, प्यास जैसें आपकौं लगै;

---

१. सेवा।

तैसैं ठाकुर कौं जानैं। पुत्रवत्– जैसैं माता-पिता पुत्र कौ लाड़ करत हैं, तैसैं ठाकुर कौ करै। जारवत्– स्त्री जैसैं अन्य पति सौं प्रीति करै, वाकी प्रीति सब ठौर सौं निकरिकैं जार ही सौं लगै; लोक-लाज, कुल-कानि बिसरि जाय; तैसैं ठाकुर सौं करै। राजवत्– जैसैं राजा कौ सेवक भय राखै– कबहूँ सेवा में चूक परै, तौ राजा जानैं कहा करैगौ; या भाँति ठाकुर कौ भय मन में राखै; प्रतिमा न जानैं। सत्रुवत्– जैसैं अपने सत्रु कौं आठ पहर भूलै नहीं; तैसैं ठाकुर की चिन्ता राखै।।५४।।

हरि के विषै पाँच ए भावा। सेवा साधन अति सुख दावा।।
तबय प्रसन्न जानि हरि चारु। आत्मवत गुनिये सुख भारु।।
लगै भूख पुनि सीत जु भाई। प्यास उसन[1] अपु लागहिं आई।।
जैंसैं लगै आपने अंगा। त्यौं हरि जानैं परम सुरंगा।।
सुनहु पुत्रवत दूजिय सेवा। ता महँ जानिये परम सु भेवा।।
तात मात ज्यौं सुवन[2] लड़ावैं। त्यौं हरि सेव करय सुख पावैं।।
सुनहु जारवत भाव सु काहा। करय प्रीति ज्यौं नारि अनाहा।।
वाकी प्रीति निकरि सबही तें। बसय जार में अति सुखही तें।।
लोकलाज कुलकानि निवारा। ऐसैं भजै स्याम कौं प्यारा।।
कहूँ राजवत अति सुखदाई। ज्यौं नृप सेवक जानि सुभाई।।
रहय डरत राजन करि भेवा। मति कहूँ परै चूक मो सेवा।।

दोहा– कह जानैं राजा करै, मोतें चूक परै जु।
ऐसैं डर हरि कौ करै, अपने हीय धरै जु।।

---

१. ताप, गरमी। २. पुत्र।

प्रतिमा नहिं उर आनि, सुनहु एक भल बात अब।
भूलै नहिं सत्रु मानि, त्यौं चिन्ता हरि की करै।।५४।।

प्रापति के पाँच रस। एक—सान्तरस, ईस्वर भाव सौं भजैं, जैसें चाकर। दूसरे—दास्यरस, राम जी के अथवा नारायन जी आदि के उपासक; जैसें खानाजाद[१]। तीसरे—सख्यरस; एक श्रीकृष्णचन्द्र के भाव सौं भजैं; जैसें सखा। चौथे—वात्सल्यरस; एक ब्रज के भाव सौं भजैं; जैसें माता-पिता। पाँचवें—शृंगार रस; केवल माधुर्य भाव सौं भजैं।।५५।।

हरिय मिलन के रस द्वै तीना। ईस्वर भाव भजैं यौं दीना।।
ज्यौं चाकर कौं जानि सु लेऊ। सान्त रस कौ यह वर भेऊ।।
दसरथ सुवन जानिये सोई। लक्ष्मीपति अथवा गुनि जोई।।
इनकौ आदि उपासक जैसैं। खानाजाद जानिये तैसैं[⊛]।।
सख रस इदं कृष्ण कौ जानौ। धरय भाव भजय यौं मानौ।।
सखा जानिये परम सुहाए। पुनि वात्सल्य सुनहु मन भाए।।

दोहा— ब्रज के एक जु भाय सौं, भजौ जानियौ सोइ।
तात मात त्यौं कहत हैं, पँच रस शृंगहि जोइ।।
केवल है माधुर्य इक।।५५।। भाव तीनि तुव जानि।
भाव नित्य सिद्ध ताहि कौ, सदा धाम रहि मानि।।

तीन भाव। नित्यसिद्ध; जिनकौ स्वरूप सदा धाम में है। औरनि के कल्यान हेत प्रकट रूप धरैं। श्री स्वामीजी के उपासक नित्यसिद्धनि में मुख्य हैं। कृपासिद्ध; ठाकुर की,

---

१. घर में जन्मा, पला हुआ; सेवक; दास। ⊛ पाठान्तर—जैसैं।

आचार्यन की कृपा सौं वस्तु प्रापित होय। साधनसिद्ध; साधन करत-करत कृपा होय। नित्य, कृपा, साधन तीनौं एक हैं। नित्यसिद्ध, अपने स्वभाव सौं भजैं; कृपासिद्ध, कृपा सौं।।५६।।

सोरठा– औरनि केवल जानि, कहै कल्यान हित सब।
धरैं प्रगट यौं मानि, सुनहु अवर वर बात अब।।
जानि उपासिक सोइ, श्रीस्वामी के रसिक वर।
नित्य सिद्ध महँ जोइ, मुख्य समझि उर आनिये।।

कृपा सिद्ध जानौ वर सोई। हरि के जानि महान व जोई।।
मिलै वस्तु तिनसौं वर जानौ। दया सोई आचारज मानौ।।
साधन सिद्ध जानि पुनि ताकौं। मिलै वस्तु साधन करि जाकौं।।
साधन कृपा समझि मन भाई। यह तीनहुँ कौं एक सुनाई।।
नित्य सिद्ध जो परम सुहावा। अपने भाव भजैं सुख दावा।।
कृपा सिद्ध कहिये पुनि तेई। भजैं कृपा सौं जानि व लेई।।५६।।

जो भावक अपने भाव सौं चूकै, तौ फेर वाही भाव सौं आरम्भ करै। ऐसें न विचारै कि भगवान कौं सबही सब भाव सौं भजैं, तौ प्रापति होय रहैगी। जैसें सिंह कौ तरिवौ; जो तरिवे में मुरि जाय; तौ फेर वाही ठौर सौं सूधे होइ तरै।।५७।।

जो भावक हैं परम सुहाए। चूकहि अपने भाव बताए।।
तौ पुनि वही भाव सौं जानौ। करय अरम्भ आप सुखदानौ।।
यह न विचारै अपु वर बाता। सो सुनिये वर परम सुहाता।।
सबय भाव सौं जानि सु भाई। भजियतु हैं भगवान बताई।।
प्रापति है वर नाम सु कोऊ। होइ रहैगी मोहिं मन भोऊ।।
ज्यौं केहरि कौ जानि सु तरना। जो तरिवे में कबहुँक मुरना।।

वही ठौर पुनि जाइ सुहाया। परय फेर सूधौ बनराया।।५७।।

एक सिद्ध ने एक कौं वर दियौ; तेरी चाकरी बनैगी। एक कौं वर दियौ; तू बादसाह होयगौ। सो वाकी चाकरी पहिले बनी, तब दूसरे ने जानी; कहा भयौ जो याकी चाकरी बनी; मैं तौ बादसाह होहुँगो। कहा भयौ जो ढील भई ?।।५८।।

एक सिद्ध ने एक बुलावा। दियौ ताहि वरदान सुहावा।।
बनय साहि तू जानि सु भाई। दयौ एक कौं पुनि वरदाई।।
लगय चाकरी जानि सु तेरी। लगिय चाकरी पहिल न देरी।।
तब दूजे ने जानि आकरी[1]। कहा बनी जो लगी चाकरी।।
होहुँ साह मुहिं जानि कही है। कहा भयौ जो ढील भई है।।५८।।

जा भाँति भावना मन में आवै, ताकौं वाही भाँति दृढ़ जानैं। सन्देह न करै, मैं कैसौ भाव विचारत हौं ; कहा जानैं, वे कैसें होहिंगे ? जैसें मोरनि कौं पावस कौ आगम होय, तैसें भाव कौं साँचौ जानैं। जैसें मघ में जा दिन नागबेलि जरि जाय; ताही दिन पाननि की चोली सब देस में जरि जाय। सब देसवारे देखिकैं जानि लेहिं, मघ में बेलि दागी भई। या भाँति भावक अपने भाव कौं साँचौ जानैं।।

साखी-- नाग बेलि रति प्रीति अति, सुनियौं सन्त सुजान।
खोजी तौ बेलि दही, सत जोजन दह पान।।५९।।

यह सन्देह करै नहिं जानौ। यह कह भाव विचारहुँ मानौ।।
को जानैं वे कैसैं होई। ता कहँ सुनिये पुनि अब यौंई।।

---

१. गुनना, विचारना; अनुसंधान करके मत स्थिर करना।

ज्यौं केकिन कौं आगम होई। पावस रितु कौ जानहु सोई।।
त्यौं यह भाव सत्य जु जानौ। और सुनहु एक परम प्रमानौ।।
ज्यौं जु मगह में जा दिन भाई। जरय बेलि अहि जानि बताई।।

दोहा– ताही दिन सब देस में, पाननि चोली जानि।
सबै जाय जरिकैं सुनौ, यह निस्चै हिय मानि।।
सबही देसनि के तबै, चोली जरी निहारि।
यहै जानि मगहा भई, बेली दाग विचारि।।

सोरठा– सुनियौं अपनौ भाव, भावक याही भाव कहँ।
कहियतु वह जु सुहाव, साँचौ जानौ सकल जन।।

साखी– नाग बेलि रति प्रीति अति, सुनियौं सन्त सुजान।
खोजी तौ बेली दही, सत योजन दह पान।।५६।।

पारस नेंक लेकैं लोहे के ढेर सौं लगावै, तौ सब ढेर सोनो ह्वै जाय। सब ढेर सौं लगावनौ न परै। ऐसें ही जो साँचे में तनकहू मन लगै, तौ काज होय जाय। पारस कौ स्वभाव है।।६०।।

पारस नेंकु सु लैकैं भाई। लोहा ढेर लगावै ताई।।
सोनो होइ सबै सो जाई। पारस न बहुरि सु रासि छुवाई।।
अैसैंही जो साँचे माहीं। लगय नेंकहु मन ता माहीं।।
तौ कारज जानौ वर होई। पारस यहै सुभावन सोई।।६०।।

चुम्बक पत्थर जहाँ लोहा कौं दिखायौ, तहाँ वासौं आय लगै। ऐसें ही वस्तु भावक कौं लगाय लेत है।।६१।।

चुम्बक लै लोहा जु दिखावहु। लगै आय जहँ जानि सुभावहु।।
ऐसैं ही जो वस्तु अनूपा। लेइ लगाइ भावकै रूपा।।६१।।

आल के वृक्ष की कलम करिकैं बीज कौं राखत हैं। जब फेर आल खेत में बोवत हैं, तब अपनी-अपनी जर सौं लगिकैं उपजत हैं। ऐसें ही जहाँ कौ भावक होइ, तहाँ जाइ लगै।।६२।।

आल वृक्ष के कलमैं जानौ। करिकैं बीज रखत उर आनौ।।
जब फिर बवय आल के खेता। उपजय जब यौं जानहु हेता।।
अपनी अपनी जर सौं जानहु। लगि-लगि कैं यौं सरस सु मानहु।।
ऐसैं ही जहँ कौ वर भावक। लगै जाय यह परम सुभावक⊛।।६२।।

जमुना जू की मछरी जल प्रवाह समुद्र में बहि जाय; तब वहाँ हू जमुना ही की धार में आनि परै, वही जल पीवै।।६३।।

हंसपुत्रा[१] की वर मकरैं। मिलय जाय वारिधि में अकरैं।।
जमअनुजा[२] की धार जो होई। करै पान वह जल कौं जोई।।६३।।

बावरौ कुत्ता काहू कौं काटै; तौ जब मरै, तब भूँसि-भूँसिकैं मरै। जाकौं साँची वस्तु कौ घाव होय लगैगौ, तौ कहा वही गति न होयगी ?।।६४।।

स्वान बाबरौ काटै काहू। जबै मरै तब गति यह ताहू।।
भूँसि भूँसिकैं जानि सु लेहू। भावक की यह रीति बतेहू।।
जाकौं लग्यौ घाव यौं जानौ। वस्तु साँच कौ यह परमानौ*।।
ताकी गति कह होइ न ऐसी। कही स्वान की जानिव तैसी।।६४।।

⊛ पाठान्तर—सुहावक। * उनमानौ। १. सूर्यपुत्री, यमुना। २. यमुना।

जो सब सौं निर्बैर ह्वैकैं अपनौ भजन अनन्य होइकैं थोरौहू करै, तौ अपने स्वरूप कौं प्रापित होय। और जो अपनौ भजन करै, औरहू कछू करै; ताकी प्रापति में अन्तर होय। तासौं पाँव पसारिकैं सोवनौ भलौ।

साखी खोजी की–

तन छूटत जो पन रहै, सो तन साहब जोग।
बार बार खोजी डरै, मत पन में परै वियोग।।६५।।

जो सबसौं निरबैरहिं होकैं। करय भजन थोरौहू यौंकैं।।
तौ अपनौ जो परम स्वरूपा। मिलिहै ताकौं जानि अनूपा।।
करय और नेंकहू कछु औरई। प्रापति अन्तराय कहि होअई।।
यातें यहै सुनौ वर कलौ। पद पसारिकैं सोवन भलौ।।
साखी– तन छूटत जो पन रहै, सो तन साहब जोग।
बार बार खोजी डरै, मत पन में परै वियोग।।६५।।

स्वरूप के विचार में ऐस्वर्य कौ लेस राखै, तौ दासन्तन में प्रापित होय। जैसें पिता पुत्र कौं सब टहल अपनी हवाले करै, आप बैठौ रहै; ऐसें आपकौं गुरुनि कौ जानैं और प्रिया-प्रीतम हू कौं अपनौ जानैं, भय न मानै। जैसें पंछी अपने बच्चा कौं सेवै, तैसें सेवै। तन की, मन की क्रिया सौं भय न खाय; दोऊ झूँठी हैं। अपने स्वरूप कौं दृढ़ विचारत रहै। व्यासजी के वचन– पीवैगौ सोई फूलैगौ। तन मन देखि न भूलैगौ।।६६।।

जो स्वरूप कौ परम विचारा। करै लेस[1] ऐस्वर्य विचारा।।
तौ दासन्तन में सुनि भाई। होइ जु प्रापति जानि सुनाई।।

---

१. अणु, अल्प, सूक्ष्मांश।

जैसें तात बोलिकैं लरिकैं। सौंपय कुल भार धर धरिकैं।।
बैसौ[1] रहय आप सो जानौ। अैसौ अपु कौं गुरु कौ मानौ।।
स्यामा स्याम जुगल है जेई। मानहिं करि जिनकौं अपनेई।।
ज्यौं सेवै दुज अपनें सावक। तैसेंई[⊛] सेवै परम सुभावक।।
तन की मन की रहनि जु कोई। भय न करय ताकी सुनि सोई।।
दोऊ मृषा जानिये नागर। रहय विचारत रूप सुखाकर।।
श्रीव्यास जू कौ वचन –
पीवैगौ सोई फूलैगौ। तन मन देखि न भूलैगौ।।६६।।

ऊपर के धाम जिते हैं; सब ऐस्वर्य के हैं; भुव पर जिते धाम हैं, तिनमें माधुर्य है। तिनमें ब्रज सर्वोपरि है।।६७।।

ऊपर के जे धाम सुहाए। ते ऐस्वर्य जानि सुनि गाए।।
भूपर हैं जे धाम सु चारु। तिनमें है माधुर्य विचारु।।
तिनमें ब्रज अधिकी पुनि गाई। अब सुनिये पुनि और सुहाई।।६७।।

भजन सौं मन सिथिल जानैं, तब एक गुरुनि की, साधुनि की क्रिया विचारै; सो होय, और काहू भाँति न होय।
साखी– व्यास भक्त की कुबुधि गहि,कै गुरु गोविंदहिं मारि।
कै या प्रनहि पार लै, कै माला तिलक उतारि।।६८।।

होइ सिथिल मन भजन सु जानौ। एक गुरुनि की क्रिया पिछानौ।।
पुनि साधुनि की जानिय सोई। यहै विचारि सफल मन होई।।
साखी– व्यास भक्त की कुबुधि गहि, कै गुरु गोविन्दहिं मारि।
कै या प्रनहिं पारि लै, कै माला तिलक उतारि।।६८।।

⊛ पाठान्तर–तैसौई। १. बैठे।

जाने अपनौ स्वरूप पहिचानौ, ताकौं कछू बाधा न रही। देस, काल तापर⊛ बाधा न करि सकैं।

साखी– मन हरि के चरनन बसै, तन जो अन्तहि जाय।
तन चरननि मन अन्तही, ताहि न व्यास पतियाय।।६६।

अपनौ रूप पहिचानहिं कोई। ता कहँ बाधा कहूँ न होई।।
देस काल पात्र पुनि कहियै। बाधा या कहँ कहूँ न लहियै।।

साखी– मन हरि के चरननि बसै, तन जो अन्तहिं जाइ।
तन चरननि मन अन्तही, ताहि न व्यास पतियाइ।।६६।

साँचे पदार्थ जाग्रत अथवा स्वप्न साँचे मानै; झूँठी बात जाग्रत अथवा स्वप्न झूँठी मानै।

साखी– और जुगन हांरे प्रगट हे, प्रगट नहिं कलिकाल।
तातें सुपनौ ओट दै, भेंटे गिरिधर लाल।।७०।।

दोहा– सत्त पदारथ जाग्रते, अथवा स्वपन मान।
झूँठी बातैं जाग्रति, अथवा सुपन प्रमान।।

श्रीनन्ददास जू की साखी–
और जुगन हरि प्रगट हे, प्रगट नहिं कलिकाल।
तातें* सुपनौ ओट दै, भेंटे गिरिधर लाल।।७०।।

दो क्रिया सब क्रियान के ऊपर हैं, एक– अन्तःकरन सौं भजन, जाकौं कछू न चाहिये; बाहिर साधन पूरन सिद्धान्त में व्यवहार राखै।

⊛ पाठान्तर–पात्र। * यातें।

साखी— सेवा दर्सन पठन रति, इनमें बहुत हुलास।
तन मन अर्पन लाल हित, कठिन मुख्य विस्वास।७१।

दोहा— एकै अन्तहकरन सौं, भजन चाहिये सोइ।
ता कहँ कछू न चाहिये, यह जानौ सब कोइ।।
बाहिर के साधन सुनौ, पूरन ही बखान।
सिद्धान्तनि में व्यौहार महँ, राखै जान निदान।।

अन्य साखी— सेवा दर्सन पठन रति इनमें बहुत हुलास।
तन मन अर्पन लाल हित,कठिन मुख्य विस्वास।।७१

दूसरी— दुखित कौ दुख दूर करनौ। भूखे कौं अन्न, प्यासे कौं पानी, नंगे कौं वस्त्र, काहू कौं वचन सौं; याही भाँति जितनौ आत्मा के सन्तुष्ट कियें सौं श्रीबिहारी जी प्रसन्न होत हैं, अपनी सेवा सौं नाहीं होत। ये दोऊ सिद्धान्त समस्त धर्म कौ निर्नय है। यामें काहू की तर्क न पहुँचै।।७२।।

यहै दूसरी जानि सु लेहू। दुखितनि कौ दुख दूर करेहू।।
भूखे अन्न प्यासे कौं पानी। नंगे कौं वस्त्र दै सुजानी।।
वचन पोषि काहू कौं भाई। यह विधि सबनि रहै सुखदाई।।
अपु सेवा सौं नाहिं कृपाला। जानि बिहारी अति सुख जाला।।
जितनी करै आत्मा तुष्ट। होयँ प्रसन्न जानि यह पुष्ट।।
यह सिद्धान्त कहै सुनि भाई। सब धर्मनि के निरनै गाई।।
यामें तर्क न पहुँचै काऊ। सुनियौ और प्रसंग सुहाऊ।।७२।।

बल्लभाचार्य जी सौं सिष्य ने पूछी— श्रीमद्‌भागवत में कही है— 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' सो यथार्थ है ? श्रीकृष्णचन्द्र से परे कोऊ नाहीं ? श्री आचार्य ने कही— सास्त्र कौ वचन

ऐसौ ही है। तब सिष्य ने कही— आप अपनी आँखिन देखौ हौ, तैसौ कहौ ? तब आचार्य जू ने कही— हम तौ सदा श्रीप्रिया जू के आधीन देखैं हैं।।७३।।

बल्लभ आचारज सुखदाया। पूछी तिनसौं अनुग सुभाया।।
श्रीभागौत मध्य यह कही। स्वयं कृष्ण भगवान जु सही।।
कृष्णचन्द्र तें परम न कोई। बोले बल्लभ वचन वर एई⊛।।
आगम वचन ऐसैं ही जानौ। बोले दास आप कस मानौ।।
तब आचारज कहन जु लागे। सुनिये सिष्य सुभग अनुरागे।।
हम तौ सदा भाग आधीना। देखत हैं यह जानि प्रवीना।।७३।।

श्रीरामानुज आचार्य के वचन— सुर, देवता, असुर, मनुष्य आदि जो कोऊ हरि सौं विमुख होय, सो असुर; महाऽसुर ज्ञानी, जे हरि के रूप कौ खंडन करत हैं।।७४।।

रामानुज आचारज वचना। सुर अरु असुर नरनि दै गनना।।
हरि सौं विमुख कोइ जो जानौ। महा असुर करि ताहि सु मानौ।।
ज्ञानी करै खंडना भाई। हरि कौ रूप ताहि कौं गाई।।७४।।

जीव गुसाँई ने रूप गुसाँई जी सौं पूछी— तुमकौं पृथ्वी में भारी कौन लागत है ? भारी पाथर हमारी छाती पर धरै, तौहू आलस न होइ; पर जो राजा अभक्त होय, सो हमारे उर कौ साल है।।७५।।

जीव गुसाँई पूछत भयऊ। रूप गुसाँई सौं यह तबऊ।।
भारी कहा तुमय कौं लागै। उपल आनि उर पै धरि नागै[1]।।

⊛ पाठान्तर—वरोई। १. नाकना-घेरना, फाँदना, सब ओर घेरना।

आलस तौऊ होइ न मानौ। एक साल मो उर कौ जानौ।।
होइ अभक्त महीस जु कोऊ। ऊर प्रसंग सुनहु मन भोऊ।।७५।।

गुसाँई हरिवंस जी सौं पूछी– सुरनि के लक्षन कहा? असुर के कहा? कही– पहिचानत नाहीं; हमारे दोऊ पूज्य हैं।।७६।।

हरिवंस गुसाँई जानिये जेई। पूछी तिनसौं सुनहु सु येई।।
लच्छन कहा देव असुरा हौ। कही तबय पहिचानत ना हौ।।
दोऊ पूज्य हमारे जानौ। और प्रसंग सुनौ सुखदानौ।।७६।।

एक समय नारद जी ने भगवान कौं देख्यौ, ध्यान करत हैं। पूछी– सब तुम्हारौ ध्यान करत हैं, तुम कौन कौ करत हौ? कही– अपने सन्तनि कौ।।७७।।

एक समय नारद ने सोई। देख्यौ ध्यान करत हरि कोई।।
तब यह पूछी बात सुखोऊ। तुमस्यौ ध्यान करत सब कोऊ।।
तुम ध्यान करत कौन कौ प्यारे। बोले तबय महा सुख भारे।।
मेरे भक्त महा सुख दाता। तिनकौं करऊँ जानि वर बाता।।७७।।

हरि नाम बिन स्वास जाय है, वाकौ मोल एकं ब्रह्मांड है। जो हरिनाम सहित जाय है, सो अमूल्य है।।७८।।

बिना नाम हरि स्वासा चलई। ताकौ मोल अंड घट भलई।।
जो हरि नाम सहित करि जानौ। सो अमोल है और बखानौं।।७८।।

सेवक कौ स्वभाव गधा कौ सो होय। अपने खाविन्द की टहल अत्यन्त सब दिन करै और खायवे कौं न चाहै। और वाकौ खाविन्द जब चाहै, तब काम करावै; वह उजर न करै। ऐसें चाहिये निष्काम ह्वैकें भक्ति करै।।७९।।

अनुग सुभाव चाहि खर कैसौ। करय टहल खाविन्द[1] गनि ऐसौ।।
सब दिन औ खैवौ[⊛] नहिं चाहै। अरु स्वामी के जब मन भाहै।।
जब चाहै तब टहल करावै। वह उजर[2] नाहिं अपने मन ल्यावै।।
ऐसैं ही चहियै वर भाई। करय टहल निसकाम सुहाई।।७९।।

भक्त कौ स्वभाव कुत्ता कौ सो चाहिये। जा समय वाकौ खसम ललकारै, तत्काल उठिकैं जाय और वह जा ओर कूँ बतावै, ताही ओर कूँ चलै। जद्यपि दुःखी और असमर्थ होय, तद्यपि ढील न लावै।।८०।।

भक्त स्वभाव स्वान कौ चहिये। जब ललकारत स्वामी कहिये।।
उठत तुरत वह जानि सुलेहू। जितहि चलावै तितहि चलेहू।।
जद्यपि दुखी समर्थ न जानौ। तद्यपि करय न ढील सुमानौ।।८०।।

एक बजार में नाना भाँति की वस्तु छोटी-बड़ी धरी है और मोल वाही में धरौ है। लेनवारे कौं चाहिये, अच्छी वस्तु लै लेय; कछू लगत नाहीं।।८१।।

एक बजारनि नाना भाँती। छोटी बड़ी वस्तु गन पाँती।।
धरिय तहाँ पुनि औरहू कहियै। धरौ मूल नाम जु लहियै।।
यह चहिये गाहक कौं भाई। आछी लेय लगत कछु नाहीं।।८१।।

यह प्रानी गृहता में दृष्टि न करै कै मैं गेही हूँ। जैसें आगें महत्पुरुषनि ने प्रभु कौं लाड़ सौं,सनेह सौं भजौ है; ऐसें ही भजै। गृह और बैराग, त्याग कहा ?।।८२।।

---

१. स्वामी। ⊛ पाठान्तर—ओपै वो। २. उज्र-आपत्ति, विरोध, बहाना; हेतु।

करय न दृष्टि ग्रेह में प्रानी। कै यह मेरी है यौं मानी।।
ज्यौं महान आगें के जानौ। प्रभु कौं भज्यौ लाड़ सह मानौ।।
ऐसैं ही भजियै सुख लाहै। कहा ग्रेह वैराग कहा है।।८२।।

भगवान में चारि गुन हैं। भक्तवत्सलता, आर्तिहरन ब्रह्मण्य देव, सरनागत-प्रतिपाल। सो जा समय दुर्वासा ऋषि ने अम्बरीष जी सौं क्रोध कियौ, तब सुदर्सन चक्र दुर्वासा जू के जरायवे कौं और अम्बरीष जू के सहाय कौं प्रगटत भयौ। वे भागत भये नारायन जू के सरन गये। भगवान नारायन जू ने कही— वे ही सहाय करैंगे। भक्तनि के बाँधे मोपै न छुड़ाये जायँ, मेरे बाँधे साधु छुड़ावैं।।८३।।

कहियतु हैं हरि में गुन चारी। भक्तवत्सल ब्रह्म हितकारी।।
आरतिहरन सरनागत पालक। एक समय दुर्वास विसालक।।
कियौ क्रोध नरपति सौं जबहीं⊛। प्रगट्यौ चक्र सुदर्सन तबहीं।।
रिसि के दाह लियें यह जानौ। अम्बरीस के सहाइ पिछानौ।।
गये सरन नारायन केई। बोले तबय आप हरि एई।।
सोरठा— करिहैं वेई सहाइ, भक्तनि के बाँधे सुनहु।
छूटै मो सह नाइँ, मो बाँधे जन छोड़हीं।।८३।।

एक ने अपने गुरु सौं कही— मोकौं प्रभु कौ दर्सन जुगल होइ। आज्ञा करी; बारा बरस झूँठ मति बोलै। ग्यारा बरस न बोल्यौ। एक समय कोई अपने लरिका कौं वाके पास छोड़ि गयौ; जबलगि मैं आऊँ गाँव तें तबलगि राखौ। जब वह लरिका रोवन लागौ; उन कही— तेरौ पिता तोकौं लड्डू लेन

⊛ पाठान्तर—तबहीं।

गयौ है, मत रोवै। याके सुनत ही गुरु बोले– अब दर्सन न होंइगे। एक बार के झूँठ बोले सौं दर्सन न होंय।

साखी– सत्य वचन आधीनता, पर त्रिय मातु समान।
एते पै हरि ना मिलैं, तुलसीदास जमान।।८४।।

दोहा– कही एक ने गुरुनि सौं, हरि जुग दरसन होइ।
गुरु सासन बारह बरस, झूठ न बोलहु कोइ।।

बोल्यौ नहिं बरस ग्यारा यौं*। एक समै कोई जानि सु आयौ।।
गयौ राखि वाके ढिंग जानौ। अपनौ सुवन सुनहु यौं मानौ।।
राखौ जबलगि याहि सुनाऊँ। तबलगि एक ग्राम है आऊँ।।
लग्यौ रोज[१] करिवे वह तबही। रोवत है क्यौं बोल्यौ जबही।।
तेस्यौ तात गयौ सुनि भाई। मोदक लैन तोहिं मन भाई।।
सोई वचन सुनत गुरु कही। अब दर्सन हूहै नहिं सही।।
दरसन होइ नहिं यौं जानौ। एक बेर के मृषा बखानौ।।

साखी– सत्य वचन आधीनता, पर त्रिय मातु समान।
एते पै हरि ना मिलैं, तुलसीदास जमान।।८४।।

चकोर चन्द पै आसक्त है। जबतक चन्दा उदय न होइ, तबतक व्याकुल रहै। जब उदय होइ, तब वाकौं देखत-देखत गर्दन और दृष्टि न फेरै। जब चन्दा छिप जाय, तब देखत ही देखत औंधौ गिरि रहै। सब दिन रहै, प्रेम लच्छन है। हरि बिन क्यौं राखौं ये प्रान।।८५।।

दोहा– रक्तनैन[२] उडुराज[३] पै, सुनि आसक्त बखानि।
जबलगि उदै न होइ वह, तबलगि व्याकुल मानि।।

---

* पाठान्तर—लौं। १. रोना। २. चकोर। ३. चन्द्रमा।

सोरठा— होइ उदै जब मानि, लखत लखत यह सरस गति।
ग्रीव नजर यौं भानि, फेरे न जब छिपि जाइ वह।।
लखत लखत यौं जानि सु लेहू। सब दिन औंधौ रहय गिरेहू।।
प्रेम लच्छना है सोई भाई। हरि बिन क्यौं राखौं जियराई।।८५।।

पपीहा, जाकौं चातक कहिये; स्वाति ही कौं चाहत है। वा ओर तें पाथर और धूरि और ओले परत हैं; वह दुख नाहीं मानत है; फिर वाकौं स्वाति की प्रापति होत है।।८६।।
स्वाति बूँद कौं चाहत रहई। चात्रिक नाम पपीय सौं कहई।।
वाइ ओर तें पाथर धूरा। और ओल परत हैं पूरा।।
वह बाधा नहिं मानहिं कबहीं। मिलै स्वाँति पुनि ताकहँ तबहीं।।८६।।

गुरु लक्ष कौ स्वरूप— काहू के द्रव्य बहुत हो। अन्त समय पुत्र सौं कही— द्रव्य धरती में कलसा के तरें गड़ौ है, तीसरे पहर कौं खोदिकैं निकारि लीजौ। उन विचारी, कलसा के खोदें तें घर जात रहैगौ और कलसा के तरें धन कैसें गड़ौ होइगौ ? बहुत चिन्ता भई। तब काहू विवेकी ने कही— कलसा की छाँह तीसरे पहर जहाँ परत है, तहाँ खोदौ; तब पायौ।।८७।।
गुरु लक्ष कौ स्वरूप —
उपलक्षित गुन सुनहु सुजानौ। रहय वित्त काहू कौ मन मानौ।।
अन्त समय वह पुत्रय बोली। बोले वचन जिय की खोली।।
रह्यौ भूमि घट अधहि सुनाऊँ। गड़ौ दर्व यह तोहिं बताऊँ।।
तीजौ पहर होइ सुनि तबही⊛। लीजौ खोदि ताहि तुम तबही।।

⊛ पाठान्तर—जबही।

तब विचारी उन यह बाता। खोदें तें अब निलय सु जाता।।
और कौन विधि धर्‍यौ सु जाई। कलसहिं नीचे धन सुखदाई।।
तबय भई बहु चिन्ता भारी। बोल्यौ कोई विवेक विचारी।।
तीजे पहर जहाँ जहँ परई। छाया कलस जानि यह वरई।।
जहँ खोदैगौ नरवर तबहीं⊛। मिलै तोहिं कौं वित्त वह तबहीं।।८७।।

माया कौ स्वरूप– मोहनी स्वरूप धरिकैं महादेव सौं पूछी– तुमने माया जीती है ? कही– नहीं जीती। माया अति दुरंत है। मोकौं इतनौ ख्वार कियौ। भगवान् ने कही– यही माया के जीतिवे कौ लच्छन है; अपनी भक्ति कौ अभिमान न करै, हरि की माया सौं डरपत रहै।।८८।।

धर्‍यौ रूप माया कौ* ऐसौ। मोहनी रूप कहत हैं जैसौ।।
पूछनि लगे तबय सिव पाईं। लई जीति माया कै नाईं।।
बोले ईस तबय सुखदाया। नहिं जीति मैं कहूँ सुनाया।।
माया महा दुरत्तय[1] जानी। करौ छार मो इतनौं बानी।।
श्रीभगवान कहनि तब लागे। लच्छन जीतनि सुनहु सभागे।।
अपनी भक्तिन कौ अभिमाना। करय न डरय माया हरि जाना।।८८।

चारौं मुक्ति कौ स्वरूप– सायुज्य– ब्रह्मज्ञानी कौं, जो सबकौं ब्रह्म मानत है। जोति में प्रापित होइ, पर जैसें पटबीजना न्यारौ भासै। चाँदनी में जैसें कछू सुखहू नाहीं, दुखहू नाहीं। सारुप्य– आत्मज्ञानी, चित्रवत् बैठे रहैं; बोलिवे-डोलिवे की सामर्थ्य नाहीं। सालोक्य– जे हरि के स्वरूप कौं सत्य मानत

⊛ पाठान्तर–जबहीं। * ने। १. जिसे पार करना कठिन हो।

हैं, स्वरूप कौ भाव नाहीं जानत हैं। ते लोक में प्रापित होहिंगे। बोलैं, चलैं, पै हरि के निकट न पहुँचैं। सामीप्य– जे भाव सहित हरि कौ स्वरूप मानत हैं। ते निकट रहैं, टहल करैं। कोऊ दूर होइ, जैसौ भाव होइ। सारिष्टि– अपने भक्त कौं देत हैं, अपनौ सो ऐस्वर्य, ताकौं भक्त कदाचित् न लेहिं।।८६।।

चारौं मुक्ति कौ स्वरूप –

जब सायोज्य मुक्ति जो आई। ज्ञानी ब्रह्मनि कौं कहि जाई।।
ब्रह्म सबनि कौं मानत तेही। मिलय जोति में मानत येही।।
पट⊛[1] अद्वैत जु भासै न्यारौ। चन्द ज्योति में जानि सु प्यारौ।।
दुखहु नाहिं कछु सुखहु नाहीं। अब सारूपि सुनहु चित लाहीं।।
आतम ज्ञानी जे वर कहिये। तिनकौं जानि चित्रवत रहिये*।।
कहनि सुननि की नाहिं समर्थ। अब सालोकि सुनहु पुनि अर्थ।।
जे स्वरूप सब हरि के मानत। स्वरूप भाव कौं नाहीं जानत।।
मिलिहैं सोई लोक महँ जाई। बोलयँ चलयँ जानि यह भाई।।
पै हरि निकट न पहुँचनि पावैं। अब सामीपि सुनहु वर गावैं।।
भाव सहित जे हरि कौ रूपा। मानत जानि परम सु अनूपा।।
रहय टहल में निकट सु तेही। कोऊ दूर भाव जस होही।।
जो सारिष्टि पुष्टि करि गाई। देत भक्त अपने कौं भाई।।
अपनौ सो ऐस्वर्य सुहायौ। लेत नहीं पर भक्त कदा यौं।।८६।।

जे ज्ञानी श्रीवृन्दावन में बसैं हैं, हरि के स्वरूप, धाम कौं नाहीं मानत; तिनकौं गधा, कूकर, सूकर की जोनि प्रापित

---

१. पटबीजना, जुगनू। ⊛ पाठान्तर—जब। * कहिये।

होइ श्रीवृन्दावन में; ते फेर पाछैं मुक्ति होइ। यासौं बहुरि जन्म न धरैं।।६०।।

बसय जौन वृन्दावन ज्ञानी। हरि कौ रूप धाम नहिं मानी।।
तिनकौं मिलय जोनि खर कोला[1]। बन के बीच मुक्ति पुनि होला।।
तासौं जनम न धरैं फिर जानौ। और प्रसंग सुनहु सुखदानौ।।६०।।

प्रसाद कौ थार धर्‌यौ, ताके सन्मुख दर्पन धर्‌यौ है। सब प्रसाद कौ प्रतिबिम्ब दर्पन में भासत है। प्रतिबिम्ब सौं कोई तृपित न होइ। जब प्रसाद पावै, तब स्वाद पावै, तृपित होइ। ऐसें वस्तु कौं सेवै, तब पूरन सुख पावै। प्रतिमा आदि कौ सेवन साधन है।।६१।।

बाराह पुरान साख –
धर्‌यौ थार परसाद सुहायौ। मुकुर ताहि के आगम भायौ।।
सबै सौंज प्रतिबिम्ब सुहाई। भासै मुकुर महा छबि छाई।।
वाहि बिम्ब कौ खाइ जु कोई। त्रिपित न होइ जानियै सोई।।
पावै जबय प्रसाद सु नीके। आवै स्वाद तबय वर नीके।।
पूरन होय जबय सो मानौ। ऐसैं वस्तु सेइयै जानौ।।
पूरन सुख मानत तब चारु। सेवन मूरति साधन भारु।।६१।।

श्रीमद्‌भागवत साख– मनुष्य की खोपरी, तामें कुत्ता कौ माँस मदिरा में पाक कियौ। ताकौं सिर पर धरिकैं चल्यौ मार्ग छिरकत। काहू ने पूछी– ऐसे अपावन कौं मार्ग छिरकनौ कहा ? कही– यह अपावन नहीं । मार्ग या लियैं छिरकत हौं, कदाचित् कोई कृतघ्नी या मार्ग में आयौ होय, तौ अपावन होइ

---

१. सूअर।

जाय। कृतघ्नी याहू तें असुद्ध है। कृतघ्नी, विस्वासघाती, गुरुदोषी तीनों एक ही हैं। ऐसे प्रानी सौं पृथ्वी भार मानत है।।६२।।

श्रीमद्भागवत साख –

नर की इंदु[1] खपरिया तामें। स्वान मॉस धरि रखौ जामें।।
कस्यौ पाक आसव सौं ताकौ। छिरकत गैल चलौ लै ताकौं।।
पूँछनि लग्यौ कोई मन भावन। लिये माथ पर महा अपावन।।
ताकौं कहा छिरकनौ गैल। लग्यौ कहनि तब वचन अपेल।।
यहै अपावन नाहिं विचारौ। छिरकत हौं मारग यौं भारौ।।
जो कहुँ यह मारग में सोई। निकस्यौ होइ कृतघ्नि व कोई।।
तौ जु अपावन होइ व जाई⊛। यातें महा असुद्ध जु वाई*।।

दोहा– गुरु द्रोही विस्वास घातकी, और कृतघ्नि जु मान।
तीनौं कहियतु एकसे, भूखौ दुखी यौं मानि।।

सेरठा– पुनि कहियतु भै देह, तिनसौं मानत भार भुवि।।६२।।
पुनि कहियतु औरेह, साख बराह पुरान की।।

बाराहपुरान साख– एक स्त्री ने तुलसीदास सौं पूछौ– श्रीवृन्दावन वास कौ प्रताप कहौ ? कही– बिना साधन धाम कौं प्रापित होइ। कही– तुम काहे कौं वैराग करत हौ; मोसौं भोग करौ ? कही– हमकौं निरन्तर वास कौ भरोसौ नाहीं; कहा जानैं सरीर कहाँ छूटैं।।६३।।

पूँछनि लगी नारि इक आई। तुलसीदासहिं सौं यौं जाई।।
विपिन वास कौ कहौ प्रताप। बोले वचन तबय यौं आप।।

⊛ पाठान्तर–जोई। * वोई। १. चन्द्रमा; चाँद (खोपड़ी)।

मिलय धाम बिन साधन जानौ। बोली नारि तबय यौं मानौ।।
करत काहि कौं तुम वैरागा। करहु भोग मोसौं बड़भागा।।
वास निरन्तर कहियतु जाही। हमकौं नाहिं भरोस सु ताही।।
कह जानैं कहँ छूटय अंगा।।६३।। ज्ञान जथारथ जानि अभंगा।।

जिनकौं अपने स्वरूप कौं जथार्थ ज्ञान है; वे सेवा, पूजा और कछू व्यवहार की क्रिया करैं, तौ कहा आस्चर्य है ? एक नट दाँत सौं तरवार पकरैं, सिर पर गागरि धरैं, बगल में गागरि लेइ और बर्त पै दौरौ-दौरौ फिरै। श्रुति वाकी वा बर्त में ही है। और हू सब साधत है, चूकत नाहीं। तौ जे विवेकी हैं, तिनतें कहा असम्भव ? श्रुति अपनी स्वरूप में राखैं और सरीर हू सौं जो बनैं, सो अच्छी बनैं।।६४।।

जिनकौं अप स्वरूप कौ होई। सेवा पूजा क्रिया करि सोई।।
पुनि व्यौहार सुनहु वर बानी। कह आस्चर्य सुनहु सुखदानी।।
रहय एक नट असि[1] दुज[2] दाबै। सिर पर कुम्भ बगल में लावै।।
फिरै बरत[3] पर दौरौई दौरौ। सुरति बरत में यौं सुनि ब्यौरौ।।
औरहु सब साधै चूकि नाहीं। तौ जेई विवेकी हैं सुखदाहीं।।
कहा अचम्भव सुरतहि जानौ। सबय अप स्वरूप में मानौ।।
अरु जो बनय अंग तें भाई। आछी बनैं जानि सुखदाई।।६४।।

भागवत चाह हरि की प्रसन्नता की राखैं, अथवा प्रापति की राखैं। ज्ञानी संसार तें छूटिवे की राखैं।।६५।।

राखयँ चाह भागवत एही। हरि प्रसन्न प्रापति पुनि तेही।।
राखयँ चाह सु ज्ञानी आपही। भव छूटत तें जानिब सबही।।६५।।

---

१. तरवार। २. द्विज; दाँत। ३. मोटा रस्सा।

मन की वृत्ति अपने स्वरूप में ऐसें राखै, जैसें निसान चलै आगैं और फहराय पाछैं।।६६।।

मन की वृत्ति रूप में ऐसें। चलय निसान जानिये तैसें।।
फहराय जोई जानौ वर पाछैं। आगैं कौं चलत जु आछैं।।६६।।

प्रापति की दो क्रिया हैं, एक– सनकादिक, एक– जनकादिक। विरक्त होय, सनकादिक रीति धारन करै, तौ प्रापित होय; गृही होय, सो जनकादिक रीति धारन करै। साखी–

धारा तौ दोई भली, कै गृह कै वैराग।
गेही दासन्तन करै, वैरागी अनुराग।।६७।।

क़िरिया दोई मिलन की जानौ। इक सनकादिक जनकहि मानौ।।
विरक्त होइ सो सनकहि रीती। धरय होइ सो प्रापति हीती।।
गृही लेइ रीति वर एही। जनकादिक वर जानहु तेही।।
कबीर साख जानहु सब कोई। ग्रेह विराग क्रिया ये दोई।।
ग्रेही होइ दासंतन करई। वैरागी अनुराग सु ढरई।।६७।।

विवेकी कौं चाहिये, जो वृत्ति धारन करै, ताही भाँति हरि पूरन करैं।

साखी– तुलसी धीरज के धरै, कुंजर मन भरि खाय।
टूक टूक के कारने, स्वान घरा घर जाय।।
तुलसी बिरवा बाग में, सींचत हू कुम्हिलाहिं।
राम भरोसे जे रहैं, पर्वत पै हरियाहिं।।६८।।

होइ विवेकी यह वर चहिये। करय रीति धारन सो कहिये।।
ताही भाँति करैं हरि पूरी। डिगै नहीं यह ता सहँ सूरी।।

दोहा– तुलसी धीरज के धरै, कुंजर मन भरि खाय।
टूक टूक के कारने, स्वान घरा घर जाय।।
तुलसी बिरवा बाग में, सींचत हू कुम्हिलाहिं।
राम भरोसे जे रहैं, पर्वत पै हरियाहिं।।६८।।

एक कोई बाग में बैठौ है। सब सोभा देखत है। एक ने कही–हमहूँ बाग बनावैंगे; सोभा देखैंगे। ताकौ दृष्टांत–एक आपकौं प्रापित मानत है; एक कहत है, प्रापित होंयगे। जो कोऊ जैसी प्रतीति करै, तैसैई है। जो कोऊ जा बात कौ अधिकारी है, ताकौं ताही भाँति की प्रतीति, निस्चय होय और तैसौई सिद्धान्त करै। बादसाह आपकौं सदा बादसाह ही जानै, बादसाही की बातें करै; अमीर अमीरी की, सिपाही सिपाही की, साहूकार साहूकारी की, भिखारी भीखारी की, मजूर मजूरी की। कर्म, ज्ञान, भक्ति, प्रेम कर साधनसिद्ध, कृपासिद्ध, नित्य सिद्ध, जाकौ जो अधिकारी है; सोई ताकौं प्रतीति बँधै, ताही कौं मन, बच, कर्म निस्चय जानै; ताही कौ सिद्धान्त करै।।६६।।

स्थित हो कोई बाग मँझारी। लखत रहै सोभा फुलवारी।।
लग्यौ कहनि एक ऐसैं भाई। हमहूँ बाग बनावैं जाई।।
लखयँ तबय सोभा सुख सारा। ता कहँ यह दृटान्त विचारा।।
एक अपुन कौं मानत ऐसैं। सदा प्रापित जानहु जैसैं।।
एक कहै ऐसैं सुनि भाई। हूहैं कबहुँक प्रापति जाई।।
करय भावना जैसिय कोई। ता कहँ तैसी जानि सु होई।।
जा कहँ जो अधिकारी जानौ। ता कहँ ताही भाँति बखानौ।।

होइ प्रतीति हिय⊛ करि चारु। तैसिय कथनी करय विचारु।।
साहि साहि की बातैं करई। पुनि अमीर अमीरहि ढरई।।
अरु पैदर की पैदर जानौ। साहूकार भिखारी जानौ*।।
करय मजूर मजूरी केई। अपनी अपनी खैंचैं एई।।
दोहा— कर्म ग्यानी प्रेमाभक्ति, साधन सिद्धहि होइ।
कृपासिद्ध नित्यसिद्ध है, अधिकारी ता कहँ सोइ।।
सो प्रतीति ताही सौं बँधै। मन वच क्रम ताही सौं सधै।।
ताहि सिद्धान्त रहै पुनि सोई।९९।।जब जानौ निज रूपहि कोई।।

अपने स्वरूप कौं जब जानै, प्रतीति बाँधै, तब फेर सन्देह न करै। सरीर की अनेक भाँति क्रिया हैं, तिनमें मन न देइ; जानै वही मेरौ स्वरूप एकरस है।।१००।।

बाँधय तबय प्रतीति सु जानौ। पुनि सन्देह न करय जु जानौ❋।।
यहै कलेवर की गति लहियै। भिन्न प्रकार क्रिया जो कहियै।।
देइ न तिनमें मन सुनि कोई। वहै स्वरूप जानियै सोई।।
रहइ एक रस जानि सु लेहू।१००।।जीव पालन की टहल सुनेहू।।

हरि ने पालन की टहल विष्णु कौं दई। उत्पति की ब्रह्मा कौं। प्रलय की महादेव कौं। करुना की सनकादिक कौं; सो सनकादिक करुना-अवतार हैं। जीवनि कौं हरि सौं❋❋ सन्मुख करि देत हैं।।१०१।।

हरि ने दईय विष्णु कौं जानौ। उत्पत्ति विधि सिव प्रलय बखानौ।।
करि सनकादिक करुना विचारी। सो सनकादिक करुना अवतारी।।

⊛ पाठान्तर—हीति। * मानौ। ❋ मानौ। ❋❋ की।

करयँ जीव कौं हरि की ओरा।१०१।। जो भागवत जु प्रेम सहोरा।।

जे परम भागवत हैं, तिनकौ यही कर्तव्य है, जीवनि कौं सन्मुख करैं।।१०२।।

है करतव्य तिनहि कौ भाई। करयँ जीव हरि ओर सुभाई।।१०२।।

एक बादसाह के हलालखोर[1] ने कही कि साहब ने भली करी, मोकौं बड़ौ साहूकार न कियौ और वजीरहू न कियौ और बादसाह हू न कियौ और बादसाह कौ पीर[2] हू न कियौ। बादसाह ने सुनिकैं कही कै याकी* गर्दन मारौंगो। पहिले अपने पीर के पास गयौ, कही– यह हलालखोर ऐसैं कहत है। याकी* गर्दन मारौंगो। इनने तुम्हारी निंदा करी, सो मोपै सही नहीं जात है, अपनी तौ मैं क्षमा हू करौं। तब पीर ने कही– गर्दन मत मारै; वह साँच कहत है। प्रजा में वह साहूकार बड़ौ है; वाकौं बड़ौ दुःख है; वातें वजीर कौं दुःख अधिक है, वातें तोकौं अधिक है, तोसौं मोकौं अधिक है। काहे तें; मोकूँ तेरी सब बात की चिन्ता रहत है। यातें जेती बड़ाई, तेतौ दुःख।।१०३।।

एक भक्त सौं अन्तज कही। करी भली साहिब ने सही।।
साहूकार उजीर[3] जू जेते। साहि[4] पीर कहिये पुनि तेते।।
इनमें मोहिं जु कस्यौ न कोऊ। करी कृपा हरि ने यह सोऊ।।
साहि सुनी यह बोल्यौ जबही। करिहौं छिन्न गल्यौ मैं अबही।।
निजुहि पीर पर तबहीं गयऊ। पूछी सुपच ने ऐसें कहऊ।।

---

१. भंगी, मेहतर। २. गुरु। ३. वजीर, मंत्री ४. बादशाह।

या कहँ गरदन देउँ सु आजू। बोले पीर तबय सुख साजू।।
करहु न छिन्न गलौ यह जानौ। वा कहँ वचन सत्य करि मानौ।।
सबय प्रजा में बड़ौ सु लहिये। साहूकार जाहि सौं कहिये।।
ता कहँ पीड़ा अधिक जु जानौ। तातें अधिक वजीर जु मानौ।।
तू वाहू तें अधिक दुखारी। मैं तोतें सुनि अधिक विचारी।।
मो कहँ रहै फिकरि सब तेरी। जेतौ विरद तितौ दुख हेरी।।१०३।।

एक ने प्रस्न करौ⊛ सास्त्र और आचार्य श्रीवृन्दावन कौ स्वरूप जैसौ गावत हैं, तैसौ देखिवे में आवत नाहीं; सो यह और वह स्वरूप एक है अथवा दो हैं। ताकौ दृष्टान्त करि उत्तर दियौ। यह स्वरूप जो देखिवे में आवत है, सो ऐसें है, गुरुन कौ तिष्ठ[1] सरीर देखिये और वह स्वरूप, जैसें गुरुन कौ भावरूप स्वरूप, सो दोऊ एक ही हैं। तिष्ठ सरीर कौ सेवन करै, तौ भाव-रूप स्वरूप कौं प्रापित होइ। जो कोई कहै— भावरूप स्वरूप कौ सेवन करै। तौ कहा प्रापति न होय ? यह बात बनैं नहीं। जो कोऊ भावरूप स्वरूप कौं पहिचानैगौ, सो तिष्ठ स्वरूप ही सौं पहिचानैगौ; बिना तिष्ठ स्वरूप सेवन करै, कदाचित् बनैं नहीं। दूसरौ दृष्टान्त— नट के इन्द्रजाल कौ। नट राजा के आगैं आकास में चढ़ि जाय। वहाँ सौं अपनी देही सब काटिकैं डारि देय; नटनी सती होय। फिर वह नट आय खड़ौ होय, राजा सौं कहै— तैंने मेरी स्त्री घर में दई है। तब बहुत द्रव्य लैकैं स्त्री कौं बुलाइ लेय। न वाकी देही कटी, न

⊛ पाठान्तर—करी। १. अर्थात् स्थूल स्वरूप जो दीख पड़े है।

वह सती भई, दृष्टिमात्र चरित्र है। तैसें ही श्रीवृन्दावन चन्द्र नित्य, सत्य, एकरस आनन्दमय रत्न जटित जैसें सास्त्र और आचार्य कहत हैं, तैसें हैं। यह लीला स्वरूप वा स्वरूप को ढाँपन है। बिछौना बिछाय राखे हैं। तापर श्रीकृष्णचन्द्र अवतार धरिकैं लीला करत हैं। पर वह स्वरूप कैसौ है, कोई पाताल लगि खोदै, तौऊ न पावै; अन्तरिक्ष-आकास लौंहू न पावै। दृष्टि सौं यह लीला वपु है, सोई दृष्टि परै; वह स्वरूप हृदय की दृष्टि परै। जब कृपा होय, तब देखिये।।१०४।।

करिय प्रस्न सिष गुरु सौं जानौ। आगम निगम महान बखानौ।।
वृन्दावन वर रूप सुहायौ। तैसी दृष्टि न मेरी आयौ।।
यहै स्वरूप नजर में आवै। यहै और वह एकहि भावै।।
अथवा दोही रूप सु लहियै। तबय गुरुनि वर जानि सु कहियै।।
यहै दृष्टि में आवै रूपा। ज्यौंइ गुरुनि कौ नेष्ट[1] स्वरूपा।।
परय दृष्टि सुनि लेहु सुजाना। ऐसैं ही यह गनौ निदाना।।
वहै स्वरूप जानि वर ऐसैं। भाव स्वरूप स्वामि कौ जैसैं।।
नेष्ट स्वरूप सेइकैं मानौ। भाव स्वरूप कौं प्रापति जानौ।।
मिलय भाव रूपा तब सोई। कहय कदाचि और वर कोई।।
भाव रूप जो कहियतु प्यारौ। सेवहिं ताहि जानि सुख भारौ।।
तौ कह होइ व प्रापति नाहीं। यहै बात सुनि बनैं न काहीं।।
भाव स्वरूप रूप वर सोऊ। ताहि पिछानि कदाचित कोऊ।।

दोहा— तेही नेष्ट स्वरूप सौं, पहिचानै सुनि कोइ।
बिना नेष्ट मिलिहै नहीं, सुनहु कदाचित सोइ।।

---

१. ऋत्विक्, आचार्य।

पुनि दृष्टान्त दूसरौ जानौ। इन्द्रजाल कौ ताहि बखानौ।।
नट महीस के आगें आई। गयौ गगन में जानि सुभाई।।
करिय छिन्न वह देह सु तबहीं। दईय डारि भूपर उन जबहीं।।
नारि होइ सह गवन सु भाई। होइ खड़ौ फिर नट है आई।।
दई नारि मेरी तैं घर में। यह निस्चै जानौं अब मैंने।।
बोलय वचन राजा सौं जबहीं। देउ बुलाय नारि मो अबहीं।।
लेइ वित्त ता सहँ नट प्यारा। लेइ बुलाइ अपुन पुनि दारा।।

दोहा— नहीं कटी वह देह नट, नहीं सती वह सोइ।
मात्र दृष्टि यह जानिये, महा चरित्रहि जोइ।।
सत्य नित्य आनन्दमय, कुन्दन जटित वपु जानि।
वृन्दावन वर एक रस, ज्यौं आगम निगम बखानि।।

पुनि आचारज त्यौं करि गायौ। जोई है यह जानि सुहायौ।।
लीला रूप समझि यह कहिये। वह स्वरूप कौ ढाँपन कहिये।।
जानौ एई बिछौना भाई। राखौ सोई सु चीरु बिछाई।।
धरि अवतार कृष्ण वर तापै। लीला करत परम हित जापै।।
पर वह रूप कैसौ है भाई। खोदै कोई पताल लगि जाई।।
अन्तरिक्ष आकासहि देखै। तौहू न पावै जानि बिसेखै।।
यहै दृष्टि सौं जानि सुलेहू। यह लीला वपु सरस गनेहू।।
सोई परै दृष्टि यौं मानौ। वह स्वरूपै हृदहिं⊛ जानौ।।
होहि दया जब या पर भाई। तबय देखियै ताहि सुहाई।।१०४।।

कोयल जब अंडा देइ, तब कौवा के घर में धरि आवै। कौवा सेवन करै, बच्चा कौं चुगावै। बच्चा बड़े होहिं, तब

⊛ पाठान्तर—एकहि।

कोयल सौं जाय मिलैं। ऐसें ही जहाँ कौ अधिकारी होय, तहाँई जाय रहै। कुसंग कछू बाधा न करि सकै।।१०५।।

कोयल अंड जानि जब करई। काग निकेत जाइ पुनि धरई।।
करय सेव सावकनि[1] सुहावा। परम हेत पुनि तिन्हें चुगावा।।
होंइ बड़े सावक वे जबहीं। मिलैं जाहि कोयल कौं तबहीं।।
जहाँ कौ अधिकारी तहाँई रहत है। कछु कुसंग न ताहि करै है।१०५।

उनचास कोटि जोजन पृथ्वी है। लीक जो खींचै, ताही की है। काहू कौ साझौ नाहीं। आचार्जन ऐसैं ही अपने-अपने भाव सौं हरि कौं बस कियौ है। जाने जा भाव सौं वस्तु पाई, तहाँ दूसरे की समाई नहीं। काहू ने लीक बड़ी खैंची, काहू ने छोटी।।१०६।।

खैंचै लीक कोई यह जानौ। ताही की करि ताहि बखानौ।।
साझौ नहिं ताहि में काहू। ऐसैं ही जु महान सु काहू[⊛]।।
अप अप भावनि सौं यौं जानौ। हरि कौं कियौ बसय में मानौ।।
जाने जोई भाव सौं पाई। वस्तु महा अतिसै सुखदाई।।
दोहा— जहाँ समाई नाहिंने, दूजे की यह मानि।
काहू खैंची लीक बड़, काहू छोटी जानि।।१०६।।

ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, वरुन, कुबेर आदि सबकौं हरि ने एक-एक टहल दई है। ताही पर सब वर्तमान हैं। या जीव कौं एक यही टहल दई है, आप भजन करै, और न करै*।।१०७।।

---

१. बच्चे। ⊛ पाठान्तर—सुहाहू। * औरनि करावै।

दोहा— कौसिक[1] वा विधि वरुन पुनि, धनपति इन्दु व सोइ।
हंस[2] आदि हरि ने दई, टहल एक एक जोइ।।
सोरठा— ताही में नित जानि, सदा निरन्तर रहत वर।
याहि जीव कौं मानि, भजन एक पुनि टहल है।।
औरनिकौं पुनि सनमुख करहीं। सुनहु और चित आपुन धरहीं।।१०७

एक सोमिन के घर में द्रव्य सौ करोर हो। तामें एक दमरी खर्च न करतौ। नारदजी ने कही— ऐसौ धन हरि के हेत लगै, तौ भलौ है। वाही कौ स्वरूप धरिकैं एक समय वाही के घर में गये। द्वारपालक बैठाय गये और कहि गये— मेरौ सौ स्वरूप धरिकैं एक सेवरा आवैगौ, ताकौं आवनि मत दीजौ। घर में जाय, सब धन लुटाय दियौ। वह सोमिन खबर पाइकैं आयौ। द्वारपालकंनि जानि न दियौ। तब हाकिम के फरियादी गयौ। हाकिम ने नारद जी कौं बुलायौ। दोऊ कौ स्वरूप एक सौ ही देखौ, तब ताकी स्त्री कौं बुलायौ, स्त्री आई। नारद जी ने वाकौ मन फेरि दियौ। तब नारद जू कौं अपनौ पति मानिकैं लै गई। वह सोमिन खिसियानौ भयौ। अपनौ सिर फोरिकैं प्रान दियौ। तब वृषभ कौ जन्म वाही घर में पायौ। नारद जी ने वाके कान में कही— अब तोकौं कृतार्थ करैं? कही— मेरे लरिका जीविका कैसें पावैंगे? फिर वह सरीर छोड़िकैं कुत्ता भयौ। तब नारद जी ने कही— अब कृतार्थ करैं? कही— मेरे लरिकन की चौकी कौन देइगौ? तब वह सरीर छोड़िकैं सर्प भयौ। तब नारद जू ने कही— अब कृतार्थ करैं? कही— मेरे

---

१. इन्द्र। २. सूर्य।

लरिकान कौं कोई सर्प काटि खायगौ ? नारद जी ने विचारी, यह कह्यौ नाहीं मानत। वाके लरिकान कौं बुलाइकैं मोरी में वही सर्प दिखायौ। उन लरिकान ने वाकौ सिर ठोक्यौ। तब फिर नारद जी ने कही– अब कृतार्थ करैं ? कही– भली बात है। तब नारद जी ने कृतार्थ कस्यौ।।१०८।।

रहय एक सोमिन कौ धामा। ताहि मध्य सौ क्रोर सु दामा।।
खरच न करय दाम इक सोई। रिषि नारद ने आइ सुजोई।।
लागे करनि विचार तबेई। हरि के हेत लगै सु अबेई।।
तौ वर वित्त भलौ याही कौ। यह कहि धस्यौ रूप ताही कौ।।
गयौ निकेत जाइ रिषि चारी। चौकीदार द्वार बयठारी।।
यहै गए कहि तिनसौं जबहीं। आवहिं येक सेवरा अबहीं।।
धरय रूप वह जानि सु मेरा। ताहि न दीजौ आवनि घेरा।।
है प्रवेस घर माहिं लुटायौ। जो कछु वित्त निकेतहिं पायौ।।
सोमिन यहै खबर जब® पाई। तबय दौरि करि जानि सु आई।।
द्वारपाल नहिं दीनहु जाना। तबय राज पै कस्यौ पयाना।।
करी फिरादि ताहि ने तबही। रिषै बुलाइ लिये उन जबही।।
देखे रूप एकसे दोऊ। तब ठहराइ जु नारि बुलेऊ।।
आई तबय वधू वहँ वाकी। दई फेरि बुधि नारद ताकी।।
अपनौ पति नारद कौं जाना। गईय लिवाय घरै सो जाना।।
सोमिन तबय खिसानौ भयऊ। अप सिर फोरि प्रान उन दयऊ।।
बरध[1] एक भौ ताहि निकेता। धस्यौ जनम वह जानि सुहेता।।
यहै कही रिषि कान व तबही। करउँ कृतारथ तोकौं अबही।।

® पाठान्तर–तब। १. बैल।

मेरे सुवन जानि सुनि लीजे। होइ जीविका किहिं विधि जीजै।।
पुनि सरीर वह छोड़त भयऊ। स्वान अंग कौ फेरि जु लयऊ।।
लगे कहनि रिषि तोहिं अब तारैं। सुवन चौकि को देइ सुखारै।।
छूट्यौ अंग ताहि कौ वेई। लयौ सर्प कौ जाइ सु वेई।।
लगे कहनि रिषि करयँ कृतारथ।डसे कोइ मो सुवन विचारथ।।
तब नारद बोले मन माहीं। यहै कृतारथ मानत नाहीं।।
सोमिन सुवन बुलाये तबहीं। मोरी सर्प दिखायौ जबहीं।।
तब लरिकनि इक दंड जु लाई। कूट्यौ आनन सबनि बनाई।।
लगे कहनि तब रिषि सुख साजू। करयँ कृतारथ तोहिं सु आजू।।
कही भली अहि बोलत भयऊ। करौ कृतारथ रिषिवर तबऊ।।१०८।।

विवेकी नित्य वस्तु के स्वरूप में मगन रहैं और वाही स्वरूप के विग्रह कौं बहुत प्रीति सौं प्रसन्न करैं। जैसैं काहू को मित्र स्वाँग पलटिकैं आवै। वाकौं प्रसन्न कीजिये। वह मित्र बहुत प्रसन्न होइकैं कहै— मेरे स्वाँग हू कौं प्रसन्न कियौ। मेरौ परम हितकारी है। और कोऊ कहै— मैं अपने मित्र कौं वाही स्वरूप सौं सेवन करौंगो, वाके स्वाँग सौं मोकौं कहा परोजन? तौ वह मित्र जानैं, याकी साँची लगन नाहीं।।१०६।।

दोहा— नित्य स्वरूप जु वस्तु में, सदा रहैं वर बूढ़।
जेई विवेकी सकल जन, यहै समझिये गूढ़।।
वाही जानि स्वरूप के, श्रीविग्रह वर सोइ।
करिये ताहि प्रसन्न अति, महा प्रीति सौं जोइ।।

ज्यौं काहू कौ मित्र पियारा। पलटि स्वाँग सो आवै भारा।।
कियौ प्रसन्न ताहि कौं जानौ। तौ वह मित्र महा सुख मानौ।।

मेरौ स्वाँग ताहि कौं यानै। कियौ प्रसन्न महा सनमानै।।
यह मो मित्र महा सुखकारी। जोई कदाचित यौंही विचारी।।
मेरे मित्रय कौं मयँ सेऊँ। जाहि रूप सौं जानि सु लेऊँ।।
जेई स्वाँग है वाके जानौ। तिनसौं काम कहा मो मानौ।।
तौ वह सखा जानि यह लेहीं। साँची लगन नाहिंने एही।।१०६।।

दुःख सब प्रानी कौं दुसह है, एक साधुन कौं नाहीं। साधु एकरस प्रसन्न रहैं; दुख-सुख के दृष्टा हैं। जैसें जाड़ौ सब सरीर कौ दुसह है; एक नेत्रन कौं नाहीं।।११०।।

दुसह जानि दुख्य भव सारा। भक्तनि कौं इक नाहिं विचारा।।
साधु एकरस रहयँ हुलासा। सुख अरु दुख के दृष्टा भासा।।
लगय सीत ज्यौं अंगहि माँहीं। महा दुःख⊛ इक नैननि नाहीं।।
होइ सुखय नैननि कौं भाई। यहै समझिये अपु चित लाई।।११०।।

साधु कौ अहार एक भजन कौ चाहिये और प्रसाद जो ठाकुर देहिं, सो प्रसन्न ह्वैकैं पावै। जानै कि याही वस्तु के पाइवे कौं आज ठाकुर की इच्छा भई, सोई अंगीकार करी, सोई मोकौं प्रसाद दियौ; आज मेरी रसना सौं वाकौ स्वाद लेत हैं।।१११।।

यहै अहार साधु कौ कहिये। एक भजन वर जानि सु लहिये।।
हरि जो देयँ* प्रसाद व याही। ह्वै प्रसन्न पावै वर ताही।।
ताकौं लेइ जानि यह सोई। यहै वस्तु जो है मन भोई।।
याहि पाइवे की हरि चाहा। भई हुती मन यौं अवगाहा।।

⊛ पाठान्तर—पीर। * दई।

करिय सोई अंगीकृत प्यारा। दियौ सोई मो सीत विचारा।।
लेत स्वाद मो रसना प्यारा।१११।। कहय कदाचित कोई विचारा।।

कोऊ कहै जो वस्तु ठाकुर कौं भोग लगत है, तामें तें रंचक मात्र घटत नाहीं। सो यह प्राकृत प्रानी भोजन करै, तौ घटि जाय; जा वस्तु कौं वे भोजन करैं, सो कैसैं घटि जाय? सो तौ बढ़ै, स्वाद विसेष हुइ जाय। भोग लगे कौ प्रमान यह है कि स्वाद विसेष हुइ जाय और बढ़िवे कौ प्रमान यह है, जो पूरन होय।।११२।।

लगै भोग जो हरि कौं भाई। रंचक मात्र घटत नहिं ताई।।
भोजन करत प्रकृत जो मानव। ता महँ घटै समझि यह जानव।।
जौंन वस्तु कौं वे सुख पाई। भोजन करयँ सोई बढ़ि जाई।।
घटय नहिं पै जानि सु लेहू। स्वाद विसेष होइ वर तेहू।।
लगय भोग कौ यह परमाना। होइ विसेष स्वाद सुखदाना।।
बढ़य प्रमान जानिये सोई। तबय परम हित पूरन होई।।११२।।

कोऊ कहै श्रीवृन्दावनचन्द्र भूतल पर विराजत हैं। महा प्रलय में कैसैं थिर रहत हैं? ताकौ दृष्टान्त— काहू गाँव के मध्य में एक सिद्ध की कुटी होइ। गाँव में आग लगै, सब गाँव जरि जाय, सिद्ध की कुटी न जरै। सिद्ध की कुटी गाँव तें दूर बन में होय और न जरै, तौ अचरज नहीं; यह अचरज है, आस-पास सब जरि जाय, एक कुटी मध्य में न जरै। ऐसैं ही

समस्त पदारथ महाप्रलय में नास कौं प्रापित होंय; एक श्रीवृन्दावनचन्द्र अपनौ निज स्वरूप प्रकास करिकैं अखंड, एकरस विराजत हैं।।११३।।

दोहा— कोऊ कहै कदाचितै, श्रीवृन्दावन जोइ।
भूपर राजत प्रलय क्यौं, थिर रहय व सोइ।।

ताकौ दृष्टान्त –

काहू नगर मँझार सुहाई। होइ कुटी जु साधु की भाई।।
लगय नगर महँ अगिन जु जबही। जरय गाँव यह जानहु तबही।।
जरिय न कुटी साधु की जानौ। कानन मध्य होइ कहुँ ठानौ।।
नहीं जरै तहँ जानि सु लेवा। कछु अचरज वह नाहिं सु भेवा।।
यह अचरज बड़ जानि सु लेहू। आस पास सब गाँव जरेहू।।
जरै नहीं मधि कुटी व सोई। ऐसैं निकर पदारथ जोई।।
महाप्रलय में ते सब आवैं। होहिं नासि यह जानि सु गावैं।।
एकै विपिन आपने रूपा। करय प्रकास अखंड अनूपा।।
सदा विराजत हैं इकसारा। सुनहु और पुनि परम विचारा।।११३।।

यह संसार सागर रूप अथाह है। जो अथाह सागर में परे, सो निस्चय बूढ़ै, निकसै नहीं। सो या सागर तें निकसिवे कौ जतन करै, तौ निकसै; सो जतन एक ही है, दूसरौ नाहीं। कहर दरियाव में जहाज जब जाइ परै; तहाँ सब जतन थकित होय जात हैं। जब देखै, जहाज कहर दरियाव में आयौ; तब एक महिषी वा जहाज के कोने सौं दृढ़ करि बाँधि देत हैं। वाकौं मगर आइकैं पकरत है। मगर खैंचत है, खैंचिकैं लै जात है; तब जहाज कहर तें निकसि आवत है। यही एक जतन है,

दूसरौ नाहीं। सो यह प्रानी मन रूपी महिषी कौं साधुन कौं अर्पन करै, तौ वे साधु अपने कृपा रूपी मगर सौं खेंचिकें कहर संसार तें निकासि लेंइ।।११४।।

यह भव जलधि अथाह सु आई। परय कदाचित कोई अथाई।।
बूढ़ै सोई कढ़ै पुनि नाहीं। ताहि कढ़नि तें जतन कराहीं।।
निकसै सोई जतन इक कहिये। दूजौ जतन नाहिं कहुँ लहिये।।
कहर जलधि में पोत जु परई। होइ थकित तहँ जतन सु करई।।
तहाँ जतन इक परम बतावा। देखै पोत जलधि कहर आवा।।
तबय लेइ इक महिषी सोई। बाँधै पोत कोंन सौं जोई।।
ताहि मगर पकरत है आछैं। खेंचत सोई ताहि कौं पाछैं।।
ताहि व खेंचिकैं लै पुनि जाई। कढ़य कहर तें पोत जु भाई।।
यहै जतन इक जानि सु लेहू। और दूसरौ नाहिं कहेहू।।
सो यह प्रानी यौं करि मानौ। महिषी जोरु मनहिं कौं जानौ।।
करय भेंट साधुनि कौं सोई। मगर कृपा गुनि साधुनि जोई।।
कृपा मगर ऐंचैं पुनि वेई। लेइ निकारि कहर भव तेई।।११४।।

सरनागत आपकौं ऐसैं जानै, जैसैं घोड़ा काहू के हाथ बेचै। फेर वाके दाने, घास, काहू बात की चिन्ता बेचनहारौ न करै; जो मोल लेइ, ताही कौं सब चिंता रहै।।११५।।

दोहा– सरनागत यौं आपकौं, जानै सदा व सोइ।
ज्यौं हय बेचै और कहँ, फिकरि ताहि कौं होइ।।
दाने अरु पन घास की, और बात की जानि।
बेचनि वारे कौं नहीं, रहै चित्त यौं मानि।।

सोरठा— लेइ मोल जो जानि, ताही कौं सब बात की।
चिन्ता रहै यौं मानि, और प्रसंग सुनये भलौ।।११५।।

चारि प्रानी चारि वस्तु बिना सदा दुखी रहैं। राजा दल बिना, वेस्या रूप बिना, गृही धन बिना, वैरागी त्याग बिना।।११६।।

प्रानी चारि दुखी यौं जानौ। चारि वस्तु बिन सोई बखानौ।।
दल बिन राज, वित्त बिन ग्रही। बिना रूप सुनि बारमुँही।।
बिना त्याग वैरागी जानौं। और सुनौ अब ताहि बखानौं।।११६।।

एक महापुरुष ने अपने चेला के हाथ गोरखनाथ कौं प्रसाद भेजौ; सो गोरखनाथ ने पायौ नहीं। तब पूछ भेजी, तुम हरि के प्रसाद कौं नाहीं पावत ? गोरखनाथ ने कही— ये लाये हैं, सो कौन हैं ? कही— हमारे सिष्य। गोरखनाथ ने कही— दिन कौं तुम रात कहौ, तुम्हारे चेला कहा कहैं ? वा महापुरुष ने ऐसैं ही कही। सब चेलनि कही— महाराज ! सूर्य निकसि रह्यौ है, राति कहाँ है ? तब गोरखनाथ ने कही— चेला, तुम्हारे चेला नहीं; सब्दभेदी होइ, सो चेला। याही तें हमने इनके हाथ कौ प्रसाद न पायौ।।११७।।

महापुरुष इक सिष्य बुलावा। दियौ प्रसाद ताहि यौं गावा।।
दयौ भेजि गोरख कौं भाई। गोरख हाथ दियौ वह जाई।।
पायौ नहीं नाथ नें जबहीं। भेजी पूछि सिद्ध ने तबहीं।।
हरि कौ जोइ प्रसाद सुहावा। पावत नाहिं कहा व सुनावा।।
गोरखनाथ कही यह भोइ। ल्यायौ जोइ प्रसाद व कोइ।।

जानहु जोइ वह सिष्य हमारा। बोले गोरख तबय सु चारा।।
दिव कौं रजनी यहि कहि देखौ। कहैं कहा तुव सिष्य विसेखौ।।
महापुरुष त्यौं पूछत भयऊ। निकर सिष्य यह जानि सु कहऊ।।
रह्यौ निकरि वर सूर्ज सुहावा। रजनी कहाँ यह तबय सुनावा।।
गोरखनाथ कहनि तब लागे। सिष्य न तुम्हरे जानि सभागे।।
सब्दभेदी चेला वर सोई। लियौ न तातें जानहु भोई।।११७।।

श्रीवृन्दावन-वासी जितने हैं, सो सब परिकर हैं। काहू विषै जो विकार देखिये; सो दिठौना मात्र है, वास्तव में नाहीं; अथवा वे सखा परिकर हैं और जिन विषै सुकृति होइ, ते सखी परिकर। तात्पर्य यही है, काहू विषय अभाव न करै।।११८।।

वृन्दावन महँ जेई बसहीं। ते सर्वोपरि सब जस लसहीं।।
काहू माहिं व लखय विकारा। नजर मात्र वह जानि विचारा।।
वास्तव नाहिं विकार व कोई। अथवा परिकर सखनि व जोई।।
अन्य विषै जो सुकृत देखा। सहचरि परिकर जाहि सु लेखा।।
तातपर्य यह जानि सु लेहू। काहू विषै अभाव न लेहू।।११८।।

प्रसाद हरि ही कौ स्वरूप है। और जे कोई प्रसाद में भेद करत हैं, सो आस्रम कौ धर्म है, निवृत्ति धर्म में भेद नाहीं।।११६।।

हरि कौ रूप प्रसाद विचारौ। मानत भेद ताहि में भारौ।।
आन आश्रम कौ धर्म व सोई। निवृत्ति धर्म में भेद न कोई।।११६।।

जे आचार्य हैं, तिनके दो-दो स्वरूप हैं। नित्य स्वरूप

सौं अपने इष्ट कौं लड़ावत हैं, आचार्य स्वरूप सौं जीवनि कौं उपदेशि करत हैं।।१२०।।

जे आचारज जानि सुहावा। द्वै स्वरूप तिनके वर गावा।।
नित्य रूप सौं इष्ट लड़ावैं। दुतिय रूप आचारज गावैं।।
जीवनि कौं उपदेस करेंई।१२०।। सबही भाव महाननि केई।।

सबही भाव सब आचार्यन कौ सत्य मत है। काहू कौ खंडन न करै; अपने भाव में दृढ़ रहै। जो कोऊ जैसैं कहे, ताकौं मन में विचार लेइ, वाके ह्रदय कौं सतावै नाहीं,समस्त जीवनि कौं सुखदाई रहै।।१२१।।

नित्य सत्य वर जानि सुलेहू। खंडन काहू कौ न करेहू।।
अपने भाव रहै दृढ़ सोई। जैसैं कहै आनि पुनि कोई।।
लैहिं विचारि ताहि मन माहीं। वाकौ हियौ दुखावै नाहीं।।
सब जीवनि कौं होइ सुखारी। और सुनहु अब जाहि विचारी।।१२१।।

एक पंछी वृद्ध, जामें उड़िवे की सामर्थ्य नाहीं। ताकी ओर नारद जी ने करैरी दृष्टि सौं देख्यौ। तब वाकौं भय भयौ, गरुड़ जू कौ ध्यान कर्‍यौ। गरुड़ जू साक्षात आय बिराजे। वा पंछी ने कही– मोकौं ऐसैं काहू जगह धरि देउ; तहाँ नारद जी न पहुँचैं। वे मेरी ओर करैरी दृष्टि सौं यहाँ देखत हैं; मोपै सामर्थ उड़िवे की नाहीं। तब गरुड़ जू ने अपने पंख पै धरिकैं एक समुद्र के टापू में जाय राखौ, जहाँ कोऊ पहुँचि न सकै। तब गरुड़ जू ने नारद जू सौं पूछी– तुमने वा पंछी की ओर करैरी दृष्टि क्यौं करी? वाकौं बहुत भय भयौ, तब हमारौ

ध्यान कियौ। कही– ऐसें ठौर पहुँचावौ, तहाँ नारद जू न पहुँचैं। तब हमने एक टापू में राख्यौ। नारद जी बोले– हम करेरी दृष्टि याही तें करी ही, वा पंछी कौं वाही टापू में वाही समय एक बिलाव खाय गयौ; सो तुम जायकैं देखौ, वाके पंख टापू में परे हैं। गरुड़ जू ने तैसें ही देख्यौ। ताकौ आसय यह है, जो प्रभु ने रची है, तैसेंई होय; घट-बढ़, आगैं-पीछैं कदाचित् न बनैं।।१२२।।

एक पतंग[१] वृद्ध बल हीना। ताहि ओर यौं नारद भीना।।
करैरी दृष्टि करी रिषि तबहीं। भय करि भीत भयौ खग जबहीं।।
कर्‍यौ ध्यानि उरगारि विचारी। आए गरुड़ तबय सुख भारी।।
लग्यौ कहनि वह खग सुख साजू। धरौ मोहिं तुम तहाँ सु आजू।।
तहाँ न पहुँचैं बीन धराया। करैरी दृष्टि करी रिषि राया।।
उड़न समर्थ न मोकहँ जानौ। धर्‍यौ गरुड़ तब पंखनि ठानौ।।
धर्‍यौ जलधि इक टापू जाई। सकै न पहुँचि कोइ तहँ भाई।।
तबय गरुड़ आइ रिषि पाईं। पूँछनि लगे यहै हँसि भाई।।

दोहा– तुम पंछी की ओर क्यौं, कीनी दृष्टि जु पीन।
डर्‍यौ बहुत वह तब कियौ, ध्यान जु मोर नवीन।।
तब हमसौं ऐसी कही, गुप्त ठौर वर जोइ।
तहँ लै धरिये मोहिं कौं, रिषि पहुँचैं नहिं कोइ।।

सोरठा– धर्‍यौ जु टापू जाइ, तब नारद बोले वचन।
करैरी दृष्टि बताइ, सो सुनिये उरगारि जू।।

दोहा– वाही छिन वा पंछि कौं, टापू मध्य जु लेखि।
खैहै एक बिलाव सुनि, अपुन जाय करि देखि।।

---

१. पक्षी।

परे पंख वह टापू माहीं। लख्यौ जाइ उरगारि जु ताहीं।।
ता कहँ ऐसौई सुनि भयऊ। जो प्रभु सुन्दर ने रचि दयऊ।।
जा कहँ तैसैंई पुनि होई। आगैं पाछैं बनैं न कोई।।१२२।।

एक पंछी के बच्चा समुद्र बहाइ लै गयौ। तब वाने कही— या समुद्र कौं सुखाइ डारौंगो, आँट दैउँगो। तब उद्यम कियौ, एक चोंच पानी की भरिकैं बाहर डारि आवै, एक चोंच मिट्टी की भरिकैं समुद्र में डारि देइ। नारद जी ने पूछी— यह कहा उद्यम कियौ ? कही— समुद्र कौं सुखाइ देहुँगो। समुद्र अथाह है, अपार गम्भीर है; तेरौ मनोरथ कैसें बनैगौ ? तू महातुच्छ है। वाने कही— जब-जब जन्म धरौंगो, तब-तब ही उद्यम करौंगो। कदाचित् न छोड़ौंगो। तब नारद जू ने यह बात गरुड़ जू सौं जाय कही। तब गरुड़ जू ने समुद्र पै वाके बच्चा मँगाय दिये। ऐसैं भावक कौं चाहिये, अपने भाव की दृढ़ता ऐसैं राखै; जो अनन्त जन्म होहिं, तौऊ भाव न छोड़ै।।१२३।।

पंछी एक के सावक भाई। गयौ जलधि लै तिन्हैं बहाई।।
लग्यौ कहनि जब खग यह बानी। देहुँ सुखाय याहि कौ पानी।।
देहुँ पूर पन जानि सु लेहू। तब यह उद्दिम ताहि करेहू।।
एक चोंच भरि वारि व सोई। आवै डारि बाहिरौ जोई।।
एक चोंच पुनि धूरि की भरई। जलधि मध्य लै ताहि जु धरई।।
लगे कहनि जब नारद चारी। करत कहा यह उद्दिम भारी।।
देहुँ सुखाय याहि कौं आजू। यहै अथाह कही रिषिराजू।।
मन चीतै तुव कैसैं कैं होई। महा तुच्छ जब बोल्यौ सोई।।
जब जब जनम धरौं रिषिराया। तब तब उद्दिम करहुँ जु आया।।

छोड़ौ नहीं कदाचित भाई। यह वचन रिषि गरुड़ सुनाई।।
तबहिं गरुड़ आसुहिं आवा। दये चेंनुवा[१] जलधि मँगावा।।
ऐसैं ही भावक हिय कहियै। अपने भाव पुष्टता चहियै।।१२३।।

श्रीवृन्दावन धाम सास्त्र में सर्वोपरि गायौ है और बैकुंठ, गोलोक ऊपर कहत। ताकौ दृष्टान्त– कमल के फूल में करनिका सर्वोपरि है और फूल कौ तत्त्व है। पंखुरी वाके नीचे करनिका के सब लग रही हैं और अग्र भाग कर पंखुरी ऊँची दीखत हैं; वास्तव में ऊँची नाहीं। ऐसैं ही श्रीवृन्दावनचन्द्र भूतल पर विराजत हैं। सब धामनि के मुकुटमनि हैं। और धाम वास्तव में इनके आसरे हैं, जद्यपि ऊँचे दीखत हैं।।१२४।।

विपिन धाम यौं अधिक सुहावा। आगम निगम मद्धि सो गावा।।
ऊपर कहे बैकुंठ सु चारी। पुनि गोलोक जानि हितकारी।।
सोई कहियतु हैं सुनि भाई। दृष्टान्त ताहि कौ परम बताई।।

दोहा– कमल फूल मधि करनिका, सर्वोपरि है सोइ।
तत्त्व फूल कौ है समझि, और पंखुरी जोइ।।

सोरठा– वाके करनिहिं सोइ, तिनके सम अग्र ह्वै रहैं।
अग्र भाग करि जोइ, पंखुरि ऊँची लखत हैं।।

वास्तव में सुनिये चित लाई। ऊँची नाहिं जानि यह भाई।।
ऐसैं ही जो विपिन सुहावा। राजत भू पै अति सुख दावा।।
सब धामनि के मुकुट मनी हैं। और धाम जो जानि गुनी हैं।।
वास्तव में सुनिये चित लाई। इनके सरनै ताहि बताई।
जद्दपि ऊँचे दीखत चारी। सुनिये और विचार विचारी।।१२४।।

---

१. चैंटुवा, बच्चे।

एकनि कौ सिद्धान्त है, भली-बुरी सब हरि करावत हैं। भली सब हरि करावत हैं, बुरी जीव की अविद्या सौं होत है।। ताकौ दृष्टान्त– महमूद बादसाह के हजार गुलाम हे। तामें अयाज कूँ बहुत प्यार करत हे और सब वाकी ईर्षा करत हे। बादसाह सौं कहत हे, यामें कहा गुन है, जो अधिक चाहत हौ? बादसाह ने कही– काऊ दिन उत्तर देंइगे। एक दिन आज्ञा करी, चीनीखाना, सीसाखाना सब फोरि डारौ। जितने मुसाहिब[1], गुलाम हे; ते सब फोरि डारत भये। अयाज हू सौं कही– तू हू जा, सीसा फोरि डारि। फेर सबकौं बुलाय कैं एक-एक सौं कही– यह लाखन कौ कारखाना क्यौं फोरि डारौ? सबनि कही– तुम्हारी आज्ञा सौं। अयाज हू सौं पूछी– तैंने सीसा क्यौं फोरे? वाने कही– मोसौं बड़ी चूक भई; मैं बड़ौ गुनहगार हूँ। तब बादसाह बहुत प्रसन्न भये। सबनि सौं कही– मेरी आज्ञा सौं तुमने हू - इनने हू कारखाना फोरौ हो; तुमसौं पूछी– तुमने मेरी आज्ञा बताई, इनने अपनी चूक बताई, मेरे सिर दोष न दियौ; यातें यह मोकौं बहुत प्यारौ है। ऐसैं ही या जीव कौं सदा अपनी चूक माननी है, उनकी कृपा।।१२५।।

एकनि के यह कथनि सुनावा। भली बुरी सब हरी करावा।।
होइ बुरी जु कदाचित कबहीं। जीव अविद्या जानहु तबहीं।।
ताकौ दृष्टान्त –
मुहमद साहि जानियै सोई। सहस गुलाम ताहि कैं होई।।

---

१. साथ उठने-बैठने वाला; साथी।

तिन महँ एक अयाज सुनाँवा। तापर कृपा साहि अति भावा।।
ता सहँ करैं बैर ये भाई। कहैं साहि सौ सबय सुभाई।।
या महँ कहौ कौन गुन सोहा। चाहत आप करत अति मोहा।।
साहि तबय यह कहनि जु लागे। दिवस कौंनहु ज्वाब सभागे।।
दैहौं तुमहिं परम सुख पाई। एक दिवस यह जानि सु भाई।।
आज्ञा करी आप नरनाहू। चीनीखान खान सीसा हू।।
डारौ फोरि याहि कौं सबही। फोरे निकर गुलामनि तबही।।
पुनि अयाज तें वचन सुनाई। सीसा फोरि आपु ही जाई।।
लये बुलाय साहि पुनि सबहीं। एक एक सौं बोले तबहीं।।
यह लाखनि कौ माल हमारौ। फोरि फोरिकैं काहि बिगारौ।।
बोले वचन निकर सुनि बानी। फोरे हुकुम आपकौ जानी।।
पुनि अयाज कौं लियौ बुलाई। क्यौं फोरौ तैं काँच सुभाई।।
परी चूक मो सहँ सुनि स्वामी। गुनहगार मैं बड़ौ अकामी।।
भयौ प्रसन्न साहि अति जानौ। बोल्यौ वचन फेर हित सानौ।।

दोहा— मेरौ सासन के सुनें, तुमहूँ इनहूँ मानि।
सहस्रनि कौ यह माल तुम, फोर्‌यौ तुरतहि जानि।।
मैं पूछी तुमसौं जबै, आयसु मोर बताइ।
इन मानी अप चूक कौं, दोष न मो सिर लाइ।।
तातें मो कहँ वह सदा, है अति प्यारौ चारु।
ऐसैं ही यह जीव जो, अपनी चूक विचारु।।

उनकी कृपा मानिये भाई। और प्रसंग सुनहु सुखदाई।।१२५।।

एक साधु जमुना के किनारे जाय बैठौ। हरि ही अपने हाथ प्रसाद लावैं; तौ पावौं। एक पनवारौ मोहन भोग कौ

जमुना के प्रवाह में वाके निकट आयौ। वाने कही— प्रभु ने भेजौ तौ सही, पाऊँगो जब, वे अपने हाथ पवावैंगे। वही पनवारौ फेर चक्र खाइकैं वाही ठौर आइ लगौ। तब विचारी, प्रभु ही लाये हैं, अवज्ञा भली नाहीं; उठाइकैं पायौ। तब आकास बानी भई, हम बहुत प्रसन्न भये, तैंने हमारी आज्ञा मानी, सो भली करी; जो तू न पाँवतौ, तौ हम आइकैं पवाँते; फेरि अपनी हठ सौं अवज्ञा होती; अब हमारी आज्ञा करी; सो भली।।१२६।।

जमुना तीर साधु इक गयऊ। रह्यौ बैठि तहँ पन इक लयऊ।।
हरि प्रसाद अपु ल्यावहिं तबहीं। लेउँ प्रसाद जानि मैं जबहीं।।
तबै एक पनवारौ आयौ। मोहन भोग कौ भर्‍यौ सुहायौ।।
तब यह सौरि[1] धार बहि आवा। लाग्यौ कूल वह निकट दिखावा।।
बोल्यौ वचन साधु सचु पाई। भेज्यौ सही स्याम ने भाई।।
पाऊँ जबय स्याम ढिंग आवैं। कंज विमल कर मोहिं खवावैं।।
चक्र भौंरका मार्‍यौ जबहीं। लग्यौ आनि ढिंग जानि सु तबहीं।।
तबय साधु ने यहै विचारी। ल्यायौ हरी हिये यह धारी।।
अब सु अवग्या हू भल नाहीं। तुरत उठाहि ताहि ने पाहीं।।
भई अकास तबय वर बानी। बहुत प्रसन्न भए हम जानी।।
मो अनुसासन मानि जु लीनी। लियौ पाइ परसाद प्रवीनी।।
जो तुम याहि पाँवते नाहीं। तौ मैं तोहिं पवाँवतौ आहीं।।
सोरठा— पुनि अपने हठ सोइ, होतौ जानि निरादरौ।
मोर निरादर जोइ, मान्यौ सोई भली करी।।१२६।।

१. यमुना।

अलवर तिजारे में एक बावरी काहू ने बनाई। तहाँ हजारनि मजूर सदा लगे रहैं। एक मजूर कौ भेष धरिकैं राजा भरथरी सब दिन मेहनत करत रहैं; मजूरी लैवे के समय चले जात रहैं। तब वहाँ के कारबारी नित्य विचारते कि दिन में जितने मजूर लगत हैं, गिनत हैं, तिनमें से एक कैसैं घटत है ? तब काहू ने लखि पायौ कि वह मजूर राजा भरथरी है। ताही समय तें राजा भरथरी की बावरी आजहू लौं विख्यात है। द्रव्य काहू ने लगायौ, नाम राजा भरथरी कौ भयौ। आसय कहा ? जो प्रभु सौं सकाम भक्ति करै, तौ मजूरी देत हैं; निष्काम भक्ति तें वस्तु ही देत हैं।।१२७।।

दोहा— अलवर में एक बावरी, काहू ने बनबाइ।
जहाँ हजारनि जानियौं, लगे मजूर सु आइ।।
धरिकैं रूप मजूर कौ, भूप जु भरथरि आइँ।
करैं टहल सब दिवस वे, निसिमुख[1] ही उठि जाइँ।।

रहय जौंन सु करता लेखक। यहै विचारत नित हिय पेखक।।
जितने दिवस मजूर लिखेंई। सावधान ते जानि गनेंई।।
तिनमें नित्य एक घटि जाई। लैन समय पैसन के भाई।।
चली गई तब ऐसैं ही सोई। पूरी भई बेर[2] वह जोई।।
लख्यौ काहू ने तबय विचारी। वहै भूप भरथरी हितकारी।।
तासु समैं तें भरथरी केरी। सबय बखानत हैं वह बेरी।।
माया काहू ने जु लगाई। भरथरी की वह बेर कहाई।।

दोहा— ऐसैं जो प्रभु की करै, भक्ति सकाम जु कोइ।
ताहि मजूरी देत हैं, वस्तु निष्कामहिं जोइ।।१२७।।

---

१. संध्या। २. बावड़ी।

या सरीर के दो दृष्टान्त हैं– एक घोड़ा कौ और दूसरौ असवार कौ। यह सरीर घोड़ा है, जीव असवार है। जो जीव आपकौं स्वतन्त्र मानैं, तौ याकौ नियन्ता है, यह पराजय न करि सकै और जो आपकौं या सरीरमय जानैं, तौ ओत-प्रोत हुइ जाय। कोऊ घोड़ा मुस्की, कोऊ कुम्मैत है; कोऊ अबलख, कोऊ काहू रंग कौ है। जो असवार सावधान होय, तौ घोड़ा कौं अपने बस करि राखै; तौ वा असवार की सब बड़ाई करैं, कहैं– यह असवार बड़ौ है, घोड़ा की बड़ाई दबि जाय। और जो असवार स्वतन्त्र न होइ, तौ घोड़ा ही वापै सवार चाहिये। ऐसैं ही अनेक वर्न ऊँच-नीच या सरीर के हैं। जीव के आधीन हैं। विवेकी ऐसैं ही जानैं, जैसैं घोड़ा के रंग अनेक हैं। मैं असवार हूँ, स्वतन्त्र हूँ; प्रभु के आधीन हूँ।

दूसरौ दृष्टान्त– भूत आवेस– जा प्रानी कौं भूत कौ आवेस आवै, सो आपकौं भूलि जाय, वही भूत ह्वै जाय, वही बोलै, वही अपनौ नाम बतावै। ऐसैं ही या सरीर के अनेक वर्न हैं। ताही कौं सत्य मानिकैं बरनत है। जब आवेस उतरि जाय, तब सुधि आवै; वह नाम, वह क्रिया भूत की सब भूलि जाय। ऐसैं यह जीव देह अभिमान कौं छोड़ै, तब अपने स्वरूप कौं जानै। तब याने देह तें विलच्छन न्यारौ, नित्य स्वरूप पहिचानौ, तब काल कौ काल होत है।।१२८।।

या सरीर के दो दृष्टान्त हैं–

हय[1] कौ एक दूज असवारा। यहै सरीर बाज[2] निरधारा।।
गुन असवार जीव कौ भाई। मानैं यहै जीव सुखदाई।।

---

१. घोड़ा। २. घोड़ा।

सदा स्वतन्त्र आप सो न्यारा। नियन्ता या कहँ जानि विचारा।।
तोइ पराभव[1] करि कछु नाहीं। और आपु कौं या वपु माहीं।।
जानय जोइ सोई सुनि लेहू। ओत प्रोत ह्वै जाइ गनेहू।।
है मुसकी[2] अबलख[3] सुनि कोऊ। कोई कुमैत[4] रंग पुनि कोऊ।।
चढ़नहार सावधान जु होई। रखय अस्व बस्य में सोई।।
वहै जौंन असवार बताई। करय ताहि की सबय बड़ाई।।
कहैं सबै यह बड़ असवारा। कीरति बाज छिपै सु विचारा।।
जो असवार स्वतन्त्र न कहियै। तापहि अस्व सवार तौ चहियै।।
ऐसैं ही यह वपु कौं जानौ। वरन अनेक ऊँच नीच मानौ।।
सुनहु जीव के जे आधीना। जानै सोई विवेकि प्रवीना।।

सोरठा— जैसैं सिन्धु अनेक, अर्ब सिन्धु के जानियै।
मैं असवार हूँ नेक, प्रभु आधीन है और सुनि।।

दूसरौ दृष्टान्त भूत आवेस –

आवे भूत आवेस जाहि कौं। भूलै अपनी खबर ताहि कौं।।
वहै भूत ह्वै जाइ जु प्रानी। वहै बोलि वह नाम बखानी।।
ऐसैं ही यह जानि सु अंगा। गुनहु अनेक् ताहि के रंगा।।
मानत सत्य यहै ताही कौं। वरनत है पुनि यह जाही कौं।।
जबय भूत आवेस बिलाना। आवै खबर तबै यौं जाना।।
यहै नाम जो भूतहिं केई। क्रिया होइ पुनि जानि सु वेई।।
जाय भूलि सब सुनहु सुजाना। ऐसैं जीव देह अभिमाना।।
छोड़य तबय सुनहु वर बानी। अपनौ रूप तबय पहिचानी।।

दोहा— जबही मानैं देह तें, भिन्न विलच्छन लाल।
पहिचान्यौ नित रूप कौं, तबहि काल कौ काल।।१२८।

---

१. हार। २. कस्तूरी के रंग का स्याह। ३. अबलक-सफेद-काला; सफेद और लाल रंग का; चितकबरा। ४. स्याही रंग मिला हुआ लाल रंग।

अपने नित्य स्वरूप कौं पहिचानैं, तब सुखी होय। यह सरीर में अपनौ कछू न मानैं; मृगतृष्ना है। यह अधिकार भृंगी कौ है।।१२६।।

दोहा— पहिचान्यौ अप रूप कौं, सुखी तबय यह होइ।
व्यापक सर्वसु होइ पुनि, यह जानौ सब कोइ।।

यह सरीर जो तामें जानौ। अपनौ कछू न कबहूँ मानौ।।
मृग तृष्ना है सुनहु सु भाई। यह अधिकार भृंगि है जाई।।१२६।।

बाघ जंगल में सोवै है; बाघिनी जागै है। बादसाह सिकार करिवे कौं असवार हुइकैं वा जंगल में पहुँचौ है। फौजनि के दल चले आवैं हैं। बाघिनी देखै है, हमारे मारिवे कौं दल के दल उमड़े आवैं हैं, पर सिंह कौं जगावत नाहीं। जानत है, जब यह जागैगौ, तब यह दल ढूँढे न पावैंगे; चले आवैं हैं, तौ कहा डर है? सो यह विस्वास कौ स्वरूप है। अपने स्वामी कौ विस्वास ऐसौ राखै।।१३०।।

सोवै बाघ जंगला माहीं। बाघिनि जगे नींद में नाहीं।।
बादसाह नाम है सोई। सिकार करनि कौं वर जोई।।
है असवार गयौ वह कानन। लखय बाघिनी यहै विचारन।।
बधनि हमनि कौं ए सब आहीं। पर वह पियहिं जगावत नाहीं।।
यह जानत वह सिंघिनी आपी। जबय उठै यह सिंह प्रतापी।।
चमूप तबै ढूँढे नहिं पइयै। आवै चलौ कहा डर कहियै⊛।।
सो यह सुनहु इतै चित लाई। विस्वासहि कौ रूप है भाई।।
अपने स्वामी कौ विस्वासा। राखय ऐसौ सुनहु हुलासा।।१३०।।

⊛ पाठान्तर—लहियै।

यह सरीर कौं मृगतृष्ना जानैं; अपने नित्य स्वरूप कौं विचारत रहै। नित्य स्वरूप और मायावी स्वरूप कौ इतनौ अन्तर है, जितनौ लोहा और अगिन कौ। जबताँईं लोहा अगिन में रहै, तब ताँईं अगिन ही स्वरूप है, भेद नाहीं; जब बाहिर आवै, तब लोहा है। तातें जो कोऊ वस्तु में मन दियें रहैं, ते वस्तु ही स्वरूप हैं।।१३१।।

यह सरीर कौं जानिये जोई। मृग तृष्ना जानैं पुनि सोई।।
अपने नित्य स्वरूपहि जानौ। रहै विचारत सदा यहि आनौ।।
नित्य रूप सो नाम सुहावा। पुनि मायावी रूप सुनावा।।
इनकौ भेद समझि इतनौई। अगिन लोह कौ है जितनौई।।
रहै लोह जब ताँईं कृषाना[1]। तब लौं रूप अगिन कौ जाना।।
भेद कछू नहिं जानि सुलेहू। कढ़ै बाहिरी लोह गनेहू।।
सोरठा— यातें जीवहि सोइ, काहू वस्तुहिं में सुनहु।
दियें रहै मन सोइ, तौइ रूप है वस्तु कौ।।१३१।।

एक पंछी सदा आकास में उड़ै और वहीं रहै; कबहूँ धरती पै न आवै। जब अंडा देइ, तब अंडा नीचे कौं आवै, राह ही में अंडा पकै और फूटै। बच्चा निकसिकैं श्रुति बाँधिकैं आकास में चढ़ै; अपने परिवार में जाय मिलै। ऐसैं ही जहाँ कौ अधिकारी होइ, तहाँ जाइ रहै।

साखी— अनल पंछि के चैंटुवा, गिरते कियौ विचार।
स्रुति बाँधि ऊँचे चढ़्यौ, जाइ मिल्यौ परिवार।।१३२।।

---

१. अग्नि।

पंछी एक अकासहि माहीं। उड़ै वहाँ पुनि रहै वहाँही।।
छोनि[1] माहिं कबहूँ नहिं आवै। अंडा पकै फूटि जब जावै।।
निकसै सावक ते सुनि भाई। सुरति बाँधि कैं नभई चढ़ाई।।
मिलयँ जाइ अपने परिवारी। ऐसैं जहँ कौ है अधिकारी।।
मिलय जाइ तहँ रहै जु आछैं। सुनहु दोहरा पुनि ता पाछैं।।

साखी– अनल पंछि के चैंटुवा, गिरते कियौ विचार।
सुरति बाँधि ऊँचे चढ़्यौ, जाइ मिल्यौ परिवार।।१३२।।

वस्तु कौ दृष्टान्त– मलयागिरि की पवन सौं समस्त बन चंदन होइ जाय; मलयागिरि कौं कछू इच्छा नाहीं। बाँस और अंड सुगंध न होहिं। सतसंग कुपात्र कौं असर न करै।।१३३।।

वस्तु कौ दृष्टान्त–

दोहा– मलयागिरि कौ वन निकर, पवन जु ताकी जानि।
तासौं चन्दन जाइ है, वाहि न चाहि बखानि।।
बाँस अंड जु दोइ, तिन्हैं सुगन्ध न होइ।
करै असर सतसंग नहीं, जानि कुपातर जोइ।।१३३।।

१. पृथ्वी।

उपसंहार

परी होइ मो चूक जो, गुहत वचनिका हार।
सखीसरन कौ दोष ढँपि, लीजौ रसिक सुधार।।१।।

सोरठा— राधाकृष्ण⊛ व सोइ, तिन अनुसासन मो दई।
छंद चौपाई होइ, यौं रच्यौ वचनावली।।२।।

दोहा— मेरी रची न मानियौं, यह वचनावलि सोइ।
सासन मूरति बुद्धि की, गुही ताहि ने जोइ।।३।।

कुल चौपाई— ३६५, १/२। दोहा— ८२। ५ दोहा; ४ कवित्त मंगलाचरन में। अन्य महानुभाव कृत ८ दोहा।

।। इति श्रीस्वामी ललितकिसोरी देव जू कृत श्रीवचनिका-सिद्धान्त की श्रीसहचरिसरन देव जू कृत टीका—वचनावली सम्पूर्णम्।।

⊛ श्रीस्वामी ललितमोहिनीदेव जू के शिष्य श्री राधाकृष्णदास जी।

श्रीस्वामी ललितकिसोरी देव जू महाराज ने महल पधारते समय श्रीस्वामी मोहिनीदास जू सौं आठ वार्ता आज्ञा करीं—

१- प्रसाद की प्रतीति।

२- रज सौं भाव।

३- कंठी-तिलक सौं भाव।

४- श्रीवृन्दावन तें बाहिर निकसिवे कौ मनोरथ न करै।

५- काहू पै माँगै नहीं।

६- काहू चींटी पर्यन्त दुखावै नहीं।

७- श्रीस्वामी जी की बानी में प्रतीति।

८- इष्ट सौं रति।